(२६) श्री सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
(२७) ,, सेठ छदामीलाल जी जैन, फिरोजाबाद
(२८) ,, ला० सुखवीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बडौत
(२९) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, गया
(३०) ,, बा० जीतमल शान्तिकुमार जी छाबडा, झूमरीतिलैया
(३१) श्रीमती धनवंती देवी ध. प. स्व. ज्ञानचन्द जी जैन, इटावा
(३२) श्री दीपचदजी ए० इंजीनियर, कानपुर
(३३) गोकुलचंद हरकचद जी गोधा, लालगोला
* (३४) ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
* (३५) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या, जयपुर
* (३६) ,, बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ., सदर मेरठ
* (३७) ,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
× (३८) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
* (३९) ,, ला० नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस, रुडकी
× (४०) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला
× (४१) ,, ला० बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन, शिमला
* (४२) श्रीमती शैलकुमारी जी, धर्मपत्नी, बाबू इन्द्रजीत जी वकील, विरहन रोड, कानपुर।

नोटः—जिन नामोके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यता के कुछ रुपये आ गये हैं बाकी आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नहीं आये, आने हैं। श्रीमती वल्लोबाई जी ध० प० सि० रतनचन्द जी जैन जबलपुरने सरक्षक-सदस्यता स्वीकार की है

—।० * ०।—

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता दृष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हूँ जो हैं भगवान , जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान , वे विराग यह राग वितान ॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान , अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशावश खोया ज्ञान , बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन , मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान , फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम , विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम , आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

—:०:—

आत्मानुशासन प्रवचन तृतीय भाग

लक्ष्मीनिवासनिलयं विलीनविलयं निधाय हृदि वीरम् ।
आत्मानुशासनमह वक्ष्ये मोक्षाय भव्यानाम् ॥१॥

लब्धेन्धनो ज्वलत्यग्निः प्रशाम्यति निरिन्धन' ।
ज्वलत्युभयथाप्युच्चैरहो मोहाग्निरुत्कट ॥५६॥

आत्महितैषी आत्माओंपर अनुशासन— इस आत्मानुशासन ग्रन्थमें शान्तिकी ओर झुके आत्मावों पर अनुशासन किया गया है। जगत्के जीव अशान्तिसे भरपूर हो रहे हैं। यह मोहरूप अग्नि ऐसी उत्कृष्ट जाज्वल्यमान् है कि इस मोह-अग्निको विषयोंका ईंधन मिले तो यह बढती है और विषयोंका ईंधन न मिले तो यह बढ़ती है यदि विषयोंका ईंधन न। मिले तो इस मोह-अग्निसे सब दु'खी हैं। दुनियाकी अग्नि को यदि ईंधन मिले तो जले, ईंधन न मिले तो बुझ जाय, किन्तु मोहाग्निको तृष्णाके विषयका ईंधन मिले तो जले, न मिले तो जले, इसही प्रकार यह जीव दु खी है। किन्ही वषयोंकी इच्छा हो, धन वैभवके संचयकी अभिलाषा हो तो इस तृष्णामें यदि वैभव मिल गया तो तृष्णा बढ़ेगी। १०० से हजार हो, लाख हों। और न मिले वैभव तो वैभवके न रहनेके कारण दुःखी है। अब और क्या करे? मिले तो दु ख, न मिले तो दुःख।

संतान व धनके सद्भाव व असद्भाव दोनोंमें क्लेश— जैसे जिसके सतान नहीं होती, वे सतानके बिना दु'ख महसूस करते हैं और जिनके सतान हो जाय, वे सतानके कारण दुःख महसूस करते हैं। आराम तो कहीं नहीं भोग पाता। जो धनी पुरुष हैं वे तृष्णा कर करके दु खी होते हैं और जो निर्धन पुरुष हैं वे निर्धनताका ही दु ख मानते रहते हैं। आनन्द तो एक सम्यग्ज्ञानमें है—यह बात पूर्ण निर्णय करके रखलो। बिना सम्यकज्ञानके कैसी भी कोई स्थिति हो, किसी भी स्थितिमें यह शान्ति नहीं पा सकता।

यशकी तृष्णाका क्लेश— दुनियाकी यशके पदोंकी बात देख लो। कोई मनुष्य सबसे पहिले म्यूनिसिपिल्टीके मेम्बर होनेका बडा चाव रखता है। इससे आगे उसके मनमें इच्छा कुछ नहीं है और हो गया सदस्य तो बड़ा सुख मानता, समारोह मनाता। पर यह सुख बहुत दिनों तक नहीं ठहरता थोडे ही दिन बाद उसकी इच्छा और बढ़ने लगी। अब और ऊंची ? कमेटियोंके मेम्बर बने, प्रेसीडेन्ट बने, नेता बने, मिनिस्टर बने जाय तो वह यह चाहता है कि इस विश्वमें जितने राज्य हैं, परिषद है उसका नेता बनूं और जो जो कुछ भी यह व

कार्यको वह नहीं सभाल पाता है। चाहे छोटा कार्य हो, चाहे बड़ा कार्य हो, व्यग्रता, व्याकुलता ही बनी रहती है।

धनकी तृष्णाका क्लेश— ऐसी ही बात धनकी है। खोंचा लगाने वाले लोग १०) का सामान लेकर खोंचा लगाते हैं और उससे अपने घरका गुजारा करते हैं। उनकी दृष्टिमें १००) ही बहुत हैं। वह सोचता है कि १००) हो जायें तो खुदके पैसोंसे माल खरीद लूँ, आरामसे माल मिल जाय, उधार न लेना पड़े, फिर तो कोई कष्ट नहीं है, आरामसे दिन कटेंगे, पर १००) हो जाने पर उसकी दृष्टि और आगेकी हो जाती है। अब बड़े व्यापारकी इच्छा है। हजारकी धुन हो गयी, हजारसे लाख। इस तरह यह सब धुन बढ़ती जाती है। धनमें भी यह जीव तृष्णासे दुखी है। अब यश बढ़े, पद मिले। यों यशकी भी तृष्णा बहुत बढ़ती है। कहीं ठिकाना भी नहीं होता। यह तृष्णारूपी अग्नि इतनी विकट है कि इसे ईंधन मिले, विषय वैभव मिले तो इसके कारण समस्त जीवों को जलना पड़ता है और न मिले तो झूर-झूर कर इसे जलना पड़ता है।

देवगतिमें क्लेश— अब बतावो देवगतिमे कोई जीव जन्म लेता है तो देव होने पर अब उसे क्या कष्ट रहा ? हजारों वर्ष में भूख लगे और मन मे चिन्तन करते ही कठसे अमृत झड़ जाय तो भूख शान्त हो गयी। कई कई दिनोंमें श्वास निकले, इतना उनमें बल है। जैसे अपन लोगों को एक मिनटमे एक वार श्वास निकलती है ऐसे ही देवोंके १५-१५ महीनेमें श्वास निकलती है, वे इतने वलिष्ट हैं, ठढ गरमीकी वाधा ही नहीं है। उन्हें इष्ट देवागनाएँ मिलती हैं, नियोग है मनके अनुसार, जहा चाहें क्रीड़ा करते हैं, विहार करते हैं। कोई कमी तो नहीं है, लेकिन दूसरे देवोंकी बड़ी ऋद्धि देख देखकर, झुर-झुर कर व्याकुल रहा करते हैं।

धर्मश्रममें क्षोभ— अब धर्मके कार्यमें देखिये, जो धर्मका कार्य शत प्रतिशत सही है उसमें तो तृष्णा रहती ही नहीं, बुझ जाती है, किन्तु धर्मकी धुनसे धर्मका कार्य तो करते जा रहे हैं, कुछ-कुछ उस मार्ग पर भी चल रहे हैं, पर समाधि इनके प्रकट नहीं हुई तो वहा भी तृष्णा बढ़ती है। अब हमने एक पुस्तक सीख ली, अब इसके आगेकी सीखेंगे। कुछ भी नियम लिया है तो अब इसके आगे का नियम लेंगे। उस प्रसगमें भी तृष्णाका कुछ रूप चलता है। यह रूप जब तक है, है भला रूप यह, कमसे कम अशुभ-भावसे बदलकर शुभ भावके लिए तो तृष्णा जगी है। आगे कभी इसही के प्रसादसे आगे बढ़- बढ़कर जिस क्षणमें धर्मभाव सही प्रकट होगा उस क्षण यह तृष्णा फिर बुझ जायगी। सम्यग्ज्ञानरूपी जलमें ही ऐसी सामर्थ्य है कि

इस विकट तृष्णा अग्निको शान्त कर सकती है।

तृष्णाकी चचलता— यह तृष्णा भी ऐसी सम्मिश्रित रहती है कि यह किसी एक बात पर टिकती नहीं है। थोड़ी देरमे यशकी तृष्णा हुई और थोड़ी ही देरमें धनकी तृष्णा हुई, थोड़ी ही देरमे परिजनकी तृष्णा हुई, यो तृष्णाके वश होता हुआ यह जगत् निरन्तर दुःखी रहता है। आनन्द शान्ति पा लेना हम आप सबके सामर्थ्यकी बात है और चाहें तो अभी कर सकते हैं। यद्यपि बहुत बार कुछ शान्तिका उद्यम करे तो भी वह शान्ति स्थिर नहीं रह पाती, क्योंकि ऐसी ही योग्यता है, हम ऐसी ही वासनावोंसे वासित हैं कि फिर अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन करना भी तो यही पडेगा। दुकानमें, व्यापारमें टोटा भी पड़ जाय, मगर करना तो वही पड़ता है। उसमें तो हिम्मत नहीं हारते। किसी वर्ष कुछ नुक्सान हो गया तो उसे आप क्या बदल देंगे? अरे करना तो पडेगा ही। ऐसे ही हम शान्तिका उद्यम करते हैं और उसमें सफलता नहीं मिलती है तो हमें यह नहीं सोचना है कि हम अब इस उद्यमको न करेंगे। शान्तिका पुरुपार्थ बेकार है। चाहे कितनी ही बार फिसल जायें, पर निर्मोह और निष्कषाय होनेका पुरुषार्थ करना ही चाहिए।

शान्तिका प्रयोग्य उपाय— इस तृष्णारूपी अग्निको हम बाहरी उपायोसे शान्त नहीं कर सकते हैं। हमारे सुखका उपाय सम्यग्ज्ञान ही है। पूर्वकालमें जिन-जिन महापुरुषोंने शान्ति प्राप्त की है, उन सबने इन ही उपायोसे शान्ति पायी है। प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव हुए हैं, उनके इन्द्र सेवक थे। मनुष्यजन उनको प्रभुके रूपमे मानते थे। घर परिवार राज्य सब से सम्पन्न थे। उन्होंने गृहस्थी का भी मौज लिया है। बच्चा बच्चीके लालन पालनमें भी उन्होने अपना दिल बहलाया है, पर ये सब बाह्य सुख हैं। वे बड़ी समृद्धिके बीच रहे, पर कहीं शान्ति न मिली। इसीलिए सर्व साम्राज्य त्यागकर इस सम्यग्ज्ञानका ही उन्होंने आदर किया। कौरव पाडवोका तो बहुत बड़ा युद्ध हुआ इस राज्यलिप्साके पीछे। अन्तमें कौरवोंके पास कुछ न बचा और पाडवोंको भी सब असार जंचने लगा। तब सब कुछ त्यागकर वे निर्ग्रन्थ हो गए। सारा वैभव जहांका तहां ही रह गया।

ज्ञानसाधनाका प्रसाद— इस वैभवके पीछे बड़े विवाद कलह होते रहते हैं। इस विषयवैभवके कारण यह मोहकी अग्नि बुझ नहीं सकती। यह सारा जगत् विषयोंके दावानलसे जल रहा है। इस दावानलको बुझाने में समर्थ ज्ञानका घन मेघ ही समर्थ है। ज्ञान-वर्षा हुए बिना तृष्णाकी आग बुझ नहीं सकती। गृहस्थावस्थामे कर्तव्य सभी कर रहे हैं और इस कारण

लोगोंका सम्बन्ध भा रखना पड़ता है तथा वहा पोजीशन, धनसंचय सबकी आवश्यकता होती है। लेकिन साथमें यह मंत्र भी ध्यानमे रक्खें कि जहा हम २३, २३॥ घटा इन्हीं बातोंमें गुजारते हैं तो १ आध घटा तो इस विशुद्ध धर्मकी सुध लिया करें और सबसे न्यारे अकिञ्चन ज्ञानानन्द-स्वरूप परिपूर्ण निज अतस्तत्त्व की सुध लिया करें तो यह जीवन भी सफल होगा, आपका शेष समय भी संतोषसे व्यतीत होगा। हम लोग क्षेत्रवदना के निमित्त धर्मसाधन बनाते हैं, पूजा पाठ आदि भक्तिके निमित्तसे धर्म-साधना बनाते हैं, हम यदि किसी खास-खास प्रसगोंपर कोई एक-एक नियम, एक एक सकल्प अपना बढ़ाते और निभाते चले जायें तो कुछ समयमे हम बहुत कुछ अपनेमें प्राप्त कर सकेंगे। हमे इस अवसर पर यह निर्णय बना लेना चाहिए कि हमारा एक आध घंटा प्रतिदिन नियमित धर्मसाधनामे व्यतीत हो। ज्ञानार्जन तत्त्वचिन्तन जिसमें अपने आत्माकी सुध आया करे।

धर्मसाधनामें अप्रमादका कर्तव्य— सबसे न्यारा आनन्दस्वरूप यह मैं आत्मा प्रभु स्वभावत' स्वय समर्थ सत् हू। आनन्द इस ही में है, बाहरमें आनन्द नहीं मिलता। सब पदार्थ भिन्न हैं, अहित हैं—ऐसी चिन्तनाके माध्यमसे हम अपना एक घंटा प्रतिदिन समय धर्मसाधनामे लगायें तो हमारा यह दुर्लभ नर-जीवन सफल होगा। बाकी जो २३, २३॥ घंटा समय है उन समयोंमे भी निराकुलता और शान्ति रहेगी, बुद्धि विशेष काम करेगी लोगोंसे लोकव्यवहार भी सुन्दर रहेगा। यदि एक घंटा सविधि धर्मसाधना, में व्यतीत कर दिया तो इसके प्रसादसे हमारा रात दिन का समय भी आनन्दमे व्यतीत होगा। इसे न भूलना चाहिए गृहस्थ पदवीमे। जैसे नारकादिक गतियोंमे पाये हुए दु खका स्मरण अन्तरमें एक वेदना उत्पन्न कर लेता है, ऐसे ही पाया हुआ विशुद्ध ज्ञानानुभव का स्मरण अलौकिक आनन्द उत्पन्न कर देता है। हम आपके पास है क्या चीज, एक स्मरण, उपयोग, ज्ञान, इनको हम किस ओर लगायें, बस इसका सही निर्णय बनाना प्रयत्न करना यह विवेक है। हो अवश्य ऐसा साहस कि हम जैसे आध घंटे के समयमे एक अच्छी पद्धतिसे धर्मसाधनाके लिए बैठे हैं तो जो कुछ हैं वैभव, परिजन, कुटुम्ब, मित्र, बस सबका उपयोगसे हटाकर अलग करदें, इतनी हिम्मत हो सके। केवल थोड़े समयका भी तो वहां धर्मध्यान एक अनूठी पद्धतिसे बनता है।

बेतुकी धर्मसाधना— भैया! बेतुकी मनमानी पद्धतिसे तो बहुतसी महिलायें एक साथ चार पांच धर्मसाधनाके काम कर लेती हैं। बच्चेको भी खिला रही हैं, पाठ भी करती जा रही हैं, पूजा भी कर लेती हैं, माला

भी जपती जाती हैं,स्वाध्याय भी सुनती जाती हैं। यों अनेक काम कर लेती हैं, पर आप बतावो क्या वहा कुछ भी धर्म किया गया ? गृहस्थ भी चलते हैं, मदिर दर्शनको तो रास्तेमें विचारते हैं कि फलां रास्ते से चलें, बाजार में साग भाजी खरीदे, फिर मदिरमे दर्शन कर लेंगे अथवा अमुक वकील साहब मिल जायेंगे तो अपना काम कर लेंगे। यों अनेक बाते मनमे रक्खे हुए मदिरमे ध्यान कर रहे हो तो वह कैसा ध्यान रहा ? चाहिए तो यह था कि मदिरमे आयें तो जूता भी न पहिनकर आयें। एक पंडित जी ने बताया था कि ऐसे लोगोंकी यों स्तुति होती है। एक श्लोक है--त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव। सामने भगवान्की मूर्ति है, पीछे मंदिरका दरवाजा है, जहा पर इस भगतके जूते रखे हैं। अब ध्यान उसका दोनो ओर रहता है, क्योकि जूते नये हैं ना, सो वह थोड़ी देर जूतोंकी ओर देखकर कहता है--त्वमेव माता, में भगवान्की ओर देखकर कहता है—च पिता त्वमेव, फिर जूतोंकी ओर देख कर कहता है--त्वमेव बंधुश्च, फिर भगवान्की मूर्तिकी ओर देखकर कहता है—सखा त्वमेव। यह हालत होती है। जो इतना साहस बनाकर बैठ सकता है कि इस आध घंटेमें मुझे किसी की बात मनमें नहीं रखना है, वही प्रभुदर्शन कर सकता है।

धर्मसाधनमें आन्तरिक स्वच्छताकी प्राथमिकता— जो स्थिति है वह तो मिट न जायेगी, अगर आप आध घटे सबका ख्याल न रक्खें। तो जो कुटुम्बीजन हैं उनमे मोह न जगे, उनका ख्याल न रक्खे आध घंटे उपयोगमें धर्मध्यानके अवसर पर भी निरन्तर उन्हें बसाया जा रहा है यों धर्मसाधना न होगी। किसी बडे आफिसरको अपने घरमें आप बुलावें तो घरकी सफाई स्वच्छता और सजावट आप कितनी करते हैं और जब आप अपने हृदयमे भगवान् को बुलायें और गंदगी रक्खे तो कैसे आपके हृदय में विराज सकते हैं। आपके गंदे घरमे चाहे नेता आजाय, पर गंदे हृदयमें भगवान् नहीं विराज सकते हैं। तो एक आध घटे अपना स्वच्छ हृदय बनाकर धर्मसाधना करें, आनन्दानुभव करें, यहा यही उत्कृष्ट आनन्द है।

कि मर्माण्यभिदन्न भीकरतरो दुष्कर्म गमुत्तगण: ।
किं दु.खज्वलनावली विलसितैर्नालेढि देहश्चिरं ।।
किं गर्जद्यमतूर्यभैरवरवान्नाकर्णयन्निर्णयन् ।।
येनायं न जहाति मोहविहिता निद्रामभद्रां जना। ।।५७।।

मर्मभेदक प्रसंग-- इस जीव पर कितनी तो विडम्बना है, विपत्ति है, फिर भी यह मोही जीव नींदको नहीं छोड़ता। पापकर्मरूपी मुगदर इस जीवके मर्मको भेद रहा है, फिर भी अपने चित्तमें भय नहीं मानता। जीवन में रात दिन इस जीवके शांतिका विघात हो रहा है। कौन मनुष्य कब तक शात रहता है ? दिनमें, रातमे, दुकान पर, घर पर, गोष्ठीमें, समाजमें और देशमें कहीं भी तो इसे चैन नहीं है। पापकर्म के उदय ऐसे सता रहे हैं, कुछसे कुछ कल्पनाए बनाकर यह जीव व्यर्थ ही के दुख अपने ऊपर लेता रहता है।

दुख और शांतिका मार्ग— भैया ! किसी दुखमें डूबना हो तो उसके लिए भी बहुतसी तरकीब हैं और किसीको शाति पानी हो तो शातिकी भी तरकीब हैं। किसीकी धनहानि हानि हो जाए तो जिस धनकी हानि हुई है, उस पर दृष्टि रखकर, उसकी तृष्णा बनाकर दुख भी लादा जा सकता है और अपने अनन्त महिमावान् प्रभुके समान अपने स्वरूपका चिन्तन किया जाय। यह मैं तो स्वत ही सबसे न्यारा परम शक्तिमान् पदार्थ हु, उसका कहीं भी तो बिगाड़ नहीं है, सारे पदार्थ मुझसे बाहर हैं, उनकी जैसी परिणति है, उनकी तो बात जो भी हो सो हो, उसमें कौनसा बिगाड़ आया ? यदि इस ओर चित्त जाये तो लो शान्ति मिल गई, परन्तु मोह पापका जब उदय है तो शान्तिमय विचार नहीं बनते और क्लेशके लायक विचार बनाते हैं।

सांसारिक सुखमें दु:खकी व्यापकता—भैया ! ससारमें मौज भी हो किसी बातकी तो भी यह क्लेश का ही साधन है। इस सांसारिक सुखमे भी दु ख भरा हुआ है, क्योंकि यह संसारसुख परवस्तु का विचार करके होता है, वे परवस्तु मेरे आधीन नहीं, सासारिक सुख बडे पराधीन हैं। कर्मोदय अनुकूल हो, पुण्यका उदय हो तो विषयसाधनोंका योग मिलेगा। इतने पर भी ये समागम, ये साधन कल तक भी रहेंगे, इतना भी कोई विश्वास नहीं है। हम अदाज तो ऐसा ही करते हैं कि जो मेरी सम्पदा है, वैभव है, यह न बिछुडेगा, कैसे बिछुडेगा ? पर जिनका भी वैभव बिछुड़ता है वह कहकर बिछुड़ता है क्या ? जो भी समागम प्राप्त है वे विश्वास के योग्य नहीं हैं। ऐसी तो ससारकी विकट परिस्थिति है, तिसपर भी यह जीव चेतता नहीं। मोहकी निद्रामें ही अचेत रहा करता है, और गर्जना करते हुए यह यमराज जिनकी भेरीमें भयकर शब्द हैं उनकी भी यह नहीं सुनता। रोज रोज देखते हैं अनेक बालक, जवान और वृद्ध लोगोंको, यों ही गुजर जाते हैं। इतनी अनिष्ट मृत्यु देखते भी जाते हैं और खुद यह यह अनुभव

नहीं करते कि यह मैं इसी तरहका अकिञ्चन हू ।

आत्मविपद्का अनीक्षण – कोई पुरुष जंगल में किसी वृक्ष पर चढ़ा हुआ हो और जगलमे चारों ओर आग लग जाये तो वह मूर्ख उस पेड़पर चढ़ा हुआ रौद्रध्यान करेगा, मौज मानेगा । दूसरे जलते हुए जीवों को देखकर लो यह खरगोश मरा, लो यह हिरण मरा––ऐसा देख-देखकर वह खुश होता है और आग चारों ओर से बढती हुई चली आ रही है, फिर भी यह मूरख उस पेड़ पर चढ़ा हुआ खुश हो रहा है । उसे अपने आपका कुछ भी ख्याल नहीं है कि यह आग बढ़ती हुई आयेगी तो मुझे भी भस्म कर देगी । ऐसी ही इस संसारकी स्थिति है । ये संसारी जीव विषयसाधनों मे ही मस्त हो रहे हैं । अकल्याणरूप जो मोह है उसमें उत्पन्न हुई जो बेहोशी है, निद्रा है उसको यह नहीं छोड़ता है ।

मोहकी विकट निद्रा—किसीको नींद आ रही हो, उसे कोई मुग्दरसे मारे तो वह तो बड़ी जल्दी जग जाता है । कभी अग्नि लग जाय कपड़े वगैरहमे तो जल्दी जग जाता है, कोई बड़ी भयंकर दशा हो तो जल्दी जग जाता है, किन्तु यह मोह नींदमें मस्त हुआ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव इसे पापकर्मके मुग्दर जीवके अन्तःमर्मको भेद रहे हैं, फिर भी यह मोहनिद्राको नहीं छोड़ता । दुःखकी आग लगाये हुए चल रहा है । यह जीव दुःख क्लेश की ज्वालामें, फिर भी यह मोहकी नींदमे ही बेहोश हो रहा है । मृत्युके भयकर शब्द भी सुनाई दे रहे हैं, लेकिन यह अज्ञानी जीव अपनी मोहकी नींद नहीं छोड़ रहा है । जब तक इस मोहनिद्राका विनाश न होगा तब तक शान्तिके पात्र हम नहीं हो सकते ।

आनन्दका उपाय—भैया ! यहा आनन्द काहेका ? परवस्तु में मोह है उसका सारा क्लेश है, इतनी ही तो जड़ है क्लेशकी और क्लेश मिटाने का उपाय इतना ही तो है कि निजको निज परको पर जान लें । दुःखका उपाय इतना ही है कि परको अपना लिया जाय कि यह मेरा है । जितना इस मुझ आत्माका स्वरूप है उतनी ही अपनी दृष्टि बन रही है । मैं यह हूं—ऐसी अनुभूति हो, यही है क्लेश मिटानेका उपाय । ऐसी श्रद्धा हो, इसी का नाम है सम्यक्त्व । जब तक सम्यक्त्व नहीं जगता तब तक हम शान्ति का उपाय बना ही नहीं सकते । जब तक अज्ञान बसा हुआ है तब तक अशान्ति ही है । जहा अज्ञान है, मोह है, वहा क्लेश ही है ।

आत्माकी सुधमें लाभ—भैया ! जरा अपने आत्माकी सुध लो । रात दिनमें यदि आध घटा भी अपने आपकी सुध ली तो लाभ ही लाभ है । कर्तव्य यह है सबका कि सुबह और शाम इन दोनों समयोंमें शास्त्र

स्वाध्याय चिन्तन आदिके द्वारा अपने आत्माकी सुध लेते रहें। दिन भर का भूला हुआ शामको अपनी सुध लेता है और रात भरका भटका हुआ सुबह सुध लेता है। जो अपनी सुध नहीं रखता वह मायाजालमें कुछ इज्जत पाकर, वैभव समृद्धि पाकर कुछ मौज भी मान ले तो भी वह अज्ञानी है।

सर्वत्र यशकी व्यर्थ वाञ्छा—यह लोक बहुत विशाल है। समस्त लोकके आगे यह हजार दो हजार मीलकी पृथ्वी जिसमें हम अपनी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा रखते हैं, इसकी माप इतनी भी नहीं है जितनी माप बड़े समुद्रमें एक बूँदकी है। अरे जब समस्त लोकमें हमारा यश नहीं फैल सकता तो जरासी जगहमें जो समुद्रमें एक बूँद बराबर भी नहीं है, इतनेमें अपने नाम इज्जतकी धुन बनाकर यह अपना दुर्लभ मनुष्य जीवन बिगाड़ रहे हैं। इस मनुष्यजन्मका लाभ तो यह था कि धर्मसाधनासे ससारके संकट सदाके लिए मिटा लेते, पर मोहविषयोंमें ही इस नरजन्मको लगाया। इसका अर्थ यह है कि जैसे अनन्त जन्म पाये और उन बीते हुए जन्मोंका कोई फल नहीं पाया, जीवन भर विडम्बनाएँ सहीं, अन्तमें मरण किया, फिर नया देह धारण किया, जिस प्रकार जन्ममरणकी परम्परा अब तक चली आयी है, उसी प्रकार इस जीवनको भी व्यर्थ ही गँवा दिया, लाभ कुछ भी नहीं उठा पाया। प्रकृत्या इस जीवमें ऐसी हठ बनती है कि जहा मन राजी होता है उस कामको अवश्य करता है। इसका मन यशके लिए राजी होता है तो यशके काम करता है। कोशिश तो वह यही करता है कि मेरा नाम सर्वत्र फैले और सदाके लिए फैले, पर ऐसा हो कहा सकता ? बड़े-बड़े तीर्थंकर प्रभुका भी ऐसा नहीं हुआ।

सर्वदा यशकी व्यर्थ वाञ्छा—कौन जानता है कि अतीत कालके २४ तीर्थंकरोंका नाम क्या है ? उनका नाम थोडे ग्रन्थों में लिखा है सो बाचकर सुना दें किन्तु उससे पहिलेके चौबीस तीर्थंकरोंका नाम क्या है ? कुछ पता नहीं। वर्तमान तीर्थंकरोंमें भी इनेगिने दो तीनका, कोई-कोई नाम ले लेते हैं, तुझे अपना नाम फैलानेकी मनमें है तो ऐसा कर कि अनन्त काल तक तेरा नाम चले। हो कुछ कूवत तो करके दिखा। जब तेरा नाम चंद ही वर्षोंमें मिट जायेगा तो देख अनन्त कालके सामने ये चद वर्ष कोई मूल्य नहीं रखते। दुनिया भरके जितने समुद्र हैं उन सब समुद्रोंके मुकाबले जैसे एक बूंद कुछ कीमत नहीं रखती है, ऐसी ही अनन्त कालके सामने यह थोड़ासा १०० वर्षका समय कुछ मूल्य नहीं रखता है। तू यशकी वाञ्छा त्याग दे।

सर्व जीवोंमें यशकी व्यर्थ वाञ्छा—यह जीव चाहता है कि मेरा नाम बहुतसे पुरुषोंमें हो जाय। ठीक है, करले कोशिश। क्या ऐसा हो सकेगा कि सभी पुरुषोंमें उसका नाम हो जाये ? कभी न होगा और इस थोड़ी सी जगहके मनुष्योंमें नाम होता है तो कुछमें नाम होता है, कुछमें बदनाम होता है, सबकी यह बात है। कोई यश गाता है तो कोई अपयश गाता है। तू यश और अपयश दोनोंकी परवाह मत कर। जो आत्महितके लिए मार्ग निर्णीत किया है अटल होकर उस मार्गपर चल। मानलो कदाचित् बहुतसे मनुष्योंमें इज्जत नाम हो गया तो अब पशु पक्षियोंमें तो तेरा नाम नहीं चला। कदाचित् कल्पना कर लो कि सब मनुष्य मेरा नाम गाने लगे तो अभी ये गाय, भैंस, घोड़ा, गधा ये तो तेरा नाम नहीं गा रहे। इनमें भी नाम जमा ले तब तारीफ है। क्या ये जीव नहीं हैं ? जैसे मनुष्य मायारूप है, इन्द्रजाल है, वास्तविक पदार्थ नहीं है, ऐसे ही ये भी हैं, उन मनुष्योंमें नाम चाहते हो। इन गधा घोड़ोंमें भी नाम हो जाय तब तारीफ है, पर ऐसा कभी हो नहीं सकता। अनन्त जीव है। सभी जीवोंमें नाम बने तो नाम फैलानेका यत्न करें। थोड़ीसी अपनी गोष्ठीके अथवा स्वार्थी जनोंने कोई नाम गा दिया, इतनेमे बह गए तो फिर हम शान्तिके पात्र न रह सकेंगे।

न कुछकी वाञ्छामें बरबादी—भैया ! जब सब क्षेत्रोंमें, सब कालमे, सब जीवोंमे नाम नहीं चल सकता है तो थोड़े यशकी चाह करके अनन्त महिमानिधान इस आत्मभावनाको क्यों तिरस्कृत किया जाय ? मोहकी नींद छूटे तो शान्तिका मार्ग मिलेगा अन्यथा ससारमें भटकना ही बना रहेगा। जिनपर विश्वास बनाया है। स्त्री पुत्र मित्र धन वैभव ये कुछ काम न आयेंगे, इनको छोड़कर जाना ही होगा। कोई बहुत बड़ा धनिक है, करोड़पति है, बडे उसके मित्रजन हैं, परिवारजन हैं, आज्ञाकारी हैं, किन्तु मरण समयमे तो जो कपड़े कमीज बनियान आदि पहिने होगा वह तक भी साथ न जायेगा। केवल किया हुआ कर्तव्य करतूत ही साथ जाती है। यहां का समागम वैभव यह कुछ भी मदद नहीं दे सकता है। बस इस प्रकारकी तो ससारकी स्पष्ट स्थिति है, किन्तु यह मोही जीव अपने मोहकी नींदको भग नहीं करता है।

चेतावनी— हे आत्मन् ! चेत और सावधान बन, अपने आप पर निर्भर रह। ज्ञानभावना ही सब कर्तव्योंमें, तत्त्वोंमें, पुरुषार्थमें सार है। भेद-विज्ञान करके अपने आपमे ऐसी भावना बनाएँ कि मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हू। इसके बाहर मेरा कुछ वैभव नहीं, केवल ज्ञान और आनन्द जो मेरा

शाश्वतस्वभाव है, वही मेरी समृद्धि है, इससे बाहर मेरी कुछ चीज नहीं है। यह भीतरमें श्रद्धा रहे, चाहे करना कुछ पड़ रहा हो, अंतरगमे सच्ची श्रद्धा होगी तो निराकुलता रहेगी, आनन्द पानेके अधिकारी रह सकेंगे। इससे अब महत्व दें शुद्ध रत्नत्रयधर्मको, बाहरी जड़ पदार्थोंको महत्व न दें। मेरा आत्मा स्वय आनन्दस्वरूप है, इसका आलम्बन करेंगे तो आनन्द ही प्रकट होगा। एक इस चैतन्यस्वभावी आत्मस्वरूपका आलम्बन करना हम सबको योग्य है। अब यत्र तत्र श्रद्धा बिगाड़कर सकट न सहें। कठिनतासे आज यह नरजीवन पाया है। तो ज्ञानार्जन, सत्सग और गुरुसेवा करके इन सब गुणोंके माध्यम से अपने आपमें एक शुद्ध अविचल ज्योतिका अनुभव करलो।

मोह परिहारका अनुरोध— भैया! इतनी तो विपदा लगी है इस ससारी प्राणीके पीछे, पाप कर्मोंकी मार चल रही हैं, दु खकी अग्निमें झुलसा जा रहा है। यह मरा, वह मरा, इस प्रकारकी मरनेकी अवाजें भी सुनी जा रही हैं, फिर भी यह व्यामोही जीव मोहकी निद्राको नहीं तज रहा है, यह एक विषादकी बात है। आर्तध्यान दुखका कारण होता है। इसी प्रकार रौद्रध्यान भी आत्माके क्लेशका कारण होता है। ये दुर्ध्यान छूटें, ज्ञानभावना जगे, समाधिके लिए उत्कण्ठा बनी रहे और इसके लिए यथाशक्ति पुरुषार्थ बनाये रहें तो इस धर्मसाधनसे हम अपना ही जीवन सफल किया समझें। बाकी तो सब खाया, खोया, वह गया, ऐसी स्थितिकी बात है। इस छदमें यह शिक्षण दिया है कि तू मोहकी नींदको तज और अपने आपमें अपने ज्ञानप्रकाशका अनुभव कर।

> तादात्म्य तनुभि· सदानुभवनं पापस्य दुष्कर्मणो।
> व्यापार समयं प्रति प्रकृतिभिर्गाढ स्वय बंधनम्॥
> निद्रा विश्रमण मृते प्रतिभय शश्वन्मृतिश्च ध्रुवम्।
> जन्मिन् जन्मनि ते तथापि रमसे तत्रैव चित्र महत्॥५८॥

शरीर सम्बन्धका महाक्लेश— हे जन्म धारण करने वाले ससारी जीव! इस संसारमें कितना घोर दुख है? तो भी तू इस ससारमें भी रमण करता है, यह महान् आश्चर्यकी बात है। सर्व प्रथम तो महाक्लेशका कारण यह है कि तेरे आत्माका शरीरसे सम्बंध है। तो यह आत्मा जैसे स्वय सत् है और समस्त परद्रव्योंसे न्यारा है—ऐसे ही अलग होता तो कोई क्लेश न था। जो ऐसे अलग है उनका ही नाम तो सिद्ध है। सिद्ध भगवान् शरीरसे भी रहित है, कर्मोंसे भी रहित हैं और रागादिक भावोंसे भी रहित हैं। जैसे केवल यह अपने आप आत्मा होता है। कैसे रह गया है? वह सिद्ध भगवत भव्य पुरुषों द्वारा वंदनीय है, उनकी उपासना करके योगीश्वर अपना उत्कृष्ट

ध्यान बनाया करते हैं और निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

विविक्तभावनाका बल— यहां प्रथम तो क्लेशका कारण यह है कि शरीरमें फंसे हुए हैं। बडे बड़े योगीश्वरों पर कोई ऐसी भी विपदा आये कि जिसमे प्राण भी जा रहे हों। जैसे सिंहने आक्रमण किया, शत्रु तलवार मार रहा हो, ऐसी भी स्थितिमे योगीश्वर जरा भी नहीं घबड़ाते हैं, न ही चिंता लाते हैं और परम समता रसमें मग्न हुए प्राण छोड़कर सद्गतिको प्राप्त होते हैं। यह बल उनमें कैसे प्रकट हुआ? इस बलके प्रकट होनेका कारण ज्ञानभावना है। वे जानते हैं और अनुभव भी कर रहे हैं कि मै तो केवल ज्ञानस्वरूप हूं, शरीरसे तो न्यारा हूं ही, इसका सम्बन्ध तो दुखका देने वाला है, मै इसका सम्बन्ध चाहता ही नही हू। मेरी वही स्थिति हो, जिसमे मै केवल अपने आपमे रहू। शरीरका सम्बन्ध मुझमे न रहे, ऐसी तो उनकी भावना बनी हुई है। फिर वे शरीरके वियोगमें प्राणघातके समय क्यो घबड़ाएं? जितने भी कष्ट आ रहे हैं, वे इस देहके सम्बन्धसे आ रहे हैं।

केवल रहनेमें क्लेशका अभाव— हे हितार्थी आत्मन्! इस देहको चित्तमें न विचारो, अपनी इन्द्रियोको संयत करके और विशेष करके आखो को बन्द करके अपने आपमें कुछ भीतर निरखो, जहां केवल एक कुछ उजालासा और बादमें कुछ ज्ञान ज्योतिसी अनुभवमें आएगी। इतनेमे यह मैं हूं, ऐसा स्वीकार करके फिर चिंतन करिये कि यदि मै केवल ज्ञानप्रकाशमात्र ही रहा होता और शरीरका सम्बन्ध न होता तो मुझे कोई आकुलता ही न थी। लोग भूखके दुखसे तड़फते हैं, यह भूख क्यों लगी है? शरीरका सम्बंध है, इसलिए लगी। प्यास, ठण्ड गरमीके रोग आदि सब वेदनाएं क्यों होती है? शरीरका सम्बध है, इसलिए हुआ करती हैं। यहा तक कि किसी घटनाके कारण अपमान सम्मान समझते हैं। अपमान समझकर दुखी होना या नामवरीकी चाहका क्लेश करना आदि सब दुख क्यों होते हैं? शरीरका सम्बध है और इस शरीरको निरखकर ऐसा मान रक्खा है कि यह मैं हू—इस बुद्धि से फिर दुख होने लगता है।

विदेहत्वभावना— हे भगवन्! मेरा कब ऐसा समय आये कि इस शरीरसे भी मेरा छुटकारा हो जाए? इस शरीरसे छुटकारा हो गया और अगले भवमें दूसरा शरीर मिला तो इससे फायदा नहीं है। सदाके लिए यह शरीर छूट जाए, इसका सम्बन्ध न रहे, यही भावना भाइये, यही धर्मका पालन है। यह बात यदि मनमे जग गई या समा गई तो समझ लीजिए कि यहींसे धर्मपालन है और आप फिर कृतार्थ हो गए। फिर आपको कुछ भी

जरूरत नहीं है। धन वैभव तो प्रकट भिन्न है, यह रहे अथवा न रहें, कैसी भी स्थिति हो, यह तो अपने स्वरूपके कारण न्यारा ही चमक रहा है, फिर बाह्यपदार्थोंसे क्या सम्बन्ध है? मैं आत्मा केवल अपने आपमें ही नित्य प्रकाशमान् हू। लौकिक वैभव समृद्धिकी चिन्तामे क्यों अपने रात दिन गँवाता है? यह काम इस मनुष्यपर्यायमें आकर करनेका न था, ये तो होते रहते हैं। मनुष्य होकर कर्तव्य तो धर्मपालन का था और धर्म-पालन तब तक हो नहीं सकता जब तक चित्तमे यह बात न समाये कि हे प्रभु! मेरी वह स्थिति बने जबकि किसी देहका भी मेरे साथ सम्बन्ध न रहे। मैं जो हू सो ही केवल रह जाऊँ, इतनी भावना जगे बिना धर्मका पालन नहीं है।

धर्मपालनका आनन्द—धर्मके लिए यदि कोई लोग विवाद करते हो या धर्मके नाम पर शोरगुल मचाते हो तो उन्हें मचाने दीजिए। उनके शोरगुलमें शामिल न होइए। धर्मपालन तो इस भावनामें है कि मैं कब देहसे रहित स्वतन्त्र केवल आत्मा ही आत्मा रह जाऊँ, इसी ही भावनामे धर्मका पालन है। धन समागम वैभव परिजन ये कुछ काम न आयेंगे। और आपके भीतरमें यह भावना बन जाये तो यह भावना आपका बहुत काम देगी। इस ही भावनासे धर्मका पालन होता है। धर्मपालनके साथ-साथ जब तक ससारमे और रहना शेष है तब तक बडे-बडे पुण्य बधेंगे और उनके उदय सामने आयेंगे। लोग खोटे भाव बनाकर, पापका परिणाम बनाकर चिंता और सक्लेश करके धनका उपार्जन करना चाहते हैं। धन का उपार्जन तो पुण्यके अनुसार होता है और पुण्य भी विशेषतया तब बनता है जब कुछ धर्मपालन भी हो रहा हो। इस भावनामें आनन्द ही आनन्द है। जब तक ससारमें रहेंगे तब तक भी आनन्द है और जब ससारसे मुक्त होंगे तब तो परम आनन्द है ही।

ससरणमुक्तिके लिये नि ससारत्वकी भावना—भैया! जीवनका अपना एक भाव बनाएँ—मैं तो इस देहसे रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रहना चाहता हू। जैसी रुचि होगी वैसी भावना बनेगी। जैसी भावना बनेगी वैसा परिणमन होगा। शुद्ध परिणमन चाहते हो तो अभीसे अपनी शुद्ध भावना रखना है। यह ससार समस्त क्लेशमय है। इसमें क्लेशका महाकारण तो पहिले इस शरीरका ही सम्बन्ध है। इस देहके ही कारण तो मरण हुआ करता है। देह न हो तो मरण काहेका? इस देहसे छूटे अन्य देहमें गमन किया और जो जन्म मरणके बीचका समय है जिन्दगीका, उसमें नाना प्रकारके पाप किये, यह है संसारीजनोंकी दशा।

बचपनका काल्पनिक क्लेश—अहो ! इस ससारमे शान्ति कहा है ? जन्ममे क्लेश, मरणमे क्लेश, बीचकी जो जिन्दगी है उस जिन्दगीमे क्लेश। जब बच्चा था तब बच्चो जैसे क्लेश थे। मन माफिक बात सारी किसकी होती है ? बचपनमे भी अनेक चाहें की। मान लो इतनी भी मनमे बात आये कि माके पास बच्चा बैठा है और वह चाहे कि मा यहासे चले, पर मां वहासे न चले तो वह दु:ख मान लेता है। मन माफिक कोई बात न हुई, उसमे क्लेश माननेका काम बचपनमे भी रहा। जब कुछ बड़ा हुआ तब भी मन माफिक बात न होनेका क्लेश बना रहा। बड़ा हुआ, विवाह हुआ, सतान हुई, धन भी कमाया, किन्तु उन दिनोंमें भी मन माफिक काम कहीं नहीं होता। जब मनके अनुकूल काम न हुआ उस समय यह हठी जीव अपनी हठके कारण दु खी होता रहता है।

जीवनका सम्यक् उद्देश्य—भैया ! इस जिन्दगीमे इस जिन्दगीसे सम्बधित, इस देहसे सम्बधित किसी भी व्यवहारमे आनन्दकी श्रद्धा न रक्खो। सबकी नकल नहीं करना है। देशकी, समाजकी सेवामे ही उद्यत रहो तो उसमें भी धोखा है। कोई विरला ही सत गृहस्थ ऐसा होगा जो मोक्षमार्गको पसद करता हो; ससार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हो अन्यथा तो यह सारा मानव मोह और कुबुद्धिमे फसा हुआ है। उनके वैभव ऋद्धिको देखकर मनमें तृष्णाका भाव न लावो। अरे यह वैभव आता हो तो आये, न आता हो न आये, हम तो प्रत्येक स्थितिमे जीवनका गुजारा कर सकते हैं। यह जीवन दुनियाको मैं धनी हू ऐसा बनानेके लिए नहीं पाया, किन्तु दुर्लभ धर्मके पालनके लिए पाया है। धर्मपालन तब ही हो सकेगा जब चित्तमे यह समाया हुआ हो कि मुझे तो देहसे रहित, सब झझटोंसे रहित केवल अपने आपके आत्मारूप ही रहना है, इस ही की शुद्ध भावना भावो।

मोहीका निरन्तर वर्तमान रोजगार—यह जीव ससारमे जन्म लेकर पापकर्मके फलको ही सदा भोगता रहता है और उससे बहुत-बहुत पापका बन्धन करता रहता है। इस जीवका व्यापार यही है। निरन्तर इसका यही व्यापार चल रहा है—खोटे भाव करना, खोटे कर्म बाधना दु:ख भोगना—बस यही इसे रुचिकर है। आसक्तिमें तो यह जीव यही रोजगार कर रहा है खोटे भाव करना, कर्मबन्ध करना और दु:ख भोगना, यही इसका रात दिनका व्यवसाय है। इन सब व्यवसायोंको कर करके इसे निद्रा आती है तो निद्रामें भी यह व्यापार रुकता नहीं है। जब जग रहे हैं तब भी खोटे भाव, कर्मबन्ध, दु:खका भोगना—ये ही तीन काम। नींद भी

आ जाये तो भी ये तीनों काम बराबर चलते रहते हैं। इसके इस रोजगार की दुकान चौबीस घंटे खुली रहती है।

मायाभेदिनी विदेह भावना—हे आत्मन्! अपने आप पर कुछ दया तो करना चाहिए। यह पौद्गलिक विभूति बहुतसी निकट आ जाय तो यह इसकी मदद कहा देगी? कुछ भीतरी भावसे तो सोचिए। जिन लोगों में कुछ अच्छा कहलानेके लिए धनी बननेकी होड की जा रही है, वे जीव तो आपसे भी अधिक मलिन और अज्ञानसे भरे हुए हैं। दूसरोंसे अपने को कुछ कहलवानेके लिए उद्यम न करो। अपने आपको अपने भीतर निरखिये और जो कुछ अपने हितके लिए हो सकता हो, उस कार्यको करिये। ऐसा किया तो आप बुद्धिमान् हैं और न किया तो जगतमें जैसे पशु जन्म लेते हैं, मर जाते हैं, फिर जन्म लेते हैं, ऐसा ही जन्म मरणका सिलसिला हम आपका भी चलता रहेगा। इस मानवजीवनसे कुछ लाभ तो उठाओ। मुझे तो देहसे रहित केवल आत्मा ही आत्मा रहना है, प्रभुके दर्शन करके, पूजन करके वही भाव भरियेगा। धर्मपालनके जो भी साधन हैं—सत्संगमें रहना, स्वाध्याय करना आदि इनमें यही भाव भरिये कि मेरे आत्माका प्रोग्राम तो केवल यही एक है कि मुझे तो शरीरसे भी न्यारा केवल अपने आपके सत् रूप रहना है।

परसम्बन्धविदारिणी निजस्वरूप भावना—मेरे साथ किसीका सम्बन्ध न रहो, ऐसी बात तब बन सकती है जब इस फसी हुई हालतमें भी इस फँसावको न देखकर इन शरीरादिक पर दृष्टि न करके केवल ज्ञानप्रकाशमात्र अपने आपको अन्तरमें निरखें और उसकी भावना बनाएँ। इतना ही मात्र मैं हू, ज्ञानमात्र मैं हू, ऐसी दृढ भावना रक्खे तो वह समय आयेगा कि जिस स्थितिको हम आज पूज रहे हैं मूर्ति बनाकर अरहत और सिद्ध प्रभुकी, ऐसी निर्दोष स्थिति हम आपकी निकट भविष्यमें आ जायेगी। पर जाप, भावना, चिन्तन इस ज्ञानमात्र निजस्वरूपकी की जाय एक दृढ सकल्प कर लीजिए, एक गाठ बाध लीजिए, मेरी और कोई चाह नहीं है। मै तो केवल ज्ञानानुभव रूप रहना चाहता हू।

पुरुषार्थक दृढ सकल्प—जैसे चींटी भींत पर चढती है, कुछ दूर चढ कर गिर जाती है। फिर चढ़ती है, फिर गिर जाती है, पर उसका ऐसा उद्यम रहता है कि चढ़ना नहीं छोड़ती और किसी समय ऊपर तक चढ जाती है, ऐसे ही हम अपने रत्नमय पथ पर चलते हैं और उस पथसे हम गिर जाये। फिर भी प्रयत्न तो यही करने योग्य है। फिर धर्ममें लगिए, फिर रत्नत्रयके पालनमें लगिए, यही एक काम प्रशसनीय है। शेष सब कार्य तो

केवल व्यामोहमात्र है। किसीका विश्वास न रखिये। ईंटोंका बनाया हुआ यह घर और कहा अनन्त ज्ञान ऐश्वर्यका धारी यह आत्मा भगवान्, इसे उस घरमें जोड़ना चाहिए क्या ? कहा यह ज्ञानानन्द चमत्कारमय परमार्थभूत भगवान् आत्मा और कहां ये जड़ पौद्गलिक वैभव ? इनमें आत्माको जोड़ना चाहिए क्या ? यह तो उदयानुसार स्वय आता है। इसकी ओर तृष्णा रखनेमें कोई लाभ नहीं है। यह मनुष्यजन्म दुर्लभ जन्म है, इसका मूल्य मूली गाजरकी तरह न आंकिये, अपने दिलमें एक बात जमा लीजिए कि मैं सबसे न्यारा देहसे भी जुदा केवलज्ञानरूप हूं।

समताकी आवश्यकता— यह ससारी पुरुष केवल दु खका ही व्यवसाय करता है। खोटा परिणाम किया, कर्मबंध हुआ, फिर दु ख भोगा, जन्म लिया, मरण किया, और कभी अपने इस तीव्र व्यवसायसे थक गया तो नींद लेने पर भी यह जगता नहीं है। यह सदा मृत्युसे डरता है, पर भाई मृत्यु समान उपकारी जन्म, जवानी आदि और कुछ दशा नहीं है। क्यों इस ओर दृष्टि नहीं करते ? मृत्युका अर्थ इतना ही तो है कि देहसे जीव अलग हो गया। देहसे अलग हो जानेमें कुछ अकल्याण नहीं है। यह देहसे अलग रहा करे, बस यही तो भगवान्का स्वरूप है। क्यों घबड़ाते हो, और कदाचित् मानलो, नहीं निर्वाण हो रहा व देहसे अलग हो रहे, तब भी समता रक्खोगे तो इस देहसे भी अच्छा देह पावोगे। मृत्युसे क्यों डरता है ? इसीसे तो हर स्थितियोंमें जन्मसे लेकर मरण तकके सब प्रसगोमें दु ख ही दु ख भोगता है।

दु खके हेतुओंसे निवृत्त होनेका अनुरोध— यद्यपि जगतकी ऐसी रीति है कि जो दुःखके जनक है, उनमें नहीं रमता किन्तु यह संसार तो मोह दु खसे भरा है, उसमें क्यों रम रहा है ? सब देहोंमे उत्कृष्ट देह यह मनुष्यका है, जिस शरीरसे मुक्ति सम्भव है। उस मनुष्यकी यह दशा है फिर अन्य जीवोंके दु खकी कहानी ही क्या कहें ? गर्भमें आया तब दु ख, अशुचि देहमें औंधा मुँह करके यह ९ माह तक लटका रहा, गर्भकी कठिन वेदना रहती है उस समय। गर्भसे निकला तब दु ख। बाल अवस्थामें अज्ञान दशा थी। कुछ सुध न थी। जवानीमें काम आदिक अनेक विकारोंसे व्याकुल रहा बुढापेमे अंगोंकी शिथिलतासे क्लेश पाया। देव भी बन जाय तो तृष्णावश वहा भी दु खी रहा इष्ट वियोग वहा भी होता है, उनके आगे देवियां मर जाती हैं उनका दु ख मानते हैं। ऋद्धिधारी देवको देखकर मनमें कुढ़ा करते हैं। तिर्यञ्चोंके दुःख सामने है नारकियोंके क्लेशका भी अदाज बना हुआ है यह खोटे भाव करता है कर्मप्रकृतियोंका बंध करता है।

निद्रामें बेहोश रहता है, मरते समय दुःख मानता है। यों सारा दुःख इस शरीरके कारण है। इस कारण शरीरसे मुझे अलग होना है। मुझे केवलज्ञान प्रकाशमात्र रहना है, ऐसी अपनी भावना बनाएँ। इस भावनासे ही धर्मपालनका प्रारम्भ होता है।

अस्थिस्थूलतुलाकलापघटितं नद्धं शिरास्नायुभि-
श्चर्मच्छादितमस्रसान्द्रपिशितैर्लिप्तं सुगुप्तं खलैः।
कर्मारातिभिरायुरुच्चनिगलालग्नं शरीरालयम्।
कारागारमवेहि ते हत मते प्रीतिं वृथा मा कृथा ॥५६॥

शरीर कारागार— यह शरीररूपी घर तेरा कारागारकी तरह है। जैसे कारागारमें बँधा हुआ कैदी कारागारसे बाहर नहीं जा सकता, उससे भी और विकट अधिक बँधा हुआ यह आत्मा देहमें है। कोई किसीको आज निमंत्रण कर जाय, तुम्हारा कलका निमन्त्रण है, लेकिन हमारे ऊपर कृपा करना कि आप अकेले ही आना और अधिक हमारे गुजायश नहीं है। अपने आप आ जाना १० बजे, और वह पहुंच आय १० बजे। निमत्रणदाता कहे, क्यों साहब, हमने तो आपको अकेले आनेको कहा था, तुम तो बहुतोंके साथ आ गये ? अब वह विस्मयमें पड़ा। मैं मैं अकेला ही तो आ गया और यह कहता है कि तुम बहुतोंको साथ ले आये। मैं अकेले ही तो आया हू। तो निमत्रणदाता कहे कि पहिले तो यह ही बतावो कि तुम अपने साथमें यह पिंडोला ले आये, हमने तो आपको अकेले ही आनेको कहा था। यह शरीररूपी पिंडोला क्यों ले आये ? अब क्या करें, जब तक यह जीव बंधनबद्ध है, शरीरको छोड़कर कहा जायें ?

वेदनासमुद्घात— कभी-कभी इस जीवका प्रदेशविस्तार इस देहसे बाहर भी हो जाता है, लेकिन यदि बिल्कुल दूर हो जाय तो उसका नाम है मरण। और कुछ दूर हो जाय और देहमें भी रहे ऐसी स्थितिका नाम है समुद्घात। जैसे कभी व्याधिकी तीव्र वेदना हो, तेज बुखार, ऐसी ही कठिन वेदना हो तो उस समय भी इस जीवके प्रदेश कुछ दूर तक शरीरसे दूर हो जाते हैं। जब वेदना नहीं सही जाती, बड़ी विह्वलता रहती है तब ये प्रदेश शरीरसे बाहर भी कुछ निकल जाते हैं, और ऐसे समयमें ये प्रदेश कहीं बढ़िया औषधि हो और वहा तक पहुच जायें तो वापिस तो यह तुरन्त ही आया करता है। कहो इसका रोग भी अच्छा हो जाय, ऐसी भी स्थितिया हो जाती हैं।

कषायसमुद्घात— कभी यह जीव क्रोध कषायमें तेज हो गया, जिसे लोग कहते हैं कि यह आपेमें नहीं समा रहा। कोई विशेष क्रोध करता है

तब लोग कह भी देते हैं—आप आपेसे बाहर क्यों हुए जा रहे हो, तो वह सचमुच दूर हो जाता है। इस जीवके प्रदेश शरीरमें भी रहते हैं और प्रचड क्रोधके समय कुछ शरीरके बाहर भी आ जाते हैं, यह स्थिति देर तक नहीं रहती। फिर वे प्रदेश शरीरमें समा जाते हैं।

विक्रियासमुद्घात—तपस्विजनोंको विक्रिया ऋद्धि प्रकट हो जाती है, इसके उपयोगमे उनका कोई अभीष्ट अग बढ़ता जाता है। जहा तक अङ्ग बढ़ता चला जाय वहा तक उनके आत्मप्रदेश मूलशरीरको न छोड़कर फैल जाते हैं। दोनोंको विक्रिया ऋद्धि है। देवोंका शरीर तो जो उनका निवास स्थान है, वहा ही रहता है, पर वे अनेक उत्तर शरीर बनाकर बहुत दूर तक भेज सकते हैं। ऐसी स्थितियोंमें मूल शरीर जहां बस रहा है वहां से लेकर यह बनाया हुआ दूसरा उत्तर शरीर जहां-जहां तक डोले उस बीच में आत्म प्रदेश रहते हैं। मूल शरीरको छोड़ते नहीं है वे प्रदेश।

मारणान्तिक समुद्घात—जब कभी किसी जीवका मरण होता है उस समय मरने पर यह जीव जहां आगे जायेगा उस स्थान तक फैलकर हो जाता है। फिर बादमें इस शरीरमें समाकर फिर एक साथ निकल जाता है। शरीरको बिल्कुल छोड़कर निकले उसका नाम है मरण, पर उस मारणातिक समुद्घातमें इस देहमें भी जीवप्रदेश रहते हैं और जहां पैदा होता है फैलकर वहा तक ही आता है। यह स्थिति बहुत ही कम क्षणकी है। फिर वापिस देहमें आकर, पूरा समाकर एक साथ निकल जाता है।

तैजससमुद्घात—कोई तपस्वी साधुके एक ऐसी सिद्धि हो जाती है कि उन्हें कभी प्रसन्नता जगे ग्रामपर, लोगोंपर तो उनके दाहिने कधेसे तेज निकलता है। मनको प्रिय लगे ऐसा तेज निकलकर जितनेमें फैलजाय वहा तक रहने वाले लोगोंका रोग मिट जावे, आधि व्याधि आदि कोई रोग आयें, सकट आयें तो वे खत्म हो जाते हैं और कदाचित् उन योगीश्वरों के किसी पर कोई यदि कार्य आ जाये तो बांये कधेसे तेज निकलता है, वह क्रोध दूसरेको भी भस्म कर देता है और फिर बादमें वह साधु भी उस से भस्म हो जाता है, फिर साधु नहीं बचता। ऐसी स्थितियोंमें भी ये जीव के प्रदेश मूलशरीरको छोड़कर इस शरीरसे दूर हो जाते हैं, फिर शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं।

आहारक समुद्घात—ऐसे ही किसी बड़े योगिराजके ऐसी ऋद्धि प्रकट होती है, इतका भाव हुआ कि मुझे भगवान्‌का दर्शन करना है, अमुक नगरमें भगवान् विराजे हैं, उनका दर्शन करना है, अथवा कोई विशिष्ट धर्मस्थान हो वहां वंदना करनी है तो उनके मस्तकसे एक बहुत

मन प्रिय पवित्र श्वेत रंगका, किन्तु किसीको दिखने वाला नहीं, आहारक नाम है उसका, वह पुतला निकलता है और प्रभुके निकट जाकर प्रभुके दर्शन कर लेता है। उसके चित्तमें कभी शंका उपस्थित हो जाये तो उसका समाधान करनेके लिए यह पुतला जहां भी भगवान् विराजे हों वहां तक पहुंच जाता है। भगवान्के दर्शन करते ही यह सब शंका समाप्त हो जाती है, समाधान हो जाता है। ऐसी कुछ स्थितियोंमें यह जीव देहके बाहर निकलता है, बाकी तो सदा ही समझिये इस देहमें बंधा हुआ रहता है।

शरीर-कारागृहकी रचना— यह शरीर कारागारकी तरह है। जिस शरीरसे हम इतना अनुराग करते हैं कि अन्य कुछ बात कर्तव्य की, धर्म की इस आत्मदेवके मनमें नहीं आती, वह देह बंदीगृहके समान है। इससे प्रीति करना वृथा है। इससे प्रेम करते रहें तो भी नष्ट होगा, न प्रेम करें तो भी यह नष्ट होगा। यह तो भिन्न वस्तु है, इससे राग करना वृथा है। कैसे है यह शरीर कारागार ? कैदियोंका कारागार तो पत्थरसे बना हुआ है, वहां मजबूत और पुष्ट पत्थरोंकी दीवालें हैं, जिससे बाहर यह कहीं भाग नहीं सकता और यह देहका जेलखाना कैसा है कि यह हड्डियों करके बना है वह पत्थरसे बना है जिसमें कैदियोंको कैद रक्खा जाता है, और जिस देहमें इसको कैद रक्खा गया है वह देह हड्डियोंसे बना है और फिर नसोंके जालके बन्धनसे बंधा है। कितनी नसे हैं देहमें ? इसकी गिनती कई हजारकी है और कुछ यदि कभी दुर्बलता आ जाय तो दिखने लगती हैं। कितनी तरहकी और कैसी कैसी नसोंका जाल है, अनेक नसजालोंके बन्धनसे बँधा है यह शरीर रूपी कारागार और चर्मसे आच्छादित है। जैसे जेलखाना पत्थरसे बना है, और सीमेन्ट से मढा हुआ है, सीमेन्टका पलस्तर लगा है, चूनेसे पुता है— ऐसी ही बात इस देहकारागारकी लेनी, यह चर्मसे आच्छादित है।

शरीरकारागारका निमित्त व कोठरीपरिवर्तन—यह शरीरकारागार ऊपरसे कितना भला लगता, पर इसमें अपवित्र-अपवित्र ही चीजें बसी हुई हैं। यह शरीरकारागार खूनकी आर्द्रतासे सजल कीचड़ जैसा लथपथ माससे लिपा हुआ है। जैसे जमीनमें पानी डालकर गिलाव बनाया जाता है, ऐसे ही रुधिर तो पानीकी तरह है और यह मास मिट्टीकी तरह है, खून व मास मिल करके यह लथपथ हो गया है। इसे बनाया किसने है ? जेलखानेके घरको तो किन्हीं कारीगरोंने बनाया, पर इस देहके जेलखानेको किसने बनाया है ? इन दुष्ट कर्मरूपी वैरियोंने बनाया है। हम लोग भावरूप कर्म करते हैं। उन कर्मोंसे ऐसा ही वातावरण बनता है, ऐसे द्रव्यकर्म

बँधते हैं कि जिनका उदयकाल आने पर यह शरीर निर्मित हो जाता है। कैसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि जीवको मरनेके बाद ज्यादा नहीं भ्रमण करना पड़ता, एक सेकेण्ड भी नही घूमना पड़ता। एक सेकेण्डके अनगिनते हिस्सोमे वह दूसरे देहबीजपर कब्जा कर लेता है।

तेहरवीका मूलरूप—भैया! ऐसा नहीं है कि मरनेके बाद यह जीव घूमता फिरे। इसे तो नये शरीर के धारण करनेमे एक सेकेण्डका असख्यातवां हिस्सा भी नहीं लगता। जो यह परिपाटी है कि मरेके बाद तेहरवे दिन उसका ठिकाना लगता है, इसका आशय यह था कि मरणका पातक १२ दिनका होता है, श्रावकोंका। किसी इष्टके मरनेके बाद गृहस्थ १२ दिन तक साधुवोको, त्यागियोंको आहार खिलानेका पात्र नही कहा गया है। जब तेहरवां दिन लगता है तो सुबह शुद्धिपूर्वक भोजन बनाए और द्वारपेक्षण करे। तेरहवें दिन उसको ऐसी पात्रता होती है कि किसी साधु को आहार कराया तो तेहरवें दिनके भोजनका काम साधुवो सन्यासियों त्यागियोंका था, जिसमें धीरे-धीरे पहिले तो कुछ लोक सामान्य पुरुषोंको जिमानेका था, अब बिरादरी, पच सबका काम हो गया। उस तेहरवे दिन का अर्थ है कि तेहरवें दिन वह साधुको भोजन करा सकता है।

बदीगृहका बदी—यह शरीररूपी जेलखाना दुष्ट कार्यरूपी वैरियों से रचा है और इसमे बद हुआ जो यह जीव है, इस जीवको जकड़ रक्खा है आयुकर्मकी बेड़ीने। यह जीव शरीरमे बद्ध है, पर यह कब तक यहां बधा रहेगा? उसका विशेष बन्धन आयुकर्मने किया है। जितनी आयु होगी उतने समय तक यह शरीरमें रुका रहेगा। लोकमे जेलखाना दुःखका कारण है। जेलखानेकी और देहकी उपमा देखो—करीब-करीब बराबरकी मिलती है। यह जेलखाना मिट्टी पत्थरसे घड़ा गया है तो यह शरीर हड्डियोंसे घड़ा गया है। वह जेलखाना बन्धनसे बेड़ा गया है तो यह शरीर नसोंसे बेड़ा गया है। जेलखाना सीमेन्ट पलस्तर जो कुछ भी हो उनसे आच्छादित है तो यह शरीर चर्मसे आच्छादित है, यह रुधिर मास करके लीपा गया है। शरीर दुष्ट बैरियोंसे रचा है, आयुरूपी बेड़ीसे सहित है, ऐसे बदीगृहसे कौन बुद्धिमान् प्रीति करेगा? तू मोहमें पगा है, ऐसे शरीर-रूप बदीगृहसे भी तू प्रीति करता है, इससे प्रीति करना उचित नहीं है।

अन्तर्दृष्टिके अनुसार बाह्य दर्शन—अनेक बातें दृष्टिके अनुसार होती हैं। जब यह उपयोग कुछ ज्ञान और वैराग्यके मर्मको लिए हुए होगा तब इसे यह शरीर मनोहारी प्रिय पवित्र न जँचेगा और जब इस उपयोग मे मोह, राग, काम आदिक बसे होंगे तो यह शरीर सुहावने और पवित्र

जचेंगे। जैसे कि शास्त्रमें कहा है कि दूसरेके देहका अनुराग, मोह अथवा सेवन एक नरकका द्वार है। वह भूल जाता है फिर उसे पवित्र और सुहावना ही जंचता रहता है। जैसे जब आपका मन हर्षित होगा, तब बाजारसे निकलेंगे तो सब आपको खुशी नजर आयेंगे। सब सुखी हैं, सब मजेमें हैं, ऐसा ही सब कुछ दीखेगा, और जब किसी कारणसे चित्त खेद खिन्न होगा तो चाहे कोई लोग हस भी रहे हों, शान्तिमें भी विभोर हो रहे हों तो भी उसे लगेगा कि यह अन्दरसे सुखी नहीं है, बनावट करके हस रहा है।

सुन्दरताकी दृष्ट्यनुसारिता— जैसे पूछा जाय कि यह तो बतावो प्रकृतिसे शरीर मनुष्यका सुन्दर होता है या स्त्रीका ? तो इसका कोई एक उत्तर न देगा। कोई कहेगा कि स्त्रीका रूप सुन्दर होता है, कोई कहेगा कि पुरुषका रूप सुन्दर होता है। जिसकी जैसी दृष्टि होगी वह उस दृष्टिके अनुसार जवाब देगा। पुरुष अपनी ये युक्तिया देंगे कि देखो भाई तिर्यंचोंमें गाय और बैल होते हैं, भला बतलावो उनमे सुन्दर कौन जचता है? अथवा मुर्गा मुर्गी पशुवोंमें कौन सुन्दर जंचता है ? शेर शेरनी, कुत्ता कुतिया, हर एक जोड़ा ले लो, उनमें कौन सुन्दर जँचता है ? सबका अपनी दृष्टिके अनुसार उत्तर होगा। जैसी दृष्टि होती है वैसा ही बाहरमें भी नजर आता है। यदि चित्त ज्ञान और वैराग्यसे सुवासित है तो यह देह ऐसा ही जचेगा कि बंदी गृह है, जेलखाना है, यह जीव बँधा है, पिड़ा है, बड़ा असहाय है— इस दृष्टिके साथ-साथ आत्मकल्याणकी भी बात मनमें आयेगी।

आत्माका अलिङ्गस्वरूप— एक बार रुड़की नगरमें ७ दिन ठहरना हुआ। आम व्याख्यान होने से जैन और उससे भी तिगुनी सख्यामें अजैन जनताने लाभ लिया। सुबह मंदिरमें प्रवचनहोता था। एक दिन एक अजैन महिला वहा आकर प्रवचनके बादमें बोली कि महाराज ! हमको एक बड़ा दुःख है। हमने कहा—क्या दुःख है ? तो वह बोली कि हम स्त्रीपर्यायमें हैं और हमारे मनमें सदा यही सक्लेश रहता है कि हम स्त्री हैं, अबला हैं, कुछ कर नहीं सकतीं, धर्ममें बढ़ नहीं सकतीं, और कभी-कभी लोग कह देते हैं कि स्त्रीपर्यायसे मोक्ष नहीं होता है, इसका हमें बड़ा क्लेश रहता है। पहिले तो सीधा यह बताया कि देखो आजकल न पुरुषोंको मोक्ष है न स्त्रीको मोक्ष है, इस बातकी तो तुम पुरुषोंसे ईर्ष्या मत करो। दूसरी बात यह है कि तुम यह विचारो कि तुम्हारा जो आत्मा है वह क्या स्त्री है ? आत्माका क्या स्वरूप है ? तुम क्या देहरूप हो, क्या इस देहको सदा ही लपेटे रहोगी, इसे छोड़कर न जावोगी ? तुम्हारा जो अस्तित्व है उसको देखो—क्या आत्मा स्त्री है ? नहीं है। तो अपने आत्मापर दृष्टि दो और

यह तो कभी भी अन्तःविकल्प न करो कि मैं स्त्री हू। जैसे कि हम लोग पुरुष भी नहीं हैं।

आत्माकी प्रभुता— भैया ! यह अभिमान करना भी मिथ्यात्व है कि मै पुरुष हूं। आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है। यह तो एक असमानजातीय द्रव्यपर्याय है, मायारूप है। अपने आपको स्त्रीरूप अनुभवमे मत लो, इससे तो मिथ्यात्व बधेगा, संसारमें रुलना पड़ेगा। ऐसे ही पुरुष अपनेको पुरुपरूप अनुभवमें न लें। इससे तो मिथ्यात्व बंधेगा, संसारमे रुलना होगा। यह मैं आत्मा ज्ञानदर्शनस्वरूप एक सत् पदार्थ हू, वह न पुरुप है और न स्त्री है। यह तो प्रभुस्वरूप है। प्रभुमें सच्चिदानन्दमयता व्यक्तरूप हो गयी है। हम सबमें सच्चिदानन्दमयताका स्वभाव पड़ा हुआ है।

सच्चिदानन्दस्वरूपका अनुरोध— सच्चिदानन्दमें सत् चित् आनन्द, ये तीन शब्द हैं। सत्का अर्थ है अस्तिरूप, इस प्रकरणमें अर्थ है शक्तिमान्, समर्थ; चित्का अर्थ है ज्ञान और दर्शन, आनन्दका अर्थ है आनन्द। इस शब्दमें अनन्तचतुष्टयकी ध्वनि पड़ी हुई है। प्रभु अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्द स्वरूप है। और हम भी सब ऐसे ही स्वभाव वाले हैं। ऐसा महत्वशाली यह आत्मा भगवान् हमारी भूल और कषायोंके कारण शरीररूपी बंदीगृहमें जकड़ा हुआ है। इस शरीरसे प्रीति न करो। यह शरीर मेरे विकासका साधक नहीं है, किन्तु बाधक है। यों इस देहको प्रीति करने लायक नहीं बताया। रुचि करो तो इस आत्मतत्त्व की करो। यदि आत्मा भगवान्की रुचि कर सके तो फिर इस देहका नाम देवालय हो जायगा, मंदिर हो जायगा। इस शुद्ध अंतस्तत्त्वका दर्शन करके अपनेको निर्मल बनाएँ और संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय करें।

शरणमशरणं वो बन्धवो बन्धमूलम्।
चिरपरिचितदारा द्वारमापद् गृहाणा॥
विपरिमृशत पुत्राः शत्रवः सर्वमेतत्।
त्यजत भजत धर्मं निर्मलं शर्मकामाः॥६०॥

अशरणता— पूर्व छंदमें शरीरको बंदीगृह बताया था। देह जेलखाना है और उसमें बसा हुआ यह आत्मा कैदी है, उससे प्रीति करना वृथा है। अब इस छंदमें यह बता रहे हैं कि जो बंधुजन हैं उनसे भी प्रीति करना वृथा है। यह घर शरणरहित है। जब इस जीवका मरण समय आता है उस समयका दृश्य देखा होगा, घर भरपूर है, वैभवसम्पन्न भी है, सब लोग चाहने वाले हैं, स्त्री जुदी बिलख रही, पुत्र जुदे बिलख रहे, माता जुदी बिलख रही है, सबकी भावना है सारी सम्पदा भी यदि लग जाय और

कुछ कर्ज लेकर भी यह बच जाय तो सब कुछ करनेको घर भर तैयार है, लेकिन कौन बचा सकता है ? घरके लोग दूसरोंके हाथ जोड़ते हैं, अपनी छाती ठोकते हैं, सिर थामते हैं, बड़ी भावना भाते हैं कि यह रहे, बच जाय, किन्तु सब सोचना निष्फल हो जाता है। यहा कोई भी बचावनहारा नहीं है।

बान्धवोंकी बन्धमूलता— ये बाधव बंधके मूल हैं। घर तो कारागृह है, बधुजन बन्धन हैं। जिससे तेरा अधिक परिचय है ऐसी जो स्त्री है वह आपदारूपी घरका द्वार है! इन परिजनों से मोह न करना, उपेक्षा भाव लेना है, इस कारणसे ये सब अनिष्टताएँ बतायी जा रही हैं।

आपदाका द्वार— जितना भी जीवनमे आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है उसका मूल लग रहा स्त्री सम्पर्क। कहते हैं ना अकेला है, फक्कड़ है, फकीर है, उसे क्या चिन्ता है ? चिन्ताएं बढ़ती हैं तो एक स्त्री सम्पर्क से बढ़ती हैं, और स्त्री होने के ही कारण धन वैभव अधिक बढ़ानेकी भावना जगती है, और धन वैभव बढ़नेके लिए जो भी उपाय बन सकते हैं वे उपाय किए जाते हैं। यों समस्त आपदावोंका द्वार स्त्री है। जिससे कि अत्यन्त अधिक परिचय है, इतना घनिष्ट सम्बन्ध सम्भव है कि भाईसे भी न हो सके जितनी घनिष्टता पत्नीकी पतिसे है और पतिकी पत्नीसे है। परिचयमें स्नेहको कम करना चाहिए, उस प्रसगमे मोह न रहना चाहिए। इस ख्याल से बताया जा रहा है कि जो भी सम्पर्क है इस सम्पर्कसे शान्ति न मिलेगी, आपत्ति ही होगी।

पुत्रादिकोंकी कष्टहेतुता— ये जो पुत्रजन हैं, ये भी स्त्रीकी तरह अपनेको व्यथा के कारण बनते हैं। जैसे मानों किसीके कुपूत पैदा हुआ है तो वह तो साक्षात् दुश्मन ही जैसा है, और यदि पुत्र सपूत हो जाय तो उसकी विनय और आज्ञाकारितासे तृप्त होकर सतुष्ट होकर, खुश होकर यह चाह बनती है कि हमने धन कमाकर रक्खा है तो इसको खूब सुख सुविधा बना दें ताकि ये खूब अधिक आरामसे, शौकसे रह सकें। अब उसे सुखी करने के लिए इसको जीवनभर जुतना पड़ेगा, चिन्ताएँ करनी पड़ेंगी। अरे शान्तिके पथमें कुपुत्र क्या कर देगा और सुपुत्र भी क्या कर देगा ? शान्ति तो ज्ञानसाध्य बात है, मोहसाध्य बात नहीं है। पुत्र इस पिताके आत्मामें ज्ञान थोडे ही भर देगा। ज्ञान तो उस आत्माको अपने ही पुरुषार्थ से करना होगा। जितने भी सम्पर्क हैं ये समस्त सम्पर्क दु खके ही कारण हैं—ऐसा विचार कर हे आनन्दकी इच्छा रखने वाले जनो ! तुम इन सब सम्पर्कोंमें मोहको त्याग दो। यदि सुखकी कामना है तो इस निर्मल धर्मका

सेवन करो।

निरपेक्ष आनन्द— हे आत्मन्! इस असार ससारमे तूने सार किसे समझा है? सार तो है निर्विकल्प स्थिति। ज्ञानस्वरूप अपने आत्मा मे अपना उपयोग स्थिर बने तो वहां सत्य आनन्द मिलता है। जैसे जब कभी कोई अपने महलके बाहर चबूतरे पर बडे विश्रामसे बैठा हो, वह बैठा ही है, कुछ कर नहीं रहा, खा नहीं रहा, भोग नहीं रहा, वह बड़े विश्रामसे बैठा है तो लोग पूछते हैं—कहो भाई आनन्द है ना? तो वह कहता है कि हा खूब आनन्द है। बताओ उस समय वह खा पी नहीं रहा, किसी इन्द्रिय के विषयका सेवन नहीं कर रहा और फिर भी कहता है कि हा, हम बहुत आनन्दमे हैं। विषयोसे दूर रहकर कुछ क्षण जो वह विश्रामसे बैठा है वह एक प्राकृतिक आनन्द है। परवस्तुवोंका जो सम्पर्क पाकर आनन्द मिलता है वह पराधीन आनन्द है, वह दु खसे भरपूर है। उस आनन्दमे इसका भविष्य उज्जवल नहीं रहता, किन्तु जो स्वाभाविक आत्मजन्य आनन्द होता है, उसका भविष्य उत्तम होता है, जो इस आनन्दको अनुभवता है।

परमार्थ और व्यवहारशरण—ये समस्त सम्पर्क आत्महितके लिए विश्वासयोग्य नहीं हैं। लोकव्यवहारमे कुछ थोडीसी सीमा तक विषय-साधनोंके परिचयके प्रसगमें ये समागम विश्वासके योग्य हैं, पर आत्महित में यह कुछ भी समागम साधक नहीं बन सकता है। आत्महितमे साधन तो मुख्यतया अपना आत्मा ही है और व्यवहारदृष्टिसे पच परम गुरु साधक हैं, जिनका हम णमोकार मत्रमे कहा करते हैं—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

णमोकारमंत्रमें आत्मविकासोको नमस्कार—णमोकारमत्रमें किसी व्यक्तिका नाम लेकर वन्दन नहीं किया गया। तीर्थंकरोंमें किसीका नाम नहीं लिया गया। ये ५ आत्माके विकासके पद हैं, और जगतके इच्छुक भक्त पुरुष आत्माके विकासका वन्दन कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें आत्मविकास की यादमें प्रसन्नता रहती है। उन ५ विकासोंमे सर्वप्रथम विकास है, सिद्ध होना। यद्यपि मोक्षमार्गमे अविरत सम्यग्दृष्टिका पद है जो आराधनीय पद है। उन पदोमें सर्वप्रथम पद साधुका है। पूज्यता चरित्रसे आती है। सम्यक्त्व हो जाने पर भी हमारी धर्मपद्धतिमें पूज्यता नहीं आती है। पूज्यता चूँकि चारित्रसे शुरू होती है और चारित्रविकास साधुपदमे होता है। तो प्रथम तो साधु पद होता है। साधु उसे कहते हैं जो केवल आत्मा की साधनामे रहे। जिसे मात्र आत्माकी साधनाकी धुन है, ऐसा पुरुष समस्त बाह्यपदार्थोंकी अत्यन्त उपेक्षा कर देता है और इस साधनाकी धुन

में इतना आगे बढ़ जाता है यह कि इसे घरसे प्रयोजन नहीं रहा, सो घर छूट गया, परिजनसे प्रयोजन नहीं रहा, परिजन छूट गए और यहा तक कि अब उसे वस्त्र तकका भी प्रयोजन नहीं रहा, लो वस्त्र छूट गए। लोकलाज के ढकनेके लिए वस्त्रकी जरूरत है। ठंड गर्मीकी बाधा नहीं सह सकते इस से देहमें कुछ प्रीति तो हुआ करती है, किन्तु जिसे मात्र आत्माकी ही सुध है वह तो आत्मसाधनामें बाधक रंच भी चीज समझे, उसका भी त्याग कर देता है।

साधुता—ये साधुजन ज्ञान, ध्यान और तपस्यामें लीन रहा करते हैं। ज्ञान कहते हैं जाननको। रागद्वेष न करके मात्र ज्ञाता रहे, इसका नाम ज्ञान है। ध्यान कहते हैं किसी तत्त्वका चिन्तन करनेको और तपश्चरण कहते हैं सयम और चारित्रके पालनको। इन तीनोंमें सबसे ऊँची चीज क्या है? ज्ञान। ज्ञानका अर्थ मात्र जानकारी करना नहीं, किन्तु रागद्वेष-रहित होकर केवल जानन जानन ही रहे, इसका नाम है ज्ञान। यह बहुत ऊँचा विकास है। साधुजन मात्र ज्ञाता रहनेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं। जब वे ज्ञानके तपश्चरणमें न रह सकें तो ध्यानका सहारा करते हैं। तत्त्व-चिन्तन करना, मनको किसी ओर एकाग्र करना यह ध्यान है। जब ज्ञान और ध्यान दोनोंमें नहीं रह पाते किसी परिस्थितिसे तो वे तपश्चरणमें उद्यम करते हैं। उपवास करना, भूखसे कम खाना आदिक अनेक तपश्चरण होते हैं। यों ये साधुजन ज्ञान, ध्यान और तपस्यामें लीन रहा करते हैं।

आचार्य और उपध्याय—इन साधुवोंमें जो कोई विशिष्ट साधु हो, जिसमे दूसरे साधुवोंको मार्गमें लगाये रहनेकी भी योग्यता हो, ऐसे साधुको सब साधुजन मिलकर उसे आचार्यपद देते हैं याने सघपति वह हुआ। संघपति आचार्य भी साधु ही कहलाता है और उन साधुवोंमें जो विशेष ज्ञानी साधु हुआ उसे आचार्य उपाध्यायका पद देते हैं। यों आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये तीनों ही गुरु कहलाते हैं।

अरहन्त प्रभु—तीनों साधुवोंमें जो कोई विशिष्ट तपश्चरणकी साधना करके जब चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर देता है तो वह वीतराग निष्कषाय और सर्वज्ञ हो जाता है। इसका नाम अरहत है। जब तक शरीरका तो सम्बन्ध रहे और आत्मा हो जाये परमात्मा तो शरीरसहित परमात्माका नाम है अरहत। शरीर भी है और आत्मा निष्कषाय सवज्ञ परमात्मा है, वह अरहत हुआ। अरहत भगवान्का शरीर हम आप लोगोंके शरीरकी तरह दूषित नहीं होता है, स्फटिक मणिकी तरह उनके शरीरमें दीप्ति रहती है।

अरहन्त प्रभुका सातिशय देह—भैया ! सुना होगा कि भगवान् जब समवशरणमे विराजे हुए होते हैं तो उनके विराजनेका स्थान गधकुटी गोल होती है, और उसके चारों तरफ सभायें लगती हैं। तो ऐसी स्थितिमें जो भगवान्के पीठके पीछे सभामें बैठे होंगे उन्हें आकुलता हो सकती है, लेकिन वहा ऐसा अतिशय है कि भगवान्का मुख चारों ओरसे दिखता है, और इसी लिए लोग ब्रह्माको चतुर्मुख कहते हैं। मोक्षमार्गकी सृष्टिको बनाने वाले या मोक्षमार्गके प्रणेता ब्रह्मा अरहंत प्रभुका मुख चारों ओरसे दिखता है। चतुर्मुख अरहतका भी नाम है, ऐसा दिखनेका कारण क्या है? तो ऐसे प्रसगोंमे अनेक तो देवकृत अतिशय होते हैं और अनेक स्वकी विशेषता के अतिशय होते हैं। कभी तो आपने यह भी देखा होगा कि जो स्फटिक पाषाणकी मूर्ति होती है उसके आगेसे भी दर्शन करो तो मूर्तिका मुख दीखेगा और पीछेसे दर्शन करो तो मूर्तिका मुख दीखेगा। यह बात तो यहां भी परिचय कर सकते हो, स्फटिकमणिमें। यों समझो जैसे कोई साफ स्वच्छ काच हो, केवल काच-काचकी ही मूर्ति बनी हो। काचसे भी स्वच्छ होता है स्फटिक। तो नाक, मुँह, कान आदि जैसे आगेसे दीखेंगे वैसे ही पीछेसे भी दिखते हैं। यदि पीछेकी ओरसे हाथ फेरो तो न मिलेगा मुख, क्योंकि मुख तो एक ओर ही बना हुआ है, पर उस स्वच्छताके कारण दोनों ओरसे दिखता है। इस शरीरमें ऐसा अतिशय हो जाता है।

सिद्ध प्रभु—भगवान् होनेपर यह शरीर परमौदारिक शरीर कान्तिमान तेजस्वी हो जाता है। ऐसे शुद्ध शरीरमें विराजमान अरहत भगवान् केवल ज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकको जानते हैं। समस्त विश्वको जाननहारे अपने आत्माका दर्शन करते हैं और उनमे सामर्थ्य भी अनन्त है। यों अनन्त चतुष्टयसम्पन्न प्रभु अरहंत कहलाते हैं। उन अरहतोंके समय पाकर अपने आप बाकी बचे हुए चार अघातिया कर्म दूर हो जाते हैं और शरीरसे भी विमुक्त हो जाते हैं। अब वे केवल आत्मा ही आत्मा रह गये, उनका नाम है सिद्ध।

अरहंतके प्रकाशनामका कारण—यों पचपदोंमे अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये विकास कहे गये हैं। इनमें सर्वोच्च विकास कौनसा है? सिद्ध। लेकिन एक शका की जा सकती है कि णमो-सिद्धाण पहिले क्यों नही कहा गया? जबकि सिद्धपद सबसे उच्चविकासित है? उसका प्रयोजन यह है कि सिद्ध भगवान् लोकके शिखर पर विराजमान् हैं, उनसे हमारा कभी व्यवहार नहीं चलता, और न उनके चक्षुसे दर्शन होते हैं, उपदेश भी नहीं मिलता। जैसे परमात्मा सर्वज्ञ सिद्ध हैं

तैसे ही ये अरहंत हैं। थोड़ासा इनमें ऊपरी अन्तर यों है कि वे शरीरसे रहित हो गये और चार अघातियाकर्मोंसे रहित हो गये, लेकिन हम सबका उपकार मूलमें अरहत भगवान् द्वारा होता है। इनका उपदेश भी दिव्यध्वनि द्वारा होता है, उनका समवशरण भी रचा जाता है, उनका दर्शन भी मिलता है। जितने भी शास्त्र हैं, परमागम हैं इन सबकी उत्पत्तिका मूल कारण अरहत प्रभु हैं। तो यों उपकार विशेष होनेसे, मोक्षमार्गके प्रणेता होनेसे अरहतका पहिले स्मरण किया है। कोई-कोई लोग तो यों भी कहते हैं कि 'गुरुगोविन्द दोनों खडे, काके लागूँ पाय। बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविंद दियो बताय ॥' प्रभु और गुरु दोनों यदि सामने हो तो पहिले गुरुको वंदन करनेको उन्होंने बताया है। इस लोकमें भी अरहत प्रभु परम गुरुदेव का स्मरण किया गया है।

अरहत प्रभुमें देवत्व और परमगुरुत्व— आप एक प्रश्न और कर सकते हैं कि मूलमें तो हमारा उपकारी कोई पडौसी भी हो सकता है, कोई सधर्मी साधु भी हो सकते हैं तब तो साधुवोंको मत्रमे सबसे पहिले कहना चाहिए था? तो उसमें यह बात है कि पहिले तो इस पच परम पदमें दो विभाग हैं—देव और गुरु। देवमें दो आये—अरहत और सिद्ध और गुरुमें आये हैं आचार्य, उपाध्याय और साधु। देव और गुरुमें चूँकि उत्कृष्ट आराध्य देव हैं तो उन देवोंमें ही यह रुचि करके कि अरहत परम उपकारी हैं, सो अरहतका प्रथम स्मरण किया है। दूसरी बात यह है कि हमारा साक्षात् उपकार मूलत जैसा गुरुसे सम्भव है वैसा अरहतसे भी सम्भव है। न मिले हों कोई गुरुजन और सीधे ही कभी समवशरणमें पहुच जायें, अरहत प्रभुके दर्शन हों तो किसी समय पर कोई कल्याण की बात भी ग्रहण कर सकते हैं। इससे इन पचपरमेष्ठियोंमे सबसे पहिले अरहंत देवको नमस्कार किया है।

पंचपदोंका सक्षिप्त अर्थ— इन ५ पदोंका शब्दार्थ भी समझिये— अरहंतका सस्कृतमें शब्द है अर्हत्, अर्ह पूजायाम् धातु है, जिसका अर्थ है पूज्य। चाहे अरहत कहो चाहे पूज्य, दोनोंका एक ही अर्थ है। एक पूजार्थक अल् धातु भी है, उससे अल्य बना। सम्भव है कि उससे ही अल्ला बना हो। भगवान् को अरहत भी बोला जाता है, अल्य भी बोला जा सकता है और एक पूज्यतामें इतराकर भी बोला जाता है। जैसे प्रभुको तू तू करके पुकारते हैं। अरहतका अर्थ है पूज्य और अरहतमें अरिहत शब्द किया जाय, जिस का अर्थ है अरि अर्थात् रागद्वेष मोह अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, चारघातिया कर्म—इन शत्रुवोंको जो जीते, उसका नाम

है अरिहंत। सिद्धका अर्थ देखें सिध् गतौ धातुसे सिद्ध शब्द बना है। जो उत्कृष्ट क्षेत्रमे पहुच गये हैं उनका नाम सिद्ध है, अथवा सिद्धका अर्थ है जो पूर्ण पक गया है, जिसका पूर्ण विकास हो गया है। आचार्यका अर्थ है जो खुद पच आचारोंका आचरण करे और दूसरोंसे आचरण कराये। उपाध्यायका अर्थ है—उप मायने अपने समीप साधु जनों को जो अध्ययन कराये, उसका नाम है उपाध्याय और साधु नाम उनका है जो आत्माकी साधना करें।

आत्मदर्शन और परमेष्ठीस्मरणकी सारभूतता— यों व्यवहारमें हम को पचपरमेष्ठी शरण हैं। निश्चयसे हमारा आत्मा ही शरण है। इसके सिवाय अन्य जिन-जिन वस्तुवोंमें तू राग करता है वे सब दु:खके कारण हैं। घरमे कोई रक्षक नहीं। बान्धवजन बन्धनके ही कारण हैं। स्त्री विपत्तियोंकी द्वार है, पुत्र तेरे हितका वैरी है। पुत्रके बैरकी बात एक कविने यों कही है कि जब यह गर्भमें आता है तब इस स्त्रीकी अर्थात् वह अपने माताकी जवानीको बिगाड़ देता है, उसका रूप घट जाता है, कांति घट जाती है और जब बालक उत्पन्न होता है तो उसके माताके भी मरणका सदेह रहता है। बड़ा हो गया बालक थोड़ासा तो वह मिष्ट भोजन को हर लेता है। बढ़िया खाना उसे दो, यह दृष्टि रहती है। फिर स्वयं उसके मुकाबले में मा बाप बढ़िया नहीं खाते। जब समर्थ हो जाय तो धन हर लेता है, और कभी-कभी तो बड़ी विपत्ति ढा सकता है। सुपुत्र होकर भी दु ख उत्पन्न करता है। यों समस्त सम्पर्क उसका सारभूत नहीं हैं। एक आत्मदर्शन और परमेष्ठीस्मरण यही सारभूत चीज है। इस कारण मोह रागद्वेषको त्यागकर एक इस आत्मध्यानकी ही सेवा करो।

> तत्कृत्य किमिहेन्धनैरिव धनैराशग्निसंधुक्षणैः।
> सम्बन्धेन किमङ्गशश्वदशुभैः सम्बन्धिभिर्बन्धुभि·।
> किं मोहादिमहाविलेन सदृशा देहेन गेहेन वा।
> देहिन् याहि सुखाय ते सममुं मा गा प्रमाद मुधा ॥६१॥

पराश्रित ध्यानकी क्लेशरूपता— इस ससारमें किसी भी परवस्तुविषयक ध्यान उपयोग रहे तो उसमें शान्ति नहीं मिलती है। शान्त-आत्मा का एक स्वाभाविक गुण है और यह आत्मा स्वय अपने आप स्वभावसे शान्त है, पर अपनेको शान्त स्वभावी न मानकर शान्ति लेनेके लिए जो अन्य पदार्थों पर उपयोग दौड़ाया जाता है बस यही इसके क्लेशका कारण है। तीन लोकका भी वैभव एकत्रित होकर निकट आ जाय तब भी उस परपदार्थसे आत्माको शान्ति नहीं आ सकती है। आत्माका स्वभाव ज्ञान और

आनन्दमय है, इसकी जो पुरुष श्रद्धा नहीं करता, वह परकी आशा रखकर केवल व्याकुल ही रहा करता है।

आशा और आशाके अभावके परिणामोंका अन्तर— हे शान्तिके इच्छुक पुरुष! तू प्रमाद मत कर और शान्तिका साधक जो समतापरिणाम है उस समतापरिणामको अपने आपमें घटित कर। भैया! इस धनसे तेरे को कुछ शान्ति न मिलेगी। यह धन तो आशारूपी अग्निको प्रज्ज्वलित करनेके लिए ईंधनके समान है। जैसे ईंधन पा पाकर अग्नि कभी शान्त नहीं हो सकती है, इसी प्रकार धन वैभव पा पाकर यह आशा-अग्नि कब शान्त हो सकती है? बल्कि यह आशाका गड्ढा इतना विचित्र है कि ज्यों ज्यों वैभव समाता जाय त्यों त्यों यह गड्ढा बढ़ता जाता है। इस जीवको दुःखी करने वाला कोई नहीं है। यह जीव ही अपने ज्ञानको जब सभाल नहीं पाता है, अपने आपके स्वरूप,में मग्न होनेका यत्न नहीं करता है तब इस जीवको क्लेश होता है। हम आपका जो यथार्थस्वरूप है वह स्वरूप भगवंतमें दीखेगा। भगवान् केवलज्ञानी कहलाते हैं। केवलज्ञानीका शुद्ध अर्थ तो यह है कि वह केवल ज्ञान ज्ञान ही कर रहे हैं, रागद्वेष संकल्प विकल्प को नहीं कर रहे हैं। इसका फल यह होता कि जो केवल ज्ञान ही ज्ञान करे, रागद्वेष मोह परिणामको साथमें न लें, उसका यह ज्ञान इतना विशाल बन जाता है कि तीन लोक की सम्पदा भी ज्ञात हो जाती है।

आशावह्नि— यह धन आशारूपी अग्निको प्रज्ज्वलित करनेमें ईंधन की तरह है। इस बातको अधिक क्या समझाना है? सबके चित्तमें कोई न कोई तृष्णा सम्बन्धी विकल्प होता है। अग्निकी तरह अब भी तृष्णा का परिणाम बढ़नेकी ओर चल रहा है। जब अत्यन्त साधारण स्थिति थी तब तो थोड़ा ही सोच और चिन्तन चलता था। थोड़े धनका नाम लेकर कह दिया कि इतना धन हो जाय तो सब कष्ट एकदम समाप्त हो जायेंगे। और जब उतना हो गया तो भी कष्ट समाप्त नहीं होता है, उससे आगेके धनको पानेकी आशा लग जाती है। अरे भाई, इस धनसे आत्माको शान्ति नहीं मिला करती है और देख कम धन होने वाले पुरुष यत्र तत्र सुखी नजर आते हैं, उनको तृप्ति है। जिसका मन तृप्त है वही वास्तवमें सुखी है। धनके होने में सुखका निर्णय नहीं है। इस कारण एक ही अपने आपमें निर्णय बनावो कि धनकी तृष्णा करना तो बिल्कुल व्यर्थ है ही। हमे तो इस शरीरसे भी न्यारा बननेका प्रोग्राम है।

अवश्यकरणीयता— भैया! ऐसा कौनसा कार्य है जो आपको आवश्यमेव कर लेना चाहिए? वह कार्य है केवल रह जाना। मैं आत्मा

अपने आप जितने स्वरूपमे हूं, उतना ही रह जाऊं, बस यही सर्वोपरि व्यवसाय है। शरीरसे भी न्यारा केवल निजस्वरूपमात्र रह जाऊ, यह ही भावना-ज्ञानी पुरुषके होती हैं, जबकि अज्ञानीजनोंके यह भावना रहती है कि मेरे धन बढ़ जाए, परिजन बढ़ जायें, ज्ञानी पुरुष तो यह सोचता है कि मेरे शरीरका भी सम्बन्ध न रहे, मैं जो हू वही रह जाऊ। तो जहा ऐसी भावना करनी चाहिए, वहा धन आदिकके विकल्प और तृष्णा भाव बढाना, यह तो बिल्कुल अयोग्य है। धर्मका पालन इसी भावनामें बसा हुआ है। अपने ही आपको सबसे न्यारा केवल स्वरूपमात्र रहने देनेकी भावना ही सर्वोत्कृष्ट भावना है।

अनर्थकारी अनुराग— हे मित्र! और भी देख निरन्तर पापके प्रवर्तनहारे ये सम्बंधीजन, मित्रजन और बधुजन इनका ममत्व करके तू क्या फायदा पा लेगा? दूसरे जीवोंको प्रसन्न रखने के लिए, उनका लालन पालन पोषण करके के लिए यहाके ये व्यामोहीजन कष्ट करते हैं। धनका तो विशेष संचय करके रख जाना चाहते हैं, पर यह तो बताओ कि जिनके प्रति तेरा इतना अनुराग हो रहा है, वे तेरे आत्माका कौनसा हित कर देंगे? पर जब मोह समा जाता है तो यह कई रूपोंमें फूटता है। कुछ लोग तो घरके सब लोगोंको प्रसन्न रखनेकी तृष्णा बनाते हैं, कुछ लोग धनवृद्धिकी होड़को मचाया करते हैं। कुछ लोग चाहें धनकी हानि भी हो जाए, जनहानि भी हो जाए, पर मेरा यश रहे, इसके लिए दृढ़ सकल्प बनाये हुये हैं, पर हे आत्मन् तेरे लिये तो ये सभी असार हैं। धन बढ़ गया है तो तेरे आत्मामें आनन्द तो न आ जायेगा। वह तो विकल्पका ही कारण बनेगा। परिजन प्रसन्न हो गये तो तुझे वे स्वर्ग अथवा मोक्ष तो न दे देंगे। यह सब तो तेरे परिणामों के हाथकी बात है।

यशोमाया भैया! यश बढ़ गया, दुनियाके लोगोंने कुछ थोड़ासा भला कह दिया तो क्या इससे तेरेको शान्ति मिल जाएगी? ये तो तेरी अशान्तिके ही कारण बन रहे हैं। जैसे निन्दा एक क्लेशका कारण है—ऐसे ही प्रशसा भी क्लेशका कारण है। निन्दा सुनकर जैसे लोग क्षोभमें आ जाते हैं, इसी प्रकार प्रशंसा सुनकर भी लोग क्षोभमें आ जाया करते हैं। कर्तव्य और अकर्तव्यका प्रशसा श्रवणमें भी विवेक नहीं रहता है। यदि सब लोग भी मिलकर तेरा यश गा दें, फिर भी हे आत्मन्! तेरा किसी भी परजीवके कुछ परिणमनसे हित न होगा। तू प्रमादी मत बन, अर्थात् परिजन और वैभवमें अपना मन बसा कर तू मोक्षमार्गसे वचित मत हो। अपने आपको सभाल। इन परिजनोंके ममत्वसे तेरी कुछ सिद्धि न होगी।

मोहकी परिहार्यता— पुराण और इतिहासमें भी पढा है कि राजाओं और बादशाओंने अपने अपने समयमें कैसी धूमकी, सुख सुविधाकी व्यवस्था बनायी थी और अपने समयमें एक बडे ऐश्वर्यका पसारा किया था, लेकिन उनका भी कोई दूसरा जीव परिजन सहारा हो सका है क्या ? यह जीव तो केवल असहाय है, इसका तो यह खुद ही सहाय है। अतरगमें भली बातको सोचो तो प्रसन्नताका दर्शन होगा और खोटा विचार बनाया तो फिर क्लेश ही मिलेंगे। दुख भोग लेना और सुख पा लेना आदि दोनों बाते अपने वश की हैं। इस मोहको ढीला करो, मोह रंच भी न रहने पाये। यद्यपि गृहस्थी है, अनुराग है, राग बना है, काम बिना गुजारा नहीं तो काम होने दो, पर अंतरगमें यह श्रद्धा तो न बनाओ कि मेरा गुजारा, मेरा हित इन परिजनोंके के प्रसन्न रखनेमें है। ममत्वसे तुझे कुछ भी सिद्धि और साधना प्राप्त नहीं हो सकती है।

देहप्रीतिकी परिहार्यता— देख यह देहमोह करने लायक नहीं है। इन मायामय देहोंको तू क्यों अपने चित्तमें बसा रहा है ? विकारकी स्थिति में विकार ही उत्पन्न होते रहते हैं। शाति नहीं आ सकती है। इस देहसे तू प्रीति तज दे। यह देह सदा रहनेको भी नहीं है। घरमे बसे हुए जीवोंको और धन सम्पदाको अपनी सुख सुविधा का साधन माना है, पर इनका तो आदर न करके एक अपने आत्माका ही आदर करो, किन्हीं बाह्यपदार्थोंमें हितकी आशा न करो, मोक्षमार्गमें प्रमाद मत करो।

प्रयोजनीभूत सप्ततत्त्व— देखो कि जैन शासनमें सात तत्त्व कहे गए हैं— जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष। इन ७ तत्त्वों मे दो सत् पदार्थ जीव और अजीव हैं और शेप पाच जीव और अजीवके संबधके परिणमन हैं। जब जीव रागादिक भाव करता है, तब वहा कर्म आते हैं। यह जीव रागादिक भाव करता है पूर्वबद्ध कर्मोंके उदय अथवा उदीर्णाका निमित्त पाकर। जब यहां रागभाव हुआ तो कर्मोंका आश्रव होता है। जीवमें कर्मोंके आनेका नाम आश्रव है। जीवके आश्रव होता है तो चूकि विषयकषायोंके परिणाम इसमे बसे हुए हैं। इस कारण कर्मोंका बध हो ही जाता है। यों ये आश्रव और बध—दो परिणमन इस जीवमें ससारके कारणभूत हैं। जब जीव अपने आपको संभालता है, मोहमें नहीं लगने देता है, सबसे न्यारा ज्ञानस्वरूपमात्र अपनेको निरखता है, तब इसके कर्मोंका आश्रव रुक जाता है, सम्वर तत्त्व हो जाता है। इस प्रकारका निष्कषाय नि रंग व निस्तरग आत्माका परिणाम होता है, तब अनेकों भवोंके बधे हुए कर्म भी झड़ने लगते हैं और जब सब झड़ जाते हैं, तब इस जीवको कर्मोंसे मोक्ष

मिल जाता है अर्थात् कर्मोंसे छुटकारा हो जाता है। पर इन सब स्थितियोंमें और मूलमें करनेकी बात यह है कि अपने शाश्वत शुद्धस्वरूपको निरखो और उसी स्थितिमें अपनी रुचि करके वहीं रमण करो। इस प्रकार अपने आपके आत्मतत्त्वमें रमण करनेका फल सदाके लिए ही निराकुलताका रूप हो जाना है।

मोहकी असारता— मोहमें कोई सार नहीं रक्खा है। मोहका फल केवल क्लेश ही क्लेश है। बचपनसे लेकर बड़ी अवस्था तक तो मोहके फलमें क्लेश ही भोगा है। इससे शांति नहीं मिलती। अब तू प्रमाद मत कर अर्थात् अपने आत्माको शुद्ध निरखनेमें आलस्य मतकर। सबसे निराला केवल ज्ञान प्रकाशमात्र अपनेको देख। एक ही कुलमें उत्पन्न हुए पुरुष अपने अपनेही परिणामोंके कारण जुदी जुदी गति पाते हैं। रावणके कुलमें रावणके ही अनेक भाई और पुत्र मोक्ष पधारे हैं और रावण स्वयं नरकमें मौजूद है तथा रावण उन सबमें प्रमुख था। तो यहां जो भी परिणाम किया जाता है, वह निष्फल न जायेगा, फल अवश्य देगा, चाहे जब दे। यह सदा ध्यानमें रखना चाहिये।

जो रौद्रध्यान करके मौज माना जा रहा है, उसका भी निकटकालमें ही फल मिलेगा। कोई यह मत समझो कि किये का फल न मिलेगा। आज न मिलेगा तो और किसी समय सही, पर फल अवश्य भोगना पड़ता है। हां यह बात अवश्य है कि कोई कोई विशिष्टज्ञान वैराग्यी बने तो कर्म झड़ जाता है। जब कोई दूसरा जीव अपना साथी नहीं है, सब जुदे जुदे हैं, तब फिर किसलिए अपने आपको अन्यायमें फसाकर अपनेको कष्टमयी बनाया जा रहा है? अपने आप पर कुछ करुणा करो और कष्टमें लगनेका रास्ता मत चलो।

जीवके बंधनका मूल कारण विपरीत आशय— जीवको भी संसारमें फंसानेके तीन कारण—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र हैं। जैसे प्यासा हिरण जिसे नदीकी रेतीली भूमिमें यह विश्वास हो जाए कि यह तो पानी है। वह इस विश्वासके कारण ऐसा भागदौड़का परिश्रम करेगा कि उसे प्यासा मरना पड़ेगा। ऐसे ही परजीवोंमें, धनपरिग्रहमें यह हितरूप है, इससे हमारा बड़प्पन है। इस प्रकारकी आशा रक्खोगे तो इसके फलमें तो क्लेश ही क्लेश भोगना होगा। तू मिथ्याश्रद्धानको मत कर। सबसे न्यारे ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आपकी श्रद्धा करो, अन्यथा तुम्हारा कोई मददगार भी न होगा।

प्रभुपूजनमें आत्मशिक्षण— हम भगवान्‌की पूजा और वंदना करने

रोज जाते हैं वहां यही सबक तो सीखते हैं कि यह प्रभु तब सुखी हुए हैं जब सबसे न्यारे केवल अकेले रह गये हैं। जब तक ये भी घरमें थे, रागद्वेष में थे तब तक इन्हें सत्पथ नहीं मिला था। ससारी जनोंकी भाति ये भी कष्टमें थे। प्रभुका कष्ट कैसे मिटा कि उनके अनन्तज्ञान प्रकट हुआ, इसका मूल उपाय उन्होंने यह किया कि सर्व विभाव कर्मों व सर्व परपदार्थोंसे भिन्न केवल शुद्ध ज्योतिमात्र अपनेको देखा। जिस उपाय से चलकर ये प्रभु हुए हैं वही उपाय हम आपको भी करना चाहिए। यह शिक्षण मदिरमें प्रभुके दर्शन करके हमें ग्रहण करना चाहिए।

कर्तव्यविवेक— हिम्मतकी बात है। शुद्ध ज्ञान बनाए रहें और अपने कर्तव्यकी सुध रक्खें—यह बडे साहसकी बात है। एक अकृतपुण्यकी कथा प्रचलित है। अकृतपुण्यके पैदा होते ही घरमें कलह होने लगी। वह राजपुत्र था, किन्तु बडे-बडे अनथ होने लगे। प्रजाने मिलकर कहा— महाराज! यह बालक जब तक अपने नगरमें रहेगा तब तक नगरीमें चैन नहीं रह सकता। यह पापी व्यसनी पूर्वजन्मका है। इसे तो जनताके हितके लिए अलग कर दीजिए। यदि आप इसे घरमें रखते हैं तो जो कुछ अनर्थ हो रहे हैं, वे होते रहेंगे। राजाने अकृतपुण्यको अलग किया। देशके बाहर पहुचा दिया, मनमाना गाड़ियोंमे भरकर सामान भिजवा दिया ताकि उसे तकलीफ न हो, पर हुआ क्या कि सारा वैभव अंगारेके रूपमें परिणम गया और सारा अनाज छोटे-छोटे छिद्रोंसे निकल कर खत्म हो गया। जिसका भाग्य नहीं है उसके लिए आप क्या कर सकेंगे? जिसके भाग्यमे है उसके लिए भी आप क्या कर रहे हैं? सभी जीव अपने-अपने उदयके अनुसार अपना पोषण और जीवन चलाते हैं। तू उनके प्रति ममत्वभाव चिन्ताभाव को मत बढ़ा। अपना होनहार देख। अपना ही देख सकता है तू, दूसरे जीवका कुछ करनेमें तू समर्थ नहीं है।

स्वका स्वमें कर्तृत्व— रावण और विभीषणका बहुत बड़ा अगाध प्रेम था। जब किसी साधुसे विदित हुआ कि मेरे भाई रावणकी मृत्यु राजा दशरथके पुत्र और राजा जनककी पुत्रीके निमित्तसे हो जायेगी, तो उसने अपने भाई के प्रेममे आकर यह निर्णय किया मनमें कि राजा दशरथ और जनकका सिर ही न रहने देंगे, फिर कहा से पुत्र होगा और कहासे पुत्री होगी? मेरे भाईकी जान बच जायगी। यह समाचार दोनों जगह विदित हो गया। तो इनके मत्रियोंने लाखका पुतला ठीक उसी शकलका किसी प्रकार बना दिया और ये दोनों गुप्त हो गये। कई महीने तक उद्योग करके विभीषण ने अपना कर्तव्य समझकर उन दोनोंका सिर काट लिया और समुद्रमें फेंक

दिया। रावणको हर्षमयी समाचार बताया। अब दशरथ और जनक, ये दोनों मरे तो थे नहीं। होनहार बचनेका था, सो बच गए। अन्तमें हुआ भी वही जानकीके हरणके प्रसंगको लेकर रावण और राममें महायुद्ध ठन गया। रावणकी वहां मृत्यु हुई। तो जो विभीषण रावणको इतना प्यारा था वह जानकीके हरण किए जाने से रावणका साथ छोड़ देता है। रावण भक्त और विद्वान् था। जब उसने परस्त्रीके हरणका अपराध किया तो साथ छोड़ दिया। मतलब यह है कि जिनका विश्वास करते हो कि ये मेरे जीवन भर तक साथ निभायेंगे, उनसे ऐसी आशा न रक्खो। उदय जब तक भला है, हमारा आचार विचार जब तक भला है तब तक दो चार पुरुष बात भी पूछ लेते हैं। इस जगत्की यों असारता जानकर अपने आत्माके अकल्याण की प्रवृत्ति मत करो। अपने आपकी निर्मलता बनाओ।

आदावेव महाबलैरविचलं पट्टेन बद्धा स्वयम्,
रक्षाध्यक्षभुजासिपञ्जरवृता सामन्तसंरक्षिता।
लक्ष्मीर्दीपशिखोपमा क्षितिमतां हा पश्यतां नश्यति,
प्रायः पातितचामरानिलहतेवान्यत्र काऽऽशा नृणाम् ॥६२॥

लोकलक्ष्मीकी अस्थिरता—लोक समागमकी इसमें अनित्यता बतायी जा रही है। बड़े बड़े राजा महाराजा जिनके कोटि सुभटों बराबर बल था उन्होंने अपनी राज्यलक्ष्मीको स्थिर रखनेके लिए पट्ट बांध लिया, लेकिन यह राज्यलक्ष्मी उन बड़ों-बड़ोंके भी स्थिर नहीं रह सकी। इस राज्यलक्ष्मी को सदा रखनेके लिए बड़े-बड़े श्रीमंत सुभट जिनमें महान बल था, उनके द्वारा रक्षा करायी गयी, फिर भी यह राज्यलक्ष्मी इतनी चंचल है कि लोगों के देखते देखते ही विलयको प्राप्त हो गयी। कहो राज्याभिषेकके चमर ढोले जा रहे हों और चमर ढुलते-ढुलते के बीचमें ही राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाय—ऐसी भी घटना हो जाती है श्रीराम बलभद्रका यही हाल हुआ। राज्याभिषेक हो रहा था, चमर ढोले जा रहे थे, सिंहासन पर बैठे हुए सारी क्रियाएँ की जा रही थीं, इतनेमें यह आदेश हुआ कि राज्याभिषेक भरतका होगा। बस श्री रामकी राज्यलक्ष्मी तो नष्ट ही हो गयी, अब उन्होंने विवेक से विचार कर वनवास स्वीकार किया। यह राज्यलक्ष्मी देखते-देखते विलीन हो जाती है। तब और धन सम्पदाका तो विश्वास ही क्या है? आज शामको है, कल सुबह न रहे।

लोकसमागमकी अनित्यता— इस धन सम्पदाके पीछे या वैसे ही इन प्राणोंका भी विश्वास नहीं है। आज शामको प्राण हैं, कल सुबह न रहें, ऐसा अनित्य यह समस्त संसार है। ऐसी अनित्यता आंखोंसे भी देखते जा

रहे हैं, फिर भी वैभव और परिजनसे ममत्व भाव नहीं हटता है। दीपशिखा की तरह यह राज्य लक्ष्मी, धन सम्पदा आदिक चंचल हैं। जैसे दीपकी लौ का क्या विश्वास है ? किसी क्षण बुझ जाय। जरासा ही पवन चला कि बुझ जाती है, ऐसे ही इस राज्यलक्ष्मी धन वैभव जीवनका भी कोई विश्वास नहीं है, आज है कल न रहे। इस कारण जो विवेकी पुरुष हुए हैं उनमे से कई तो इस राज्यलक्ष्मीको अंगीकार किए बिना ही सकल सन्यास कर चुके, और अनेकोंने इस राज्यलक्ष्मीको अपनी इच्छासे त्याग करके आत्मसाधना की।

निर्मोहताका मार्ग— राजपुत्र सुकौशलके पिता कीर्तिधर के विरक्त होनेके बाद बहुत समय तक वे घरमें भली प्रकार रहे। राज्य भी उन्हें मिला किन्तु कुछ ही समय बाद उन्हें विरक्ति आयी। वे सकल सन्यासी हुये, लोगों ने समझाया कि तुम अभी नवयुवक हो, अभी विवाह हुआ। रानीके गर्भ है, बच्चा हो जाने दो, उसका राज्याभिषेक करिये, नाममात्रको ही उस का राज्यविधान बनाकर फिर विरक्त हो जाना। तो सुकौशलके चित्तमे इतना भी न आया और यह कह दिया कि जो भी बालक गर्भमें है उस बालकको अभीसे राज्य तिलक कर दिया। कैसे कैसे विवेकी पुरुष हुए हैं। मोह भाव जब नहीं रहता है तब ये सब बातें सहज सुगम हो जाती हैं।

पदार्थोंका परस्पर पार्थक्य— भैया ! मोहसे कुछ पूरा भी नहीं पड़ता। चित्त आकुल व्याकुल ही रहता है। कहा मोह करते हो ? जगत्के सभी जीव एक समान स्वरूप वाले हैं। जो तुम हो, सो सारे जगत्के प्राणी हैं, और स्वरूपदृष्टिसे तुम्हारे स्वरूपसे सभी जीव प्रथक् हैं। चाहे वे एक झोंपड़ीमें उत्पन्न हुए हों और चाहे आजके माने हुए गैर हों, सभी जीव तुम्हारे स्वरूपसे अत्यन्त जुदे हैं। मोहकी कैसी प्रेरणा है कि कुछ थोड़ा सा विशेष लोकसम्बन्ध पाकर परिचय हुआ तो वह परिचय और दृढ़ हो जाता है, और फिर उससे मोह बढ़ता है। उसमें यही निरखा जाता है कि मेरे तो यही सब कुछ वैभव सम्पदा परिजन हैं। मैं शुद्ध ज्ञानानद स्वरूप हू, इस ओर दृष्टि नहीं जाती है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् और परिपूर्ण है। किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है–इस ओर दृष्टि ही नहीं जाती।

आत्मदेवपर अन्याय— अहो कितना अनर्थ किया जा रहा है मोह में अपने आप पर ? यह मैं हू प्रभुके स्वरूपके समान ज्ञानानन्दस्वरूप वाला और जिस प्रकार प्रभु ज्ञानसे समस्त लोकालोकको जानते हैं और आनन्द शुद्ध विकाससे शाश्वत आनन्दमग्न रहते हैं–ऐसे ही सबको जाननेका और

परिपूर्ण आनन्द पानेका हमारा स्वरूप है, लेकिन इस ओर दृष्टि कहां है? इसका तो यह बाहर स्थित मलिन मनुष्योंका समूह ही देवता बन रहा है। लोग कहते हैं कि भगवान्को प्रसन्न करना यही धर्म है, बजाय इसके यह मोही मानवसमाजको प्रसन्न करनेमे जुटा हुआ है। इसकी दृष्टिमें मैं महान् कहलाऊं, इस प्रकार अपनी महत्ता स्थापित करनेके लिए यह धन जोड़ा जा रहा है। अरे यह जीवन धन सचयके लिए नहीं, किन्तु धर्मपालनके लिए है। जो चीज अनादिकालसे अभी तक नहीं प्राप्त हुई ऐसे अपूर्व तत्त्वको पानेके लिए अपना जीवन लगावो। इसके अतिरिक्त अन्य कार्योंके लिए अपनी जिन्दगी समझें।

राज्यलक्ष्मीकी अरक्ष्यता—राज्यतिलक होते समय युवराजके बुजुर्ग, उनके सेवक सिरमें एक पट्टी बांधते हैं, वह पट्टी मानों इसलिए बाधी जा रही है कि यह राज्यलक्ष्मी दृढ़तासे हमारे पास रहे, पर क्या वह रह पाती है? यह तो दीपककी लौके समान चचल है, सब कुछ चंचल है। इस शरीर का भी विश्वास नहीं। जवानीका भी क्या विश्वास? आखिर बूढ़ा होना ही पड़ता है। जो वृद्ध पुरुष हैं वे आजके जवानोंसे भी बड़े हृष्टपुष्ट थे। आज उनकी यह दशा है। इससे भी अधिक दयनीय दशा इन युवकोंकी होगी वृद्धावस्थामे। यह अवसर्पिणीकाल है। इसमे बुढ़ापेका जल्दी आना, मृत्युका जल्दी आना, ये सब बातें चला करती हैं। ऐसे अनित्य लोकमें बस कर एक नित्य निज प्रभुको प्रसन्न कर सकनेका काम न कर पाया तो यह जीवन व्यर्थ है।

नित्यकी दृष्टिमें अनित्यभावनाकी सफलता—लोकमें बुद्धिमान् पुरुष वह होता है जो साधारण खर्च करके कोई विशेष लाभ उठा ले। हम आप का विवेक इसमें है कि इस अनित्य समागमको पाकर इसका ऐसा उपयोग करें कि कोई ध्रुव लाभ उठा लें। अनित्य भावनामें यह बताया जाता है और पढ़ाया जाता है— 'राजा, राणा, क्षत्रपति, हाथिनके असवार। मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार।' एक दिन सब कुछ विघट जायेगा। यहा सब कुछ अनित्य है, पर यह तो बताओ कि कुछ नित्य भी है या नहीं? अपने आपसे सम्बन्धित जितनी भी संगति हैं वह सब अनित्य है। यह शरीर भी अनित्य है, और जो कर्म बंधे हैं पुण्य अथवा पापके, वे भी अनित्य हैं। अन्तरङ्गमें जो कुछ विचार उठते हैं वे भी अनित्य हैं, पर नित्य भी कुछ है या नहीं? इस पर दृष्टिपात करो। है नित्य। अरे अपने आपमे जो नित्य है उसकी जिसने परख की और उस नित्यकी भक्तिमे ही जिसने अपना सर्वस्व जीवन लगाया, वे ही

साधु पुरुष परमात्मा हुए हैं, अरहंत हुए हैं। वह नित्य चीज क्या है? एक चैतन्यस्वभाव। चैतन्यस्वभाव मात्र मैं हू, इस चैतन्यस्वभावपर जो कुछ औपाधिक घटना झलक रही है वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो चैतन्यमात्र हू—इसकी भावनासे अनित्यभावनाकी सफलता है।

नित्यकी दृष्टि बिना विकाररमण—नित्य ध्रुव सदा रहने वाले चैतन्यप्रभुकी ओर जो दृष्टि देता है और इस ही चैतन्यका पूर्ण विकास जिनके हुआ है ऐसे परमात्मा पर दृष्टि देता है उसे ज्ञान बढ़ता है, वैराग्य की पुष्टि होती है। जो सुख, ज्ञान और वैराग्यमें है वह सुख तीन लोककी भी सम्पदा एकत्रित हो जाये उसमें भी नहीं है। किन्तु क्या करे? जैसे जिसने जीवन भर तैल खाया हो, तिलका तैल ही जिसे मीठा लग रहा हो, कभी घी देखा ही न हो तो उसको घी बुरा मालूम होता है। उसकी दृष्टिमें तो तैल ही मिष्ट है। इसी प्रकार जिसने आत्मीय परम आनन्दका अनुभव न किया हो, उसके लिए ये पञ्चेन्द्रियोंके विषयसाधन ही रुचिकर मालूम होते हैं। इन विषयोंमें यह जीव अनादिकालसे भटकता चला आया और जन्म मरण कर रहा है, फिर भी इसको तृप्ति नहीं होती है। अनेक भवोंमें बड़े-बड़े वैभव पाये। फिर भी इसे संतोष नहीं हुआ। अब आज कुछ थोड़ीसी सम्पदा पर क्या इसे संतोष होगा?

एकत्वभावनाका प्रकाश—भैया! हमारी प्रभुपूजा तब सफल है जब हम अपने आपको अकेला निरखनेमें निरत हों। यदि अपने आपका अकेलापन अन्तरमें न अनुभवा जा सके तो हम धर्मपालनके पात्र नहीं हैं, सब दिखावा है। अपने परिजन, इष्टजन सुखी रहें इतनी अभिलाषाकी पूर्ति के लिए एक श्रम किया जा रहा है। जितना अपने आपको अकेला देखते जायेंगे उतना ही समझो कि हम धर्मपालन कर रहे हैं। प्रथम तो ऐसा अकेला देखो कि मैं शरीररूपी नही हू, शरीर जुदा है, मैं जुदा हू। यह आत्मा इस शरीरको छोड़कर कहीं चला जायेगा। जड़में जड़का काम होता है, मुझ आत्मामें मेरा काम होता है। शरीरका काम इतना ही है कि वह कोई न कोई रूप, रस, गंध और स्पर्श बदले और किसी प्रकारकी हलन चलनकी क्रियाएँ करता रहे। ये एकताएँ इस शरीरकी हैं, किन्तु मुझ आत्मा में रूप, रस, गंध, स्पर्श तो है ही नहीं। यह अमूर्तिक एक चैतन्य पदार्थ है। इसमें कला यह पड़ी है कि कुछ न कुछ यह जानता रहे और आनन्द गुणका भी कुछ न कुछ परिणमन चलता रहे। यह ज्ञानानन्दरूप परिणमन करनेकी हम आपके आत्मामें कला है। ऐसा अपने आपको अकेला देखो।

आत्मभावना—मनमें ऐसी श्रद्धा न बनाये रहो कि मैं तो इतने

परिवारसे भरपूर हू, इतने संतानों वाला हू, ऐसी इज्जत प्रतिष्ठा पोजीशन वाला हू, इतने वैभव वाला हू—ऐसा विश्यास न बनाओ, क्योंकि यह आत्मा ऐसा वास्तवमें है नहीं। अपने आपको इन सब वैभवसे न्यारा केवल ज्ञानानन्द स्वरूप देखो। यह चीज बनेगी कैसे? बरबर ऐसी ही भावना करो तब यह चीज बनेगी। जिसकी भावना जड़ सम्पदामें ही बराबर चल रही है, उसको इस शुद्ध आत्माकी भावना कहासे होगी? बार-बार यह भावना बनाओ कि मैं शरीरसे न्यारा केवल चैतन्यस्वरूप हू। मैं सबसे जुदा मात्र ज्ञानानन्दस्वरूप हू—ऐसी बार बार अपने आपमें भावना जगाइए। जिसकी ऐसी धुन बनेगी, जिसकी भावना बनेगी उसके दर्शन नियमसे होंगे। यह सब भेदविज्ञानके बलसे काम बनेगा। सबसे न्यारा अपने आपको समझते रहनेसे यह काम बनेगा।

धर्मसम्पर्कका ऐश्वर्य—भैया! इस सम्पदाको कोई जीव कमाता नही है। यह तो पूर्वकृत जो पुण्य है उसका फल है। किसीके अधिक है, किसीके कम है किसीके है ही नहीं, कोई तरसता है, ये सब पूर्वकृत पुण्य पापके फल है। तो जिसे पुण्यके प्रभावसे यह सम्पदा मिली है, उस पुण्यको स्थिर बनाये रहना सो तो ज्ञानका एक मध्यम कदम है। पापकर्मोंमे, व्यसनों मे पड़कर इस पुण्यको बरबाद करके खोटे परिणाम करके, रात दिन शारीरिक परिश्रम करके धन सम्पदाकी वृद्धि करना यह उपाय तो सही उपाय नहीं है। मैं आत्मा एक ज्ञानानन्द स्वरूप हू, सबसे प्रथम ऐसा ज्ञानानुभव करके जो अनुभव बनता है उस अनुभवमें यह सामर्थ्य है कि भव-भवके सचित पापकर्म भी दूर हो जाते हैं, और चू कि जब तक यह सरागी जीव रहता है तब तक ऐसा विशिष्ट पुण्य बधता है इस ज्ञानीके कि चक्रवर्ती जैसी सम्पदा उस ज्ञानी पुरुषको मिलती है।

ज्ञानोपासना—हम आपका यह कर्तव्य है कि प्रभु-भजन और आत्माकी उपासना इसके लिए कुछ अधिक समय दें, यदि इस वैभवका सदुपयोग हम आपके ज्ञान प्रचारमें लगता है तो ऐसा सदुपयोग करनेमें हम प्रसन्न रहा करें। जिस किसी भी प्रकार हो हम आप अपने स्वरूपके निकट बस सकें—ऐसा यत्न करें। जब तक निर्वाणका साक्षात् मार्ग नहीं मिलता तब तक भेदविज्ञानकी भावना बनाए रहें। जैसे घर गृहस्थीमे रात-दिन धनी होनेकी भावना बनाये रहते हैं तो उसका असर क्या पड़ता है? असर है क्लेश है और संक्लेश। उस भावनाके प्रयत्नमे कुछ न कुछ जुड भी जाता है। यदि हम आप इस ज्ञानस्वरूप अपने आपकी भावना बनाएँ तो कैसे प्रभुके दर्शन होंगे? जिनकी हम मूर्ति बनाकर पूजते

हैं, उनका स्वरूप भी तो जानिये क्या है? तब तो प्रभुकी सच्ची पूजा होगी। उनके स्वरूपसे तो अनभिज्ञ रहें और पूजा कर लेनेका नाम बनाएँ तो यह नहीं हो सकता।

परमात्मत्वकी उपासनामें दर्शन—प्रभुका स्वरूप है शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन, शुद्ध आनन्द और अपने आपके स्वरूपको अपने आपमें सभालने का शुद्ध सामर्थ्य। यों अनन्त ज्ञान दर्शन, शक्ति आनन्द करके समर्थ यह केवल आत्मा परमात्मा है, और ऐसा ही स्वरूप अपना न विचारा तो उस परमात्माका स्वरूप हम यथार्थरूपसे जान नहीं सकते। इस लिए अपने आपमें यह भावना बनावो समस्त इन्द्रियोंको सयत करके, अपने अन्तरमें दृष्टि गड़ाकर, ऐसा निरखो कि मै एक ज्ञानमात्र हू। जो आनन्दको साथ लिए हुए है ऐसी अपने आपकी अतुल सामर्थ्य सहित अपनेको भाइये। अपने आपको ऐसा सोचिए कि मैं ज्ञानमात्र हू, सबसे जुदा हू। ज्ञानका जो स्वरूप है केवल जानन, उस जाननस्वरूपको भी नजरमें रखकर मैं ज्ञानस्वरूप हू - ऐसी बारबार भावना भायें तो केवल ज्ञानमात्र परिणमन हो जायेगा। उस स्थितिमें जो आनन्द होगा वही वास्तविक आनन्द है, और उस ही आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि संकटोंकी जड़ भी मिटा दे।

यथार्थश्रद्धामें उद्धारकी अवश्यम्भाविता—भैया! जिस शरीरसे हम प्रेम करते हैं वह सब संकटोंकी जड़ यह शरीर है। भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी, शोक, चिन्ता— ये सब इस शरीरके ही सम्बन्धसे बने हुए हैं। इस शरीरसे विरक्त रहनेमें आत्माको शान्तिका मार्ग मिलेगा। इस शरीरसे प्रीति करने से शान्तिका मार्ग न मिलेगा। हम जितनी बाहरमें दृष्टि बनाते हैं, अन्य-अन्य चीजोंमें अपना उपयोग फसाते हैं, उनसे व्यवहार बनाते हैं उतना ही हम आपका अकल्याण है। घर गृहस्थ है, गृहस्थके काम करना है, ठीक है, कीजियेगा, मगर श्रद्धा सही बनाते हुए भी तो गृहस्थीका पालन हो सकता है। श्रद्धा विपरीत क्यों बनायी जाये? आप सबसे जुदा हैं कि नहीं? जुदा हैं, तो मान लो, और ऐसा मानते हुए भी काम जो कुछ करना पड़ रहा है करियेगा। कोई पुरुष अपनेको जुदा न मानकर मैं इन परिजनों रूप हू— ऐसी खोटी श्रद्धा बनाकर उन्हीं कार्योंमें पडे तो उसकी दुर्गति है। श्रद्धा सही बनावो। पूजामें आप रोज पढ़ते हैं—कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना श्रद्धा धरे। द्यानत श्रद्धावान् अजर अमर पद भोग करे। यदि आप तप, व्रत नहीं कर सकते हैं तो श्रद्धा तो सही बनाये रहें, मैं सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप हू, यह भावनामें रहेगा तो कभी नियमसे मोक्षपद प्राप्त होगा।

दीप्तोभयाग्रवातारिदारूदरगकीटवत् ।
जन्ममृत्युसमाश्लिष्टे शरीरे वत सीदसि ।।६३।।

सम्पदाकी अस्थिरता— इससे पहिले छंदमें यह बताया था कि बड़ों-बड़ोंके भी राज्यलक्ष्मी सदा नहीं रहती । पुराने इतिहासोंकी तो बात क्या कहें ? आज कल भी साफ दिख रहा है कि कोई तो जो शाम तक धनी था वह सुबह तक धनी न रह पाया । कल रातकी ही यहांकी घटना सबको विदित है कि कल तक वह धनी था, सुना है कि डाकुओंने उसे जानसे भी मार दिया । यह धन सम्पदा सुखके लिए नहीं है, यह तो कल्पनासे सुख पैदा करता है । कितना ही धन हो, कल्पना करते जावो और दुःखी ही होते जावो, आराम नहीं मिलता । कभी-कभी ४ आदमियोंके बीच बैठकर कुछ अपनी सम्पन्नता अहंकारमें मौज मान लिया जाता है, किन्तु वह मौज भी अंधेरासे भरा हुआ है । अरे क्यों मायारूप प्राणियोंके लिए अपनी सम्पन्नता दिखाना चाहते हो ? वे सब पुरुष कर्म-बन्धनसे जकड़े, जन्म-मरण दुःखके प्रेरे हुए और मलिन आशय वाले धर्मसे विमुख आर्तरौद्र ध्यानमें बसे हुए हैं जिनको तुम प्रसन्न करना चाहते हो अपनी शान दिखा कर । अरे, इन लाखोंको छोड़कर एक प्रभुको ही प्रसन्न करलो, वहां कुछ मिलेगा, पर इस दुनियाको प्रसन्न करनेके लिए धन वैभव जोड़ना, उसकी चिंता करना, कल्पनामें ही अपना जीवन बिता देना यह लाभकारी नहीं है । यह लक्ष्मी बड़े-बड़े चक्रवर्तियोंके भी शाश्वत नहीं रही, और पुण्य हीनजनों की तो बात ही क्या कहें ?

शरीरके ओर छोरपर जन्म मरणकी दाह— जो पुरुष राजगद्दी पर बैठते है उनके सिरपर पट्टी बंध जाती है । जैसे घरमें किसी बड़े पुरुषके मरनेपर उसका बड़ा भाई या जिसे घरका प्रमुख माना जाता है पंचोंमें मित्रोंके निकट एक साफा बांध दिया जाता है । उसका मतलब यह है कि सब धन वैभव अब इसका है । इससे भी बढ़कर बात जब राजतिलक होता है तब सब राजावोंके सामने उनके सिर पर पट्टी बांधी जाती है । अरे, जिस शरीरपर तुम पट्टी बांध रहे हो, जिस शरीरको तुम सजा रहे हो वह शरीर है कैसा ? यह शरीर मानो एक तरहकी ऐरन्डकी लकड़ी है । जैसे ऐरन्डकी लकड़ीके दोनों छोरोंमें आग लगी हो और उसके पोलमें कोई कीड़ा पड़ा हो पहिलेसे तो उस कीडेकी क्या दशा होती है ? दोनों ओर से आग लगी है, उस लकड़ीके अन्दर पड़ा हुआ कीड़ा मर जाता है, इस ही प्रकार इस शरीरके दोनो ओर पर अर्थात् शरीरकी आदिमें और शरीर के अन्तमें दोनो छोरोंमें जन्म और मरणकी आग दहक रही है ।

शरीर सम्पर्कमें सर्वदा क्लेश— जब शरीरका आदि हुआ, जन्म हुआ तब भी क्लेश, इसके बाद भी क्लेश। जब शरीरका अन्त होगा, मरण होगा इसके बाद भी इसे बड़ा क्लेश होगा। यह तो जन्म और मरणको अग्नि है। उसके बीचका जो काल है, जितने वर्षोंकी जिन्दगी कही जाती है उस जिन्दगीके भी हाल देख लो, सिवाय तड़फनेके, क्लेशके, उसके साथ क्या रहता? प्रभुस्वरूप होकर भी यह भगवान् आत्मा मनकी स्वच्छन्दतावोंसे बिगड़कर घटपट अपना बर्ताव कर रहा है। इसका फल इष्ट नहीं होता, लाभकारी नहीं होता। सब संकटोंका मूल है शरीर। कल्पना करो कि अपने साथ शरीर न होता, केवल खुद ही खुद होते तो केवल यह ज्ञानानन्द शिवस्वरूप था, कल्याणमय था, आनन्दमय था, पर इस शरीर का सम्बन्ध है ना, इस कारण शरीरकी ओर दृष्टि भी कर रहा है और शरीरको जब माना कि यह मैं हू तो शरीरके नातेसे दुनियाके अन्य जीवों को भी मान लेते हैं कि यह मेरा परिवार है, यह मित्र है, यह गैर है। जब पहिले शरीरको माना कि यह मैं हू तब और जीवोंको भी मानना पड़ा कि यह मेरा है।

समागमकी असारता—यह जगत मायामय है, अभिमान और इतरानेके योग्य नहीं है। जो समागम पाया है, वह तो फलमें कष्ट ही देगा। कोई भी समागम हो, अन्तमें कष्ट ही पहुचाता है। समझ लो, मान लो, जितने समागम हैं ये सब कष्टके ही कारण बनेंगे। पता नहीं है, किसी को कुछ कि मेरे ऊपर क्लेश अब क्या आयेगा? कष्ट कभी सूचना देकर नहीं आता है, पर ये समागम नियमसे कष्टके ही कारण बनेंगे। धन वैभव है तो उसको बाटनेमें लड़ाई चलती है, और धन है तो किसी दिन यह नष्ट होगा ही, वियोग होगा ही। तब वियोगके समय सक्लेश करेगा।

समागमका अन्तिम परिणाम क्लेश— अपने जीते जी भी इस धन को सभालनेकी सामर्थ्य नहीं है। कदाचित् पुण्यका उदय है और रहा आये जीवन भर तो अन्त की तो कुछ खबर लो। जिस समय मरण होगा, इस घरसे विदा हो रहा होगा, इस ईंट चूनाके मकानको छोड़कर जा रहा होगा, इस देहको भी धीरेसे त्याग कर जब परलोकको जा रहा होगा, उस समय तृष्णा अज्ञानके कारण जो-जो सकल्प कर रक्खे थे, उन सकल्पोंके विघात होनेसे यह कितना कष्ट मानता है? जिस वस्तुका समागम हुआ है वह वस्तु अन्तमें नियमसे कष्ट देगी। यह बात निर्णय करके रख लो। जिन के यह निर्णय नहीं है उनको अन्तमें बड़ा कष्ट होगा। और जिनके यह निर्णय है उनको अन्तमें महान् कष्ट न होगा, क्योंकि वे स्वय अपना विवेक

और ज्ञान जागरूक बनाये रह सकते हैं ।

सम्यग्ज्ञानके ही शान्तिहेतुपना— इस लोकमें हम आपको केवल एक सम्यग्ज्ञान ही शरण है । यहा यह भेद न होगा कि जो पडित लोग हैं उनको ज्ञान शरण है, जो त्यागी लोग हैं उनको धर्म शरण है, किन्तु गृहस्थोंको तो धन ही शरण है, ऐसा भेद नहीं है । सर्व जीवोंको शरण एक है, शान्ति आनन्दका कारण एक ही है । चाहे गृहस्थ हो अथवा साधु हो, शान्तिका कारण सम्यग्ज्ञान है । अशान्ति क्या वस्तु है ? पुद्गल पुद्गलमे हैं, जीव जीवमे है, घर घरमे है, सोना सोनामें है, अन्य जीव भी खुद अपने आपके स्वरूपमें हैं, हम आप अपने स्वरूपमें हैं, इसमें कष्टकी कौन सी बात है ? जो चैतन्य सत् है वह कभी नष्ट नहीं हो सकता । सत्के ही कारण प्रत्येक पदार्थ स्वरक्षित है । अब कष्ट काहेका ? सो बतावो । भैया ! कैसी भी स्थिति हो, पर जहा परद्रव्यमे ऐसी कल्पना हुई कि यह मुझे मिले, बस वहां ही आधीनता है और उस आधीनतासे ही दुःख होता है ।

अमीर और गरीब— यहां तो अमीर वह है जो अपनेको अकिञ्चन् मान रहा है अन्तरङ्गमे, मेरा जगत्में कहीं कुछ नहीं है । मेरा तो मात्र मैं ही स्वयं हू, ऐसा जो मानता है वह है अमीर । और जो किसी परवस्तुके कारण अपने आपको विशिष्ट मानता है—मेरे इतना वैभव है, मेरे इतना परिवार है, जो परवस्तुके सम्पर्कसे अपनेको बड़ा मानता है वह है गरीब, क्योंकि परवस्तुमें अहकार बुद्धि होने से नियमसे उसे कष्ट होगा और जो परवस्तुसे विविक्त अपने आपके स्वरूपको निरखते हैं, उन्हें किसी भी स्थितिमें कष्ट नहीं हो सकता है ।

एक सेठका अभिमानसे मुक्त होनेका एक प्रयास— एक कस्बेमें एक जैन सेठ रहता था । ३५, ४०, वर्षकी ही बात है जब राजावोंका जमाना था । उस सेठको राजा बड़ा मानता था । राजाने उसे राव साहब की पदवी दी थी, लेकिन उस सेठका रोजका क्या काम था कि एक बोरेमें नमक तम्बाकू आदि कुछ चीजें भरकर गावमे बेचनेके लिए एक घटा चक्कर लगा आता था । उसके बाद अपने घर जाकर हजारोंका काम किया करता था । लोगो ने पूछा—राव साहब ! आप यह क्या करते है कि इतने बडे अमीर होकर आप नोन तम्बाकू बेचने जाया करते हैं ? तो सेठने बताया कि हमारे इस काममे बडे गुण हैं । आज हम सेठ हैं, कल गरीब हो गये तो नोन तम्बाकू बेचनेमें शरम तो न लगेगी । दूसरा गुण यह है कि उससे मान घमड उत्पन्न नहीं होता । जो भीतरमें कुछ घमडकी बात आ जाती है वह एक घंटा गरीबोंकी तरह फेरी लगा आनेसे दूर हो जाती है । तीसरा लाभ यह

है कि हम जनतामें गरीब भाइयोंमें रलमिलकर बैठनेका भाव तो हममें हो जाता है। तो कुछ भी वैभव पाकर यहां घमड करनेका और इतरानेका अवसर नहीं है।

धर्मानुसरणकी प्राथमिकता— हमारा कर्तव्य है कि जिस धर्मके प्रसादसे आज हम अच्छी स्थितिमें हैं उस धर्मको न छोड़ें। सबसे बड़ा शरण है। धर्म जरासी ही देरमें हजारोंका नुकसान हो जाता है। अभी की ही घटना है कम्पिल जी में एक भाई वदनाको आये थे। उस ही रात उनके यहां चोरी हो गयी, निकल गया उनका सारा धन। तो यह वैभव अपने रखाये रखने की चीज नहीं है। पुण्यका उदय है तो आता है और यदि पापका उदय आया तो साराका सारा धन यों ही चला जाता है। धन वैभव की ओर दृष्टि रखना योग्य नहीं है। धर्म तो रखना है धर्मकी ओर। तन, मन, धन, वचन सब कुछ इस धर्मके लिए न्यौछावर होना चाहिए। धर्म सही मायनेमें अपने पास रहे तो वह हम आपको बहुत फल देगा। कुछ विवेक बने, किसीके बहकानेसे कभी बहकें नहीं। कभी किसी भावुकतामें आकर अपना आगा पीछा न छोड़ें। जो विवेकमें बुद्धिमें यथार्थ बात उतरे उसको धैर्यके साथ करें।

आन्तरिक उदारता— भैया! चित्तमें इतनी उदारता अवश्य रक्खे कि अब जो कुछ मिला है वह सब यों ही मिल गया है, और यह यों ही चला जायगा। इस आत्माका इस कुछ सम्पदामें स्पर्श नहीं है, यह आत्मा सम्पदाको पकड़ कर रहती नहीं है, यह धन सम्पदा पुण्योदयसे स्वयमेव मिल जाती है और पुण्य विनाशसे स्वयमेव खिर जायगी, तब जो अध्रुव पदार्थ हैं, विनाशीक चीज हैं उनसे ममत्व बुद्धि हटावो। इनमें तृष्णा करना लाभकारी नहीं है। आजका जमाना भी इस बातका समर्थन करता है कि व्यापार करें, उपकार करें, दान करें, सब करें, पर सचयका भाव न बनायें। इस धनको धर्मकार्यमें न लगा सकें और सचयकी बुद्धि बनाए रहें— ऐसा प्रोग्राम तो न होना चाहिए। आजके समय का कुछ विश्वास भी है क्या? न जाने कब क्यासे क्या हो जाय? जब यह शरीर भी अपना साथ न देगा तो यह धन वैभव तो अपना साथी होगा ही क्या?

आजन्ममरणके आगकी झुलस— इस शरीरके पहिले जन्मकी आग लगी है और शरीरके अन्तमें मरणकी आग लगी है। और विचित्रता देखो कि जन्म और मरण ये दोनों आग एक ही साथ लगी हुई हैं। इस जीवका जिस समय मरण होता है उसही समय जन्म होता है। रूढ़िवश लोग कह देते हैं कि इस बच्चेका ९ महीने में जन्म हुआ है, पर जन्म तो इस बच्चे

का तभी हो गया जब वह गर्भमें आया। उस बच्चेका गर्भमें चाहे शरीर जरा भी न बढ़े, पर जन्म उसका हो गया। गर्भमे आनेके पहिले जिस जगह वह मरा है, वहासे जन्म समय तक (गर्भ समय तक) चाहे उसे तीन समय तक लग जायें, पर उसका जन्म तो पहिले ही समयमें हो गया था। यों ही यह जीव ज म-मरणकी आगमे झुलस रहा है।

नरजीवनका धर्मपालनमें सदुपयोग— देखो जैसे कोई एक गन्ना ऐसा हो, जिसमें कीडा लग जाता है, जो अन्दरसे लाल रगका हो जाता है, बीच बीचमें कुछ खाने लायक होता है। उस गन्नेको कोई लोभी पुरुष यदि चूस डाले तो उसने उस गन्नेको भी खराब कर दिया और अपना मुँह भी खराब किया। विवेक तो यह कहता है कि उस गन्नेको खेतमें बो दें, फिर अनेक पेड़ होंगे, उनको फिर भखें। ऐसे ही हम आपका यह जो जीवन है सो बालपनमें तो अज्ञान बसा है, बुढ़ापे में शिथिलता है, अशक्ति हो जाती है, और बीचकी जो जवानीकी अवस्था है इसमें विषयकषायकी वेदनाएँ सताती हैं। इस जवानीको केवल विषयकषायोंमें ही गँवा दिया तो ऐसा अमूल्य जीवन व्यर्थ ही खोया और अपने आपको पापोंसे जकड़ लिया। विवेक तो यह कहता है कि इस अपनी जवानीको धर्मकार्यमें लगावो। ऐसा प्रोग्राम बनावो कि अपना जीवन धर्ममय व्यतीत हो।

धार्मिक कार्योंमें समय बितानेका अनुरोध— भैया! बाहरी कार्योंके करने से क्या लाभ मिलता है? रोज सुबह पूजन वन्दनका समय हो, कुछ स्वाध्यायका समय हो, कुछ सामायिकका समय हो- ऐसे ही कुछ धार्मिक कार्योंमें विशेष समय बीते, इस ज्ञानस्वरूप भगवान् आत्माकी सुध ले तो शान्ति हस्तगत है, अन्यथा तो दुर्बुद्धि होकर क्लेश ही सहना होगा। हे मनमौजी आत्मन्! देख जन्म और मरणसे जो सम्बद्ध है ऐसे इस शरीरमें तू मौज क्यों मानता है? इस शरीर से रहित निरञ्जन अपने स्वरूपको निरख, तुझे असीम आनन्द आयेगा। जैसी दृष्टि होती है वैसी सृष्टि बनती है। हम किस स्थितिमें हैं, किस जगह हैं, इसका तू कुछ सोच विचार नहीं करता। तेरा जो शुद्धस्वरूप है उस ओर निगाह कर तो तेरे बहुतसे संकट मिट जायेंगे और बहुतसी ऋद्धि समृद्धि आपक उत्पन्न होगी। हमारी जैसी भावना बनेगी वैसा ही हम फल भोगेंगे। भावनासे ही ससार बढ़ता है और भावनासे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। भावना भावो, अपनेको सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप निरखने की अपनी प्रकृति बनाएँ, फिर देखिये कितना आनन्दका अनुभव होगा?

आत्माका सुधार और बिगाड़— भैया! विवेक उत्पन्न करे, परकी

परिणतियोंमें क्या दु ख मानें ? बाह्य स्थिति ऐसी हो तो क्या, और किस्म की हो तो क्या ? वह बाह्य चीज है, उससे मेरे आत्माका कुछ बिगाड़ नहीं है। मैं अपने आपमें बाह्यवस्तुओंके प्रति ममता जगाऊँ तो मेरा बिगाड़ है, और अपने आपके स्वरूपसे नेह लगाऊँ तो मेरा सुधार है। अपने आप को सभालो। खुदकी ही संभालमें सुख दु खका निर्णय है। कोई किसी पर की सभाल भी नहीं कर सकता और उससे कभी उसे सतोष भी नहीं हो सकता। अब तक के भी अनुभवसे विचार लो। किस किस बाह्यपदार्थ को चाह-चाह कर तृप्ति कर पायी है। शरीरको गहनेसे सजा लिया तो आत्मामें कौनसी शान्ति आ गयी ? चार पुरुषोंने बड़ा अच्छा है—इतना भर कह दिया तो इससे कौनसा लाभ पा लिया ? अरे शान्ति तो विशुद्ध ज्ञानमें है। जो योगीश्वर है, ज्ञानीजन है, परमेष्ठीका स्वरूप है उस स्वरूप की भक्तिकी चिन्तनामें, सेवा उपासनामें लगे तो उससे शान्तिमार्गकी प्राप्ति होगी। शेप परद्रव्योंमें उपयोग देनेसे कुछ भी लाभ न होगा। अपने आपके आत्माको देखो।

वर्तमान स्थितिमें अपना कर्तव्य– जैसे किसी पोली लकड़ीमें दोनों ओर आग लगी हो, बीचमें कीडा घुसा हो तो जसे वह कष्ट पाता है ऐसे ही हम आप इस ससारके भीतर प्रवेश किए हुए हैं और इस शरीरके आदिमें जन्म और अन्तमें मरण और मरणके साथ जन्म, इस प्रकार जन्म और मरणकी आग दहक रही है, जल रही है और हम आप उसके बी पडे हुए हैं। ऐसी दयनीय स्थितिमें क्या अभिमान और अहंकार करना प्रभु-स्वरूप पर न्यौछावर हो जावो। जो कुछ भी पुण्य समागम पाया उस सबसे न्यारा अपने विशुद्ध चैतन्वस्वरूपको निरखनेका यत्न करो त इससे उन्नति होगी।

नेत्रादीश्वरचोदित सकलुषो रूपादि विश्वाय किम्,
प्रेष्य सीदति कुत्सितव्यतिकरैरहास्यल वृ हयन्।
नीत्वा तानि भुजिष्यतामकलुषो विश्वं विसृज्यात्मवान्,
नात्मानं धितु सत्सुखी धुतरजा सद्वृत्तिभिर्निवृत ॥६४॥

व्याकुल प्राणीको सबोधन— हे जीव ! तू कर्मोंके उदयसे प्रेरा हुआ नेत्रादिक इन्द्रियोंके विषयोंके वशीभूत होकर अतिव्याकुल हुआ, तू रूप आदिक समस्त विषयोंकी अभिलाषासे क्यों खेद खिन्न हो रहा है ? इन इन्द्रियोंका तू किंकर क्यों बन रहा है और इसही दासतामें खोटे, अटपटे आचरणों करके क्यो पापोंको बढ़ा रहा है ? देख अब आकुलताको छोड़कर समस्त विषयोंका संकल्प तजकर एक ज्ञान ध्यानरूप अमृतको सेवन करके

सुखी होवो। यह जीव ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुणोंका पिंड है। यह स्वतन्त्र है, परिपूर्ण है, अपने आपमें अपने आपका परिणमन करता हुआ रहता है, किन्तु एक पर-उपाधिक सम्बन्धसे इस आत्मामे विकारभाव उद्भूत हो गए हैं।

भूख, प्यास, ठंड, गर्मीकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क— यह शरीर सर्वक्लेशोंका मूल है। शरीरका सम्बन्ध न होता तो आत्माको कभी अशान्ति न होती। जितनी भी अशान्ति है वह इस शरीरके सम्बन्धसे है। २२ प्रकारके उपसर्ग परिषह जिनको साधुजन समतापूर्वक सह लेते हैं उन सब परिषहोंका मूलकारण देखा जाये तो यह शरीर पड़ता है। जैसे भूखकी वेदना हो तो उसमें भी शरीरका ही सम्बन्ध कारण है। भूख, प्यासकी वेदनासे पीड़ा हो तो वह भी शरीरके सम्बन्धसे ही तो एक इस प्रकारकी पीड़ा होती है, जिस वेदनामें यह भी सम्भव है कि यह मृत्युको भी प्राप्त हो जाए। ठंडकी वेदना, शरीर है तब ही तो लगती है। आकाश की तरह अमूर्त निर्लेप सच्चिदानन्दस्वरूप इस आत्मतत्त्वको ठंड की कहां से वेदना लगेगी? यों ही गर्मीको भी वेदना शरीरके सम्बन्धसे है।

दंश व नग्नताकी पीड़ाका कारण शरीरसम्पर्क— डांस मच्छर काटते हैं, उनका क्लेश होता है, उसे साधु महाराज तो समतासे जीत लेते हैं, किन्तु ये परिषह ये उपद्रव हुए कैसे? शरीरके सम्बन्धसे ही। क्या कोई मच्छर इस अमूर्त आत्माको काट सकते हैं? उनका तो वहां प्रवेश भी नहीं है, सम्पर्क भी नहीं है। यह डांस, मच्छरके काटनेसे जो वेदना भोगनी पड़ती है वह भी शरीरके सम्बन्धसे है। नग्न रहना या कपड़े पहिनना यह भी भेद आत्मामें नहीं पड़ा हुआ है। यह भेद शरीरके सम्बंध से है, जब विकारभाव होता है तो इस शरीरके सम्बंधमें इसे लाज आती है, उस लाजको ढाकनेके लिए वस्त्र ग्रहण किए जाते हैं। कोई भी मोही पुरुष नग्न रहनेका संकोच अनुभव करता है। उसका खोटे परिणमनोंकी ओर चित्त लगा है, वह नग्नतामें लाज करता है, अवगुण मानता है। नग्न होना भी एक परिषह है। नग्न होकर विकार भाव नहीं आ सकता, और अपने आपमें झेंप नहीं हो सकती। वीर बालकवत् निर्भय अपने आपके आत्माकी ही ओर उपयोग रह सके, ऐसी बात साधुजन कर सकते हैं। इस नग्नपरिषहके विजयी साधु होते हैं। प्रकरणमें यहां यह समझो कि इससे जो भी खेद उत्पन्न होता है वह इस शरीरके सम्बन्धसे होता है।

अप्रीति व स्त्रीपरिषहका कारण शरीरसम्पर्क— परवस्तुमे इष्ट अनिष्टकी जो बुद्धि हुई, जो राग अथवा द्वेष उत्पन्न हुआ वह भी इस

शरीरके सम्बन्धसे हुआ है। दुनियामें कोई अनिष्ट पदार्थ नहीं है इस आत्माका, किन्तु आत्मा अमूर्त है, समस्त पदार्थोंसे न्यारा है, इसका कहा से कुछ अनिष्ट होगा ? किन्तु, शरीरका सम्बंध है, इस सम्बधके कारण जो शरीरको इष्ट लगा उसे साधक मान लिया और जो शरीरके विषयोंसे विपरीत हुआ उसे बाधक मान लिया। अनिष्ट प्रसंगोंको पाकर इसके द्वेष जगने लगते हैं। ये वैर द्वेष अप्रीति इस शरीरके सम्बन्धसे ही तो बने हैं। स्त्री परिग्रह साधुजन सहते हैं। रूपवती देवांगनाएँ अथवा महिलाएँ समक्ष हों, वे साधुको डिगानेका भी बड़ा हाव-भाव करें, पर वे साधु डिगते नहीं हैं। साधु, स्त्रीपरिषह विजयी होते हैं। यहा इस सम्बन्धमें यह खोज करो कि स्त्रीपरिषह नामक उपद्रव होनेका मूल कारण क्या है ? तो प्रसंगके अनुसार यह कहना मुक्त है कि शरीरका सम्बन्ध है तब स्त्रीका उपद्रव जचा। शरीरके आश्रयसे ही तो विकार प्रकट होते हैं, और उस विकारके आश्रयसे ये सब परिषह होते जाते हैं। इन परिषहोंमें भी शरीरका सम्बध कारण बैठा।

कण्टक कड्कड़ आदिका बाधाका व गालियोंके खेदका कारण शरीर-सम्पर्क— चलते समय काटा चुभनेका जो दुःख होता है वह दुःख इस शरीरके सम्बधका ही तो है। आत्मामें तो कांटा चुभता ही नहीं है। आत्मा तो निर्लेप अमूर्त वस्तु है, काटेके चुभनेका परिषह भी इस शरीरके सम्बन्धसे है। जितने भी उपद्रव दिखते हैं वे सब इस शरीरके सम्बन्धसे हैं। मुनियोंको दुःख हो तो, गृहस्थोंको दुःख हो तो सभीको इस शरीरके सम्बन्धका दुःख है। कोई गाली गलौच देता है उसका भी बड़ा क्लेश अनुभवा जाता है। वह क्लेश भी इस शरीरके सम्बन्धसे ही हुआ। जिस शरीरमें यह जीव है सुनने वाला, यह शरीरको लक्ष्यमें लेकर ही तो यों समझता है कि इसने मुझे गाली दिया है। अपने आत्माके अमूर्तस्वरूप को नजरमें रखकर नहीं सोचता है। वह अमूर्त ज्ञानस्वरूपको लक्ष्यमें लेकर इस प्रकार सोच ही नहीं सकता। किसीकी गाली सुनकर बुरा माननेका विकल्प भी इस शरीरके सम्बन्धसे है। शरीर पर इस जीवका लक्ष्य है, इस कारण गाली सुननेमें यह जीव कष्ट मानता है।

आशा व अलाभकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क— किसी वस्तुकी आशा करना यह भी महान् क्लेश है। आशारूपी क्लेश भी इस शरीरके सम्बन्धसे होता है। किसी भी पदार्थकी आशाका दुःख भी इस शरीरके ही सम्बन्धसे है। किसी इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होने पर जो खेद माना जाता है उसका भी कारण शरीरका सम्बन्ध है। मुझे यह चीज नहीं मिली—ऐसा

परिणाम जो करता है वह शरीरको 'यह मैं हू' ऐसी नजर रखकर करता है। यह अमूर्त आत्मा आकाशकी तरह निरञ्जन है। इसमे क्या लाभ अलाभ की बात है? यह तो जो है स्वयं है, सो ही है। केवल आत्माका नाता उपयोगमें रहता तो अलाभका क्लेश न माना जाता। परवस्तुका लाभ न होने पर जो भी वेदना अनुभूत होती है वह शरीरके सम्बन्धसे है।

रोग, असन्मान आदिकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क— सारी व्याधिया जुखाम बुखार कुष्ठ आदिक जितने भी क्लेश हैं वे सब शरीरके आशयसे ही तो है। इनका आधार शरीर है। इस शरीरमे सूई चुभे, कोई पीडा दे, कोई उपद्रव आये—ये सब परिषह भी इस शरीरके सम्बन्धसे हैं। खाज खुजली जो हो जाती है, उससे जो बेचनी होती है, वह भी शरीरकी ही बात है। कोई पुरुष सम्मान न कर सके, इसका भी बुरा मानना यह भी क्लेश इस शरीरके सम्बन्धसे है। क्यों इसने मेरा सम्मान नहीं किया, ऐसा सोचने मे अपमान महसूस हो रहा है, यह सब इस शरीरके सम्बन्धसे हो रहा है। शरीरकी दृष्टि छोड़कर जो आत्मस्वरूप है उसकी ही मात्र दृष्टि रक्खी जाती होती तो वहा ये विकल्प ही न उठते। यों सत्कार न होनेका जो उपद्रव है वह भी जीवके शरीरके सम्बन्धसे होता है।

प्रज्ञाभिमान, अज्ञान आदि समस्त बाधावोंका कारण शरीरसम्पर्क— कभी-कभी अपने ज्ञान पर घमंड आनेका भी दुःख भोगना पड़ता है। मैं इनमें विशिष्ट ज्ञानी हू, ऐसा ज्ञानपनेका अभिमान रखकर भीतरमे जिसके क्लेश बना रहता है, वह पुरुष सुखी नहीं रहता। वह भी बड़े क्लेशमें रहा करता है। यह दुःख भी शरीरके सम्बन्धसे है। मैं ज्ञानी हू—ऐसा सोचनेमें किसको 'मैं' कहा गया है? वह मैं विभावव्यञ्जन पर्याय है, इसकी निगाहमे केवल सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको मैं मानकर तो यह अभिमान नहीं जग सकता, क्योंकि यह आत्मा शाश्वत सहजज्ञानस्वरूप है, इसमे चढ़ाव उतार ही कुछ नहीं है। किस पर अभिमान जगे? कोई-कोई पुरुष अपने अज्ञान पर दुःखी रहते हैं। बड़ी साधना की, फिर भी ज्ञान प्रकट नहीं होता। मैं बड़ी मेहनत करता हू फिर भी विद्या नहीं आती, मैंने बड़ी तपस्या की, फिर भी अवधिज्ञान या और कोई बड़ा ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ। ऐसा जो क्लेश माना जाता है वह भी शरीरके सम्बन्धसे माना जाता है, ऐसा सोचनेमें उसने जिसे 'मैं' माना वह शरीरको नजरमें रखकर मैं माना गया है। इस मुझको ज्ञान प्रकट नहीं हुआ और सहज चैतन्यस्वरूप जो निज आत्मतत्त्व है उसको नजरमें रक्खे तो इस प्रकारका क्लेश नहीं होता। अज्ञान का भी जो क्लेश है वह शरीरके सम्बन्धसे होता है। यों बड़े बड़े जितने भी क्लेश

हैं वे सब इस शरीरके सम्बन्धसे हैं।

निर्धनत्वकी कल्पनाकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क— अपनी निर्धनता का दु:ख माननेमें भी शरीरका संबन्ध कारण है। यदि इस शरीरमें आत्मबुद्धि न हो तो मैं गरीब हूं—इस प्रकारका चिन्तन नहीं हो सकता। यह मैं आत्मा शाश्वत सहज ज्ञानशक्तिस्वरूप हूं। इसमें समस्त परद्रव्योंका अत्यन्त अभाव है। न इसमें देह है न कर्म है, न धन वैभव है। और की तो बात क्या, इन परद्रव्योंके निमित्तसे जो आत्मामें रागद्वेषकी तरंग उठती है उस तरंगरूप भी मैं नहीं हूं। मैं सबसे न्यारा अकिञ्चन एक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, ऐसा जो अपने अन्तस्तत्त्वको ध्यानमें लेता है उसे निर्धनताका कष्ट कहां है? वह तो निर्धनताको प्रयोगिक रूप देना चाहते हैं।

परसम्पर्ककी ऐकान्तिक क्लेशहेतुता— जितने भी क्लेश होते हैं वे परके सम्बन्धसे ही तो होते हैं। यावत् क्लेश हैं वे शरीरके सम्बन्धसे हैं। यह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ है? इसके बनानेवाला कोई ईश्वर नहीं है, जो बैठे-बैठे इस शरीर की रचना करता फिरे। प्रभुका स्वरूप तो सर्वज्ञ होकर भी अनन्त आनन्दमें मग्न होनेका है। वे समस्त लोकालोकके जाननहार हैं, किन्तु किसी विकल्पमें नहीं रहते, अपने स्वात्मीय आनन्दमें ही मग्न हैं।

प्रभुदर्शन— हम आप प्रभुमूर्तिके दर्शन करते हैं तो जिनकी यह मूर्ति है, जिनकी इस मूर्तिमें स्थापना की है उस प्रभुके स्वरूपमें दृष्टि दें वह प्रभुस्वरूप कैसा विदित होगा? प्रभु वीतराग सर्वज्ञ हैं, इस कारण वे अनन्त आनंदमें मग्न हैं। राग हमारे आनन्दको प्रकट नहीं करता है, किन्तु आनन्द में बाधा डालता है। मोही जीव यों समझते हैं कि मुझे परद्रव्योंके रागसे मौज मिला है, पर वास्तविकता वहां यह है कि परद्रव्योंके रागसे मेरे आनन्दका विनाश हुआ है। प्रभु वीतराग हैं, इस कारण अनन्त आनन्दमय हैं। प्रभु सर्वज्ञ है, समस्त त्रिकाल त्रिलोकवर्ती पदार्थोंके जाननहार हैं इस कारण किसी भी समय उनमें क्लेश होनेका सन्देह ही नहीं हो सकता। ऐसे प्रभुके स्वरूपको निरखकर दर्शन करें, प्रभुके दर्शन वदन करते हुएमें भी क्लेश रहे तो समझिये कि दर्शन वदन किया ही नहीं।

शरीरसे निवृत्त होनेकी अभिलाषा— प्रभु अकिञ्चन हैं। उनके साथ न शरीर है, न रागादिक भाव हैं, न वैभव और सम्पदा है, न परिजन हैं। वे केवल रह गये हैं। इसही कैवल्यका महत्त्व है कि हम सब उन्हें भक्तिपूर्वक पूजते हैं। हमें दर्शन करते हुए में इतनी प्रेरणा लेना चाहिए कि हे नाथ! मैं भी जब आपकी ही तरह शरीरसे न्यारा अपने स्वरूपमें पूर्ण विकास वाला होऊँ तब कृतार्थ होऊँगा। इससे पहिले मैं तो दुःखी ही हूं। हे

नाथ ! कब ऐसा समय आयेगा कि मैं इस क्लेशकारी शरीरसे सदाके लिए मुक्त हो जाऊँगा । इस शरीरकी प्रीति न कीजिए । यह शरीर बैरी है जीव का । इस जीवके साथ जब तक शरीर लगा रहेगा तब तक जीवको अनन्त ऐश्वर्य भोगनेमें नहीं आ सकता ।

विषयसाधनोंके सम्पर्कमें व्याकुलता— इस शरीरको किसी ईश्वरने नहीं बनाया । ईश्वर तो अनन्त आनन्दमय है । यह कर्मोंका ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि जैसे अनेक पुद्गलके सम्बन्धमें अनेक बातें हुआ करती हैं, ऐसे ही उस-उस जातिके कर्मोंका उदय होने पर इस जीवको इस प्रकारका शरीर मिलता है । यह शरीर कर्मोंके उदयके निमित्तसे उत्पन्न हुआ है और शरीरके सम्बन्धसे इन्द्रियोंकी दासता उत्पन्न हुई है । शरीर इन्द्रियात्मक है । सारा शरीर स्पर्शन इन्द्रिय है और शेषकी चार इन्द्रियां भी अपने-अपने नियत स्थान पर हैं । उनके वश जब यह जीव हो जाता है तब इसके विषयके निमित्त व्याकुलता उत्पन्न होती है । सुन्दर स्पर्श मनप्रिय रूप रस गंध स्पर्श ये इसे नहीं मिलते हैं तो यह व्याकुल हो जाता है और मिलें तो वहां भी व्याकुल रहता है । कोई भी पुरुष क्या शान्तिके साथ विषयोंका सेवन करता है ? अशान्ति और क्षोभ उसे सताते ही रहते हैं । इतना ही नहीं बल्कि विषयोंके खातिर अनेक दुराचार बढ़ाते हैं, पापकी वृद्धि करते हैं । खैर, पापोंको करके भी विषयभोग लिया, लेकिन भविष्यमें इनका फल खोटा होता है । विषयोंको भोगकर कुयोनियोंमें यह जीव पड़ता है ।

संसरण व असंसरणका उपाय— भैया ! कुछ विवेक बनाकर देख लीजिए कि मुझ आत्मा भगवान्को इस शरीरमें जो बँधा हुआ रहना पड़ रहा है इसका क्या कारण है ? अरे भव भवमें देहमें ही अपने आत्माकी प्रतीति की, इस कारण इस देहका बन्धन लगा हुआ है । किसी पुरुषको यदि यह निर्णय हो जाय कि मुझे तो शरीरसे रहित होनेमें ही लाभ है, मैं इस शरीरसे रहित ही रहना चाहता हूं तो प्रथम कर्तव्य यह है कि मैं शरीरसे भिन्न निज ज्ञानानन्द स्वरूपकी परख करूँ और यह दृढ़ विश्वास रक्खूँ कि मैं तो मात्र ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, शरीरसे पृथक् हूं शरीर मैं नहीं हूं । जिस शरीरसे हमें मुक्त होना है उस शरीररूप अपनेको विचारें तो मुक्ति नहीं हो सकती ।

शाश्वत आनन्दका उपायभूत श्रद्धान— भैया ! पहिले यह श्रद्धान तो करो कि मैं शरीर नहीं हूं । मुझे शरीरके सम्बन्धसे सदाके लिए मुक्त होना है—यह विश्वास हो तब तो शरीरसे छूटनेका उद्यम बन सकता है ।

जो शरीररूप अपनेको समझता है वह शरीरको पाता रहेगा। जो शरीरसे भिन्न अपना स्वरूप मानता है वह शरीरसे मुक्त हो जायेगा। इन विषयोंमें आनन्द नहीं है। आत्मन्! इस मोह भावको तजकर आत्माके स्वरूपके ध्यान रूप अमृतसे अपनेको पुष्ट करो। आत्माके अहित विषय और कषाय हैं, अपने आपका मलिन परिणाम ही अपने आपको दुःखी कर रहा है। किसी अन्य पदार्थमें सामर्थ्य नहीं है कि वह मुझे दुःखी करे। मैं ही अपनी गंदी कल्पनावोंको उठाता हू और दुःखी होता रहता हू। इन विषयकषायों के परिणामोंको छोड़कर, पापपरिणामको त्याग कर तू शुद्ध समतावृत्ति से रहना। इससे तुझे अलौकिक सुख उत्पन्न होगा।

ज्ञानके सदुपयोगका अनुरोध—हे आत्मन्! तू ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानका सदुपयोग कर। देख अब कितना विशिष्ट ज्ञान मिला है? कितनी व्यवस्थाएँ बनाते हैं, कितने आरम्भ व्यापार आदिकमें तर्क वितर्क करके उनको निभा लिया जाता है? इतने विशिष्ट ज्ञानको यदि आत्मस्वरूपके प्रति बोधमें लगा दिया जाये तो क्या आत्माका ज्ञान नहीं हो सकता है? हे ज्ञानमय आत्मन्! तू विषयकषायोंको छोड़कर एक निज शुद्ध ज्ञानमात्र मैं हू इस ही भावनामें अपने उपयोगको लगा। जिस कालमें तू अपने आपको केवल ज्योतिस्वरूप अनुभव लेगा उस कालमें तुझे ऐसा अलौकिक आनन्द होगा जिससे सम्यक्त्व उत्पन्न हो जायेगा और ससारसे छूटकर निर्वाणमें पहुचनेका मार्ग पा लेगा। इससे इन विषयकषायोंसे निवृत्त होना ही योग्य है। कदाचित् इनमें पड़े रहना पड़े तो यह तो समझ बना कि ये अहितकर हैं, इन से मुझे छूटनेमें ही लाभ है।

> अर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोऽप्यवितृप्तितः।
> कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी ॥६५॥

आत्मज्ञानके अभावमें क्लेशोंका विस्तार— इस जगत्में वे सभी जीव दुःखी होते हैं जिन्हें धर्मका धाम निज आत्मदेवका स्थान, स्वरूप नहीं दीखा है। ऐसे जन जो धनके अर्थी हैं वे धनको न पाकर दुःखी होते हैं, किन्तु जिनके निकट धन है वे पुरुष भी पाये हुए धनमें तृप्त न होकर दुःखी रहते हैं। भला कुछ कल्पना तो करो— जो आज मिला हुआ है जिस किसी भी प्राणीको, क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि इसका आठवा हिस्सा ही मिला होता, न मिला होता इतना तो क्या वहा अपना साधन न बना पाते? जिसको धन मिलता है उसकी निगाह उससे अधिक पर रहनेके कारण वह पाये हुए धनका भी आराम नहीं ले सकता है। कर्तव्य तो यह है गृहस्थ धर्मका कि जो कुछ भाग्यानुसार प्राप्त हुआ है, उसमें ही धर्मका

उद्देश्य रखकर अपना जीवन बितावो। यह जीवन विषय और कषायोंके भोगनेके लिए नहीं है, किन्तु एक ऐसा उत्कृष्ट धर्मका पालन करनेके लिए है जिसके प्रसादसे फिर अनन्तकाल में भी दुःखका पात्र न होना पड़े।

आर्तध्यानका क्लेश—चार प्रकारके आर्तध्यान कहे गये हैं— इष्ट-वियोगज, अनिष्टसयोगज, वेदनाप्रभव और निदान। ऐसे ध्यान जो दुःख-रूप हैं, तुरन्त भी और भविष्यमें भी दुःखके ही करने वाले हैं। वे ध्यान चार तरहके हैं। पहिला इष्ट-वियोगज, इष्ट पदार्थका वियोग होने पर उस के संयोगके लिए अपना चिन्तन बनाना, सो इष्ट-वियोगज आर्तध्यान है। अनिष्टसयोगज—अनिष्ट पदार्थका संयोग होने पर उसका वियोग होनेके लिए, यह कब टले—इस चिन्तनामें जो संक्लेश होता है वह अनिष्टसयोगज आर्तध्यान है। वेदनाप्रभव—शरीरमें व्याधि हो जाने पर जो कष्ट होता है उस कष्टके चिन्तनका नाम है वेदनाप्रभव आर्तध्यान। निदान नामक आर्त-ध्यान यह इन तीनोसे खोटा है। निदान कहते हैं भविष्यकालके लिए विषयों के साधनोंकी अभिलाषा बनाये रहना।

निदाननामक विकट आर्तध्यान— निदान इतना खोटा ध्यान है कि यह चतुर्थगुणस्थानमें भी नही रहता एक शल्यके रूपमें और अशुभका निदान तो चतुर्थ गुणस्थानसे निवृत्त होने लगता है। किसी भी प्रकारका निदान छठे गुणस्थानमें नहीं होता। मुनिजनोंके इष्टवियोगसे उनके क्लेश पहुंच जाय, अनिष्ट संयोगसे उनको दुःख आये, वेदना प्रभव ध्यान भी बने, किन्तु निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता। किसी इष्ट शिष्यका वियोग हो जाय अथवा गुरुका वियोग हो जाय, उस समय ज्ञानीके भी यह आर्त-ध्यान सम्भव है। कोई अहितकारी, कुपथगामी शिष्यका सहवास मिल जाये अथवा अन्य प्रकार भी जो धर्ममें अनियत है, उसका संयोग हो जाये तो यह अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान भी मुनियोंके सम्भव है। शरीरमे रोग पीड़ा हो जाये तो उसका भी आर्तध्यान मुनिके सम्भव है, किन्तु निदान नामका आर्तध्यान यदि मुनिके हो जाये तो मुनिपद नहीं रहता है। यह निदान अत्यधिक कटु फल वाला है।

तृष्णाके असन्तोषका एक उदाहरण— एक बुढ़िया मां थी। उसके ५ बेटे थे। उनमें से एक बेटा गुजर गया तो वह बुढ़िया बहुत रोये, चारों बेटोंने समझाया, मा तू रोती क्यों है? अभी हम चार तो हैं। तेरा रोना देखकर दुःखी होकर हम चारोंमें से भी कहो कोई मर जाय। तो मा कहती है बेटा, तुम चार तो हो, पर हमारी दृष्टि तो उस एक पर ही निरन्तर बनी रहती है, हमारा दुःख नहीं मिट पाता है। वे चार बोले कि तुम क्यों इतने

कष्टमें अपना जीवन व्यतीत करती हो। तुम कुछ भी दु ख न मानो। लेकिन तृष्णामें होता ही यह है, कि जो है उस पर दृष्टि नहीं रहती, जो नहीं है और इष्ट है उस पर दृष्टि रहती है। जैसे लखपति पुरुषके एक हजारका नुक्सान हो जाय तो अभी तो ९९ हजार हैं ना, पर उसकी दृष्टि ९९ हजार के सन्तोषपर नहीं रहती, किन्तु जो एक हजार नहीं रहा, उसपर दृष्टि रहा करती है। यों उस बुढ़ियाकी दृष्टि उस बेटा पर ही रहे। कुछ दिन बाद एक और गुजर गया। तब तीन बोले—मां! तुम दु ख मत मानो। हम तीन तो हैं। बुढ़िया कहती है कि मुझे तो वे ही दो दिखते हैं जो गुजर गये हैं। उनमे से एक और गुजर गया, दो रह गये। दो ने भी समझाया पर बुढ़िया की समझमें न आया। वह सदा रोते ही रोते अपने दिन गुजारे। जिसके जो दिलमें लगा है, जिस पर दृष्टि है उसे दूसरा कौन मिटाये? आखिर एक और गुजर गया। एक बचा, तो बोला कि हम एक तो हैं। मा! इतना क्लेश न मानो, पर उसकी निगाहमें वे चार ही रहा करते थे। वह बुढ़िया उस बेटे का भी सतोप नहीं कर पाती थी। आखिर वह भी गुजरा तो अब बुढ़िया निराश्रित रह गयी। यह हालत है तृष्णामें।

तृष्णाका असतोष— तृष्णामें जो लोभी पुरुष हैं, पासमें उसका भी आराम नहीं ले पाते। उन्हें कौन समझाने आयेगा दूसरा, दु खको खुद ही वे आप मिटा सकते हैं, दूसरा मिटाने न आयेगा। देखो धनके होने अथवा न होने से सुख दु ख नहीं होता है। कल्पनामें माननेसे ये सब बातें होती हैं। जो धनके अभिलाषी जन हैं, रात दिन उसके लिए श्रम किया करते हैं वे धनको न पाकर दु खी रहा करते हैं। बतलावो इस जगत्‌में क्या से क्या नहीं हो सकता? जिसका आपके चित्तमें विचार भी नहीं है, इतनी खोटी बात भी गुजर सकती है, और देखते भी तो जाते हैं— कहीं किसी का पुत्र गुजर गया, कहीं किसी को मारपीट दिया तो पता नहीं कि क्या से क्या हो जाय? सब असहाय हैं। सब अपना मानों सब कुछ भविष्यके लिए छोड़ बैठे हैं। हमारा कुछ सहारा नहीं है। ऐसे असार जगत्‌में किसी भी परपदार्थके समागम पर सतोषकी सास लेना कहा तक उचित है? लौकिक वैभव पाकर मग्न मत हो। और न इस लोक वैभवको पाकर इससे मोह करो।

क्लेशका कारण मोह— भैया! दु ख तो समस्त मोहका है। परवस्तुके निकट होने न होनेका कोई क्लेश नहीं है। होने न होने की क्या बात है? भाग्य न होगा तो किसी तरहसे धन नष्ट हो जायगा, भाग्य होगा, तो बिना चिन्ता किए बिना सोचे ही किसी उपायसे वह सब आ जाता है।

धनके विषयमें चित्त फंसाना, कल्पनायें और विकल्प करना यह कर्तव्य नहीं है। कर्तव्य यह है कि जो मिला है उसमे ही गुजारे के लिए व्यवस्था बनावो और अपना जीवन धर्महित समझो।

मोही और निर्मोहियोंकी कृति— अपने जो पुराण पुरुष हुए हैं अकलक देव, निष्कलक देव आदिक अनेक आचार्य हुए हैं, जिनके सब कुछ वैभव था। कोई राजपुत्र थे, कोई श्रेष्ठ कुलके थे। बड़े दिग्गज विद्वान थे। उन्हें क्या क्लेश था गृहस्थीमे? किन्तु एक धर्मके लिए उन्होंने अपना तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर कर दिया। वे भी आज नहीं हैं और जो मोहीजन हैं, मोहीजन थे, जो अपने जीवनमे तन, मन, धन, वचन दूसरोंके लिए नहीं खर्च कर सके थे, वे भी आज इस दुनियामे नहीं हैं। जिन लोगों ने धर्मके लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया वे आज भी बड़ी अच्छी स्थितिमें होंगे और जो परद्रव्योंके मोहमें ही गुजरे हैं उनकी स्थिति भली न होगी।

मरणसमय सावधानीकी आवश्यकता— भैया! मरण समयमें आकुलता रहती है तो अगले भवमें भी प्रायः सारी आकुलताएँ ही बर्तेंगी। मरण समयमें यह समता आनन्द सन्तोष शान्ति रहे तो अगला भव भी प्रायः आनन्द और सन्तोषमें बीतेगा। यह अगले भवके भविष्यकी एक निशानी है। चिन्ता करो तो इस बातकी करो कि मेरा मरण न बिगड़े। भविष्यका सारा होनहार मरण समयके परिणाम पर निर्भर है। उस समय जो बन्धुजन मरणहार पुरुषकी आत्मसेवाके लिए उद्यम नहीं करते हैं, किन्तु स्वार्थवश इसका शरीर रहे इतने ही मात्रका ध्यान रखते हैं, वे बन्धु नहीं हैं। वे उस मरणहार जीवके शत्रु हैं। अरे एक दो मिनटमें ही तो जीवनके सकड़ों वर्षोंका फैसला होता है कि अगले भवमें इसका जीवन कैसा बीतेगा और वही फैसलेका समय बिगाड़ा जा रहा है। यह तो बंधुताका काम नहीं है। मरण समयमें सुखसे, संतोषसे वही पुरुष समय को गुजार सकेगा जिसने अपने जीवनभर कुछ साधना की हो। अपनी साधना वही कर सकता है जिसके दिलमें उदारता वर्त रही हो, जो समग्र समागमको भिन्न, हेय, धूलवत् मानता हो, वही पुरुष मरण समयमें अपना समता-परिणाम रख सकता है।

अज्ञानतृष्णाका क्लेश—जो अधर्मीजन हैं, तृष्णामे रत हैं, वे ही अतृप्त होकर दुःखी हुआ करते हैं। केवल धनकी ही बात नहीं है, प्रत्येक कामगें मोहियोंके यह तृष्णा परिणाम चलता है जिनके भाषाज्ञान तक भी नहीं है, वचन भी नहीं बोल सकते हैं, ऐसे पुरुष ज्ञानके बिना दुःखी रहते हैं। पढ़े लिखे लोगोंको देखकर, अपनेको हीन मानकर चित्तमें दुःख बनाये

रहते हैं और जिनको ज्ञान मिला है, पडिताई मिली है, मास्टर हुए हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष अतृप्त होकर दु'खी रहा करते हैं। जिसने जो ज्ञान पाया है उसको वही ज्ञान थोड़ा लग रहा है। जैसे ऊंट दूरसे देखकर सोचता है कि यह पर्वत तो न कुछ सी चीज है, झट लाघ जायेंगे, पर पर्वतके पास पहुचकर उसे अन्दाज होता है, ओह ! यह पर्वत तो बड़ा दुर्गम है। ऐसे ही जब हम कुछ ज्ञान पाते हैं तब हमें विदित होता है कि ज्ञान तो बहुत बड़ी चीज है। हमने तो यह कुछ भी नहीं जान पाया है। लोकमें एकसे एक बडे ज्ञान होते हैं। उनको देखकर यह दु'खी रहा करता है क्योंकि उसे तृप्ति नहीं है।

कीर्तितृष्णाका क्लेश—जगत् दुखमय है। ऐसे दु खमयी संसारमें हे जीव ! तू ऐसा मस्त होकर रमण कर रहा है कि तुझे आगे पीछे की भी कुछ सुध नहीं रही है। जो लोग कुछ सम्मान नहीं पा सके, जिनकी लोकमें इज्जत नहीं होती, वे पुरुष इस इज्जतके अभावमें दु खी होते रहते हैं। मेरा सम्मान नहीं होता है, मेरी कुछ कदर नहीं है, इस तरह दु'खी होते हैं, और जिन्हें सम्मान मिला है, इज्जत मिली है, उनका दु ख तो और भी ज्यादा है। अब जो यश मिला है उसकी रक्षा करता है। कैसे इसकी रक्षा बने, इससे भी अधिक और मेरी इज्जत कैसे बने ? इन बातोंसे ही वे दु'खी होते हैं। फिर सुखी कौन है ? जिस पुरुषके संतान नहीं है वे अपनेको नि'सतान अनुभव करके क्लेश मानते हैं, और जिनके संतान हैं उनको और प्रकारकी चिन्ताएँ हैं। व्यवस्था करना, धन बढ़ाना, मकान बढ़ाना और हो जाये कोई पुत्रका विवाह अथवा बहुएं मिल जायें, कोई अनाप-सनाप उनके क्लेश होते हैं।

विपदाका समूह व धीरता—लोग कहते हैं कि साधुवोंको २२ परिषहें सहनी पड़ती हैं, वे उन्हें समतासे सहते हैं। ठीक है, उनको तो २२ परिषहें हैं और गृहस्थोंको कितनी बतायी जायें, कुछ गिनती भी है क्या ? जरा-जरा सी बातके उनके संकट हैं और फिर भी पदवीके अनुसार उनके समता साधारण नहीं है। वे परिवारके कष्ट भोग कर भी समाजमें एक धर्मका वातावरण बनाये रहते हैं। समाजकी, मन्दिरकी अनेक सोसाइटी संस्थावों को वे उचित रीतिसे चलाया करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य त्यागी पुरुषोंकी सेवा शुश्रूषामें, अपनी धर्मसाधनामें भी समय लगाते रहते हैं। गृहस्थोंके इतनी किल्लतें होने पर भी, इतनी चिन्ताएँ होने पर भी उनका दिल कितना गम्भीर होता है ? गृहस्थधर्म भी कितने उत्कृष्ट मन वालेके होता है, यह भी एक प्रशसनीय बात है, लेकिन जिनकी मूलमें ऐसी विप-

भरी दृष्टि बन गयी है कि जो कुछ है वह धन ही है, यश ही है, धर्मका महत्व नहीं है, वे जन दुःखी ही रहा करते हैं।

कुलतृष्णाका क्लेश— कितने ही पुरुष, अपनेको हीनकुल मिला हो तो उस कुलकी हीनताका कष्ट मनमें भोगते रहते हैं। हाय ! मेरी कोई विशेष पूछ नहीं है। भले ही चाहे राज्यकानून बन जायें कि कोई किसी की अवहेलना नहीं कर सकता है, लेकिन दिलकी बातको क्या कोई मिटा देगा ? हीनकुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष अपने को हीन समझकर क्लेश माना करता है, तो जो अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ है वह अपने यश और बड़प्पन की अधिक वाञ्छा करता है, पर उसे वह कल्पित बड़प्पन मिलता है नहीं सो उसमें दुःखी रहा करता है।

शारीरिक बलकी तृष्णाका क्लेश— जिन्हें देहबल नहीं मिला है, जो शरीरसे कमजोर हैं, वे पुरुष अपनी निर्बलताको सोचकर दुःखी रहा करते हैं। जो बलिष्ठ हैं, जिनके बलकी भी थाह नहीं है वे उस बलमें भी सतोष नहीं कर पाते हैं। मुझे और बल चाहिए। रोज-रोज ५०० दंड बैठक लगाते, पसीना बहाते, व्यायाम करते, इन कामोंमें तो पसीना बहा डालेंगे, पर किसी रास्तागीर का कोई बहुत बड़ा बोझा हो और वह कहे पहलवान साहब ! इसे उठा दो तो न उठावेंगे। अरे दंड बैठकसे पसीना बहाने वाले पहलवानों ! इसमें भी तो व्यायाम होगा, तंदुरुस्ती ही तो बढ़ेगी, पर मोहमें ऐसी दृष्टि नहीं होती।

शारीरिक रूपकी तृष्णाका क्लेश— जिन्होंने बल पाया है वे अपने पाये हुए बलमें तृप्त नहीं होते, दुःखी रहा करते हैं। किन्हींको शरीर विरूप मिला है, रग रूप भद्दा मिला है तो वे अपनी इस शकल पर ही निरन्तर दुःखी रहा करते हैं और किसीको सुन्दररूप मिला हो तो सुन्दरता की बात यह है कि कितना ही कोई सुन्दर हो, पर कोई न कोई अग विरूप होता ही है। हाथ सुन्दर हो तो पैर विरूप हैं, पैर ठीक हैं तो मुख विरूप है। कोई न कोई अग विरूप हो ही जाता है। लोग कहते हैं देहमें कहीं तिल का दाना वगैरह हो तो वह शुभ है। यह तिल आदि क्या चीज है ? शरीर के अन्दर अन्य जगहकी असुन्दरताको समेटकर एक थोड़े रूपमें उस असुन्दरताका एक पिंड ठहर जाय, उसीके मायने तिल मस्सा आदि। रूपवान् पुरुष भी रूपकी तृष्णाके वश दुःखी रहा करते हैं।

साधुताका आनन्द और विश्वास— इस ससारमें कौन सुखी है ? सभी जीव अपनी-अपनी कल्पना बनाकर दुःख करते रहते हैं। सुखी हैं तो एक मुनि ही हैं। मुनि कहते उसे हैं जो कल्याणकी बातका ही भान करता

रहे। दूसरे जीवोंको मुनि जो भी वचन बोले वे हितसे भरे हुए वचन बोले। मुनि यथार्थ कल्याणके अभिलाषी, लोकके उपकारके इच्छुक होते हैं। वे भाई बन्धु रिश्तेदारोंसे भी अधिक प्रिय हुआ करते हैं। अजना जब घरसे निकाल दी गयी और उसके माता पिताने भी सहारा न दिया तो भटकती भटकती जब भयानक जगलमें पहुची, कर्मोंका उदय देखिये कितना विचित्र होता है, उसे कुछ सहारा न था। साहस इतना जरूर था कि जो होगा देखा जायेगा। जो विपदा आयेगी उसे झेलेंगे। जब तक विपदा सिर पर नहीं आती है, तब तक उसकी कल्पना रहती है कि कहीं कोई विपदा न आ जाये, तो इस कल्पनामें क्लेश रहता है और विपदा सिर पर आ जाये तो उसमें क्लेश इतना नहीं रहता है। जैसे जब थोड़ी हरारत हुई हो और वैद्य बताये कि तुम्हारे तो बहुत तेज बुखार आयेगा तो उसका नाम सुनकर घबड़ाहट आती है। बुखार चढ़ जाये तब इतनी घबड़ाहट नहीं होती है। यह तो सामने ही है। तो वह अजना असहाय जगलमें घूमती हुई जब ऐसी जगह पहुँची, जहां एक मुनिराज विराजे हुए थे। मुनिको देखकर उसके समस्त क्लेश समाप्त हो गये। मानों पिता मिल गया हो, रक्षक मिल गया हो। यद्यपि मुनि उसका कुछ कर नहीं सकता था। क्या करे, लेकिन ऐसी पवित्र मुद्रा होती है मुनिपने की कि उस मुद्राको देखकर पूर्ण विश्वास हो जाता है। उतना भाईका भी विश्वास नहीं है जितना निरपेक्ष बधु मुनिराजका होता है। ये मुनि ही वास्तवमें सुखी हैं जिनको केवल ज्ञान, ध्यान और तपस्याका ही प्रयोजन है। तात्पर्य इसका यह है कि एक शुद्ध परमात्मतत्त्वके आलम्बन बिना सर्वस्थितियोंमें क्लेश ही क्लेश है। व्यर्थ को भटकना है, इससे जीवनका उद्देश्य धर्मपालनके लिए रखिये। धन परिजनके लिए इस जीवनको मत समझिये।

पराय‌त्तात् सुखाद् दुख स्वायत्त केवल वरम्।
अन्यथा सुखिनामान कथमासस्तपस्विन ॥६६॥

पराधीन सुखकी अवहेलना— पराधीन सुखसे स्वाधीन दु:ख होना अच्छा है। यदि यह बात ठीक न होती तो फिर तपस्वीजन सुखी कैसे कहलाते? जिस सुखके अनुभव करनेके लिए अन्य जीवोंके अनुकूलताकी आधीनता है, कर्मोंके उदयके अनुकूलताकी आधीनता है वह सुख काहेका सुख है? वास्तविक सुख तो वह है जहा परकी आधीनता नहीं है। केवल आत्मासे आत्माका ही विकास हो रहा हो, वही वास्तविक सुख है।

विविक्तताके अनुभवका अन्त पुरुषार्थ—यह दुर्लभ मनुष्यजीवन पाकर आपने अन्तर ही अन्दर यथार्थ विवेक और विचार बनाकर वास्तविक

तत्त्वका दर्शन करना, और वास्तविक तत्त्वमें ही दृष्टि लगाना, इससे बढ़कर अन्य कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है। यद्यपि गृहस्थावस्थामें अनेक बातें करनी होती हैं, आरम्भपरिग्रहके कार्य हुआ करते हैं, फिर भी मूलमें अन्तरगमें यदि यह श्रद्धा बन जाये कि मेरा तो मात्र एक ही प्रोग्राम है सर्वोच्च मौलिक कि मैं शरीरसे भी रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रहू, किसी परपदार्थसे न हमारा राग सम्बन्ध रहे और न शरीरके साथ निमित्तनैमित्तिक बन्धनका सम्बन्ध रहे। मै यह आत्मा जिसमें विचार वितर्क उत्पन्न होते हैं, यह मैं केवल ही रह जाऊँ—ऐसा इसका प्रोग्राम है, लक्ष्य है, इसके लिए ही अन्तःपुरुषार्थ हो, इस बातकी श्रद्धा यदि अपने भीतर आये तो समझिये कि मेरा जन्म पाना सफल है।

पराधीन सुखकी तृष्णाकी हेयता— यह धन सम्पदा तो अनेक प्रकारसे पराधीन हैं। प्रथम तो पुण्यका उदय हो तब यह सम्पदा प्राप्त होती है। कोई मनुष्य अपने हाथ पैरसे इसे कमाता नहीं है, अथवा अपने वर्तमान परिणामोंसे इसे खींचता नहीं है। यह जो पूर्वकृत धर्म और पुण्य से कर्मबन्ध हुआ है उसके उदयका फल है, इस सम्पदाका काम सम्पदामें होता है, होने दो। वह जहा आता है आये, जहा जाता है जाये। यह मैं आत्मा तो सबसे निरात्मा केवल अपने स्वरूपमात्र सदा परिपूर्ण हू— ऐसी अपनी दृष्टि रखकर उस पराधीन सम्पदाकी उपेक्षा रक्खें तो ऐसी स्वाधीन दृष्टिमे कभी कोई क्लेश आये भी तो वह क्लेश अच्छा है, पर पराधीन सुखकी तृष्णा करना भला नहीं है।

स्पर्शनेन्द्रियजन्य सुखकी पराधीनता— सासारिक सुख ६ प्रकारसे हुआ करते हैं— स्पर्शेन्द्रियजन्य सुख, रसनेन्द्रियजन्य सुख, घ्राण-इन्द्रिय-जन्य सुख, चक्षरिन्द्रियजन्य सुख, कर्णेन्द्रियजन्य सुख और मानसिक सुख। स्पर्शेन्द्रियजन्य सुखको संसारी जनोंने सबसे प्रधान सुख माना है विषय मैथुन, काम प्रसंगोंको, लेकिन यह काम कितना पराधीन है और कितना असार है, इसकी तरह अन्य कोई सुख असार और पराधीन नहीं है। जिसे पुरुष अथवा स्त्रीका इस सुखसे सम्बन्ध है, उसके अनुकूल चित्त रहना, अपने आपकी ओर उसकी प्रेमदृष्टि रही आये— ऐसा परिणाम रहना, यह सब पराधीनता है।

परापेक्ष सुखकी पराधीनताका कारण— जगतमे सभी जीव स्वतंत्र हैं। प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, अपने सत्त्वसे परिपूर्ण है, हमारे सोचनेसे किसी परजीवमें परिणमन नहीं होता है। कदाचित् ऐसा योग मिलता है कि जैसा हम चाहें, तैसा परजीव भी चाहने लगें, और इस प्रकार परिणमने

लगें, किन्तु इस अनुकूलताका विश्वास कुछ नहीं है। आज कोई आपके अनुकूल है, आपके विषयसाधनोंमें मददगार है, उसका फल दिल नहीं रह सकता है। जगत्‌के समस्त सुख पराधीन हैं।

कामजन्य सुखकी असारता— इस कामजन्य सुखमें आरम्भमें भी आकुलता, बीचमें भी अकुलता, और इस सुखका जो परिणाम निकलेगा वह भयंकर बनेगा। वहा भी आकुलता है, और क्षण भरके सुखके लिए कितने समय तक जाल बिछाया जाता है, अपने आपके बलको हीन बनाया जाता है, आशा और तृष्णाके वश होकर अपने आत्मप्रभुका घात किया जाता है और तत्त्व कुछ भी नहीं निकलता है, केवल पछतावा रहता है। यह कामजन्य विषयभोगके सुखकी बात कही जा रही है। ब्रह्मचर्यके घातसे उत्पन्न हुआ कामजन्य सुख अत्यन्त असार है। इस पराधीन सुखसे तो स्वाधीन रहकर जो भी क्लेश और विडम्बना आयें उनको हसकर समता से झेलना यह भला है। जो गृहस्थजन इस वैषयिक सुखके लोभी होते हैं, उनकी स्थिति देखो, और साधुजन इस सुखसे अति विरक्त होते हैं उनकी स्थिति देखो। वे अलग किसी स्थानमें बर्तते हुए मनमे कितना प्रसन्न रहा करते हैं, उनको चिन्ता और शल्य कुछ नहीं है। स्वाधीनतामें ही वास्तविक आनन्द है। पराधीन सुख मिले तो वहा शान्ति कहा है?

रसनेन्द्रियजन्य सुखकी पराधीनता— सांसारिक द्वितीय सुख है रसनेन्द्रियजन्य सुख। गलेके नीचे भोजन उतर जाने पर वह मिट्टीकी ही तरह है। जिसके अग्र भाग पर जितनी देर वह स्वादिष्ट रसीली वस्तु रहती है, इतनी देरका एक काल्पनिक सुख है, और उसके पश्चात् फिर उस का स्वाद नहीं रहता है। कितनी ही स्वादिष्ट मिठाई पकवानका भोजन पेटमें पहुच जाय, उसका स्वाद फिर नहीं रहता है, बल्कि एक स्वास्थ्यके प्रकृतिके विरुद्ध पड़ता है। ऐसा विशिष्ट रसीला भोजन भी पाना एक पराधीनताकी चीज है। प्रत्येक परिस्थितिमें रहने वाले मनुष्योंमें भी रसना-इन्द्रियजन्य सुख पानेके लिए पराधीनता है। यह पराधीनता भी अनुभवमें स्पष्ट होती है। कोई गृहस्थ जब अधिक धन कमाये, विषयोंका साधन जोडे, कितनी ही प्रकारकी वस्तुवोंका सचय करे और फिर घरमें बनाने वाला भी उस तरहका विषयाभिलाषी हो, रुचिपूर्वक रसीला भोजन बनावे और फिर खाते समय भी कोई अन्तराय न आ जाय, कोई विघ्न डालने वाला न हो, कितनी ही बातोंसे बचकर और साधन सचयके श्रमसे थक कर वह रसनेन्द्रियजन्य सुख भोगा जाता है। कदाचित् किसीको श्रम किये बिना रसनेन्द्रियजन्य सुख मिल जाये तो भी उसमें अनेक

पराधीनताएँ हैं। तृष्णावोंका दास बनकर ही उनको कोई भोग पाता है।

संतोंके पारमार्थिक स्वाधीनताकी रुचि— मुनि इन भोगोंको, भोजनको, रसास्वादनको असार जानकर, अपना स्वरूप न समझकर केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूपके अवलोकनसे उत्पन्न हुए आनन्दसे तृप्त रहा करते हैं और इस आत्मानुभवकी स्थितिकी साधना बनाते हुएमें अनेक कष्ट भी आते हों तो मुनि उन कष्टोंमें प्रसन्न रहते है, पर सुखकी अभिलाषा करके जो पराधीनता आशा प्रतीक्षाका जो कष्ट होता है उसे पसद नहीं करते हैं। हम आप मदिरमे आकर वीतराग सर्वज्ञ प्रभुकी मूर्तिके समक्ष परमात्मतत्त्वके दर्शन करना चाहते हैं, वह परमात्मतत्त्व और है ही क्या ? यही तो है कि वह ज्ञानानन्द पिंड इन समस्त पराधीनतावोंसे रहित अपनी स्वतंत्रताके विलासमें रम रहा है। बस यही तो प्रभु है। जब तक ऐसी प्रभुताकी प्राप्ति की मनमें वाञ्छा न जगे, उत्सुकता न बने तब तक हमने प्रभुका क्या दर्शन किया ? कोई श्रम करके उसका लाभ न मिले तो वह श्रम व्यर्थ है। ऐसे ही दर्शन वन्दन पूजनका श्रम करके हमको भी एक झलक न मिले, जिस झलक में हमारे यह उत्साह जगे कि मैं इस शरीर और रागादिक विकल्पोंसे रहित होकर केवलज्ञान ज्ञानरूप अनुभव करूँ, ऐसी दृष्टि जगे बिना हम लोगोंके सब परिश्रम बेकार हैं।

विनश्वर भोगोंकी वाञ्छाकी हैं व्यर्थता— इस लोकमें बड़े-बड़े सम्राट्, चक्री, धनी, सेठ कोई भी नहीं रहे हैं। इस मुफ्ती समागमको पाकर जिसमें मेरे आत्माका कोई गुण नहीं लगा है—ऐसा जो कुछ भी वैभव मिला है वह सब मुफ्तका ही तो समागम है, मेरा इसमें क्या लगा हुआ है ? उसका सदुपयोग उससे विरक्ति और अपने ज्ञानकी ओर झुकाव जो नहीं कर पाये हैं, उन पुरुषोंका मरण सक्लेशपूर्ण हुआ है और ऐसा ही निर्णय आजकल के लिये हैं, सदाके लिए भी है। पराधीन सुखसे स्ववश कष्ट भोग लेना अच्छा है।

गन्धभोगकी संतोंके अनाकांक्षा— तीसरा सुख है घ्राणेन्द्रियजन्य। एक अपने मनमें स्वच्छन्दताका बढ़ाना ही तो है। फूल इत्र सुगंधित सूँघ कर मनको प्रसन्न करना, यह कोई अच्छी चीज नही है। केवल एक अपनी सुख समृद्धिमें रहकर एक मनका बहलावा है। इसमें भी आखिर धन व्यय करना होता है, साधन जुटाने होते हैं। उसके लायक बहुतसे शौक शान बढ़ा लिये, ममत्व बढ़ा लिया, अन्य-अन्य विषयोंके साधन जुटा लिये, तो इससे इस आत्माको लाभ क्या है ? ये भी पराधीन सुख हैं। स्वय ही जो होता हो, हो। यह प्राकृतिक हवा, यह प्राकृतिक गध है। इसमे भी सनजन

दृष्टि नहीं लगाते हैं। वे तो केवल एक स्वाधीन आत्मानुभवके आनन्दका भोग किया करते हैं। पराधीन सुखसे स्वाधीन क्लेश भी उत्तम होता है और इसी कारण साधुजन सुखी रहा करते हैं। उनका उपयोग केवल आत्मा में ही लगा रहता है। वे किसी से प्रीतिकी भीख नहीं मागते हैं। जो किसी परजीवसे प्रीतिकी भीख मागते हैं वे कष्टमे रहते हैं। फल उसका मिलता कुछ नहीं है। अपना जीवन यो ही गँवा देते हैं।

व्यर्थ रूपव्यामोह— इन सुखोंमें एक विडम्बना वाला सुख है रूपका अवलोकन करना। रूप क्या चीज है ? वह न हाथसे पकड़में आता है, न उस रूपमें किसी प्रकारका स्वाद है, न रूपमें कोई गधका आनन्द है। न आत्मासे राग रागनियां फूटती हैं, केवल एक आखोंसे सुहावना रूप देखनेकी कल्पना बना डाली गयी है और उसके वश होकर यह जीव इतना परतत्र हो जाता है कि जो वडे-वडे सुभट दिग्गज हस्ती और सिंहोंके मदको विदारण करनेमें समर्थ हैं, वे भी असार न कुछ चीजके वशमें होकर अपना बल पौरुष खो देते हैं और कायर होकर प्रीतिकी भिक्षा मागने लगते हैं।

रसना व नेत्रके ढक्कनोंसे विजयसुविधा— भैया ! इन आखों पर ये दो पलक मिले हैं, इन ढकनोंका उपयोग यही है कि इन व्यर्थकी चीजों को आखोंसे देखने का काम न करें। आंखोंको वन्द रखनेको ये ढक्कन मिले हैं। जिह्वाको भी दो ढक्कन मिले हैं। स्पर्शनमें ढक्कन नहीं है। केवल दो इन्द्रियोंमें ढक्कन लगे हैं—रसनामे और नेत्रोंमें। मनुष्य आरम्भ से इन्हीं दो इन्द्रियोके वश होकर दु ख भोगता है। सो दोनों इन्द्रियोंके लिए ढक्कन मिले हुए हैं। ये ओठ मिले हैं, इन ओंठोंको वंद रक्खें और नेत्रोंके पलक वद रक्खें। इन इन्द्रियोंके वद करते ही कितनी ही और विशेषताएँ स्वभावत आने लगती हैं। ये पराधीन सुख क्लेशसे भरे हुए हैं। इनसे तो स्वाधीन क्लेश होना ही अच्छा है। साधुजन अपने तृतीय ज्ञान लोचनसे इस प्रभुताके विशाल स्वरूपको निहारते रहते हैं, वे स्वके रूपका दर्शन करते हैं। अभिलाषी पुरुष परके रूपका दर्शन करते हैं। परके रूपके दर्शनमें पराधीनता है। स्वके रूपके दर्शन करनेमें स्वाधीनता है।

विकल्पोंकी थकान मेटनेका उपाय— जैसे सासारिक काम करते-करते कोई थक जाता है तो लेटकर, सोकर, आराम और विश्राम करके अपनी उस थकानको मिटाता है और फिर आगे श्रम कर सकने योग्य पुन तैयारी करता है। यों ही समझ लीजिए कि इन विषयोंके सुखको भोगकर आशा करके, कल्पना करके जो निरन्तर दुःखी रहते हैं उस दु खको मिटानेके लिए एक बार भ ' तो समस्त विकल्पोंको त्यागकर एक आत्माके शुद्धस्वरूपमें

दृष्टि करें। उस दृष्टिमें ऐसा बल मिलेगा कि तत्क लभी आनन्द होगा और भविष्यमें भी आनन्द वर्तेगा। लौकिक सुखको भोगनेका उचित योग होगा। अतः इन विषयोंसे विराम लेना ही उत्तम है।

शब्दादिक भोगोंकी पराधीनता— ५ वां सांसारिक सुख है कर्णेन्द्रिय-जन्य सुख। सुरीले शब्दोंको सुनकर एक मनको प्रसन्न कर लिया जाता है। किसी से रागभरी बात सुननेको मिली और मन यह समझ जाय कि इसका मेरे प्रति प्रेम है। अरे इतनी सी समझके पीछे यह दीवाना बन जाता है। निरन्तर उसही भिन्न पदार्थको अपने उपयोगमे बसानेकी तैयारी करता है, इतनी मूढ़ता है इस व्यामोही जीवकी। यह पराधीन सुख ससार मे रुलाने वाला है, तत्काल भी क्लेश देने वाला है। यह प्रभुका शासन पाया है, इसका उपयोग करले। इतना विशाल ज्ञान पाया है तो वस्तुकी स्वतन्त्रता का उपयोग कर करके इस ज्ञानशक्तिको सफल करें अन्यथा मरणके बाद कीड़े मकौड़े बन गये, पेड़ पौधे बन गए तो अब वहा क्या कर लिया जायगा? मिला है श्रेष्ठ समागम तो स्वच्छन्द नही बनना चाहिए। इसका इस आत्महितके लिए उपयोग करें, ऐसी दृष्टि हो।

मानसिक सुखकी पराधीनता— छठा सुख है बड़ा वेढब, अनियत मनका सुख। इस लोकमे सर्वत्र मेरी कीर्ति फैले, सब लोग मेरा नाम लेकर यश गायें कि ये बडे अच्छे हैं। अरे इस दुनियाके मलिन मूढ़ पुरुषोंने इतने शब्द कह दिये कि यह बडे अच्छे हैं तो भला इतने शब्द सुननेसे इस आत्माका कौनसा हित हो गया? वे सब भी मायामय हैं, तुम भी मायामय हो। इस मायामय झमेलेमे सार और हित कहा रक्खा है? अपने आपको अपने वश करें।

आत्मज्ञान विना व्यवहारधर्ममें भी पराधीनता— जो पुरुष धर्मकी भी धुन रखते हैं, वहा भी परखिये अनेक प्रकारकी पराधीनताएँ हैं। उन आधीनतावोंमें कभी-कभी मन व्यग्र हो जाता है। जैसे कोई पर्वके दिन आते हैं दशलाक्षणी आदिके तो पूजा करनेको बड़ा ताता और विस्तार लग जाता है। उन दिनोका कोलाहल तो देखो, कई-कई बार प्रसग-प्रसगमें क्रोध आता रहता है। अभी तुमने यह नही किया, हम यहा खडे होंगे, तुम यहा क्यों खडे हो, अभी तक पुजारी नही आया, अभी द्रव्य नहीं धोये, अभी प्रक्षाल नहीं हुआ, कितनी ही प्रकारकी आधीनताएँ आती हैं। यह जीव इन आधी-नतावों से कषाय करता रहता है। अरे उन सब प्रसगोंमें करनेका काम तो इतना था कि कषायरहित ज्ञानस्वरूप अपने आत्माका अनुभव करत। उन सब धर्मोंमें, उन सब परिश्रमोंमें मूलभूत प्रयोजन इतना मात्र है कि मैं अपने

आपको निष्कषाय ज्ञानमात्र अनुभव करलूँ। जो इतने तप व्रत आदिक किए जाते हैं वहा भी ऐसा घटा लेना कि कल्पनासे माना हुआ धर्मप्रसंग का भी व्यवहार सुख पराधीन है। और एक निज शुद्ध ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करके पाया जाने वाला यह आनन्द स्वाधीन है। ऐसे रहते हुए यदि कोई कष्ट आये तो वह कष्ट भी भला है।

वस्तुमें परकी अनाधीनताका स्वरूप— यद्यपि वस्तुका स्वरूप सर्व स्वाधीन है, पराधीनता तो कहीं है ही नहीं। जो मोही मूर्ख पराधीन बन रहे हैं, वे भी अपने आपमें उस प्रकारके विचारका परिणमन बनाकर स्वाधीनतासे ही पराधीन बन रहे हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको अपने आधीन नहीं कर पाता, क्योंकि समस्त वस्तु स्वतंत्र हैं। हाथमें हाथ है, जीवमें जीव है, परिजनमें परिजन हैं, वैभवमें वैभव है। किसी भी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके स्वरूपमें प्रवेश नहीं है। फिर भी यह जीव अज्ञानवश परसे प्रीतिकी भीख मागता है। मुझे ये कितना चाहते हैं, ये कम चाहते हैं इसका ही क्लेश है। किसीने कह दिया कि यह बहुत अच्छा है तो उसकी खुशी माननेका क्लेश। यह जीव विषयभोगोंके प्रसगमें निरन्तर दु:खी ही रहा करता है। इस पराधीन सुखकी आशाको तजकर जिस पथसे प्रभु परमात्मा हुए हैं उस स्वाधीनपथमें आस्था बनायें। स्वाधीनपथमें आस्था बनाने से ही शान्तिका मार्ग मिलेगा।

> यदेतत् स्वच्छन्द विहरणमकार्पण्यमशनम्,
> सहार्यैं संवास. श्रुतमुपशमैकश्रमफलम्।
> मनो मन्दस्पन्द वहिरपि चिरायातिविमृशन्,
> न जाने कस्येयं परिणतिरुदारस्य तपस ॥६७॥

साधुस्थिति— धर्म दो प्रकारके पात्र पालन करते हैं— एक गृहस्थ और दूसरा साधु। गृहस्थ उसे कहते हैं जो साधुधर्मका उपासक हो। सद्गृहस्थ वही है जिसके चित्तमें साधुकी स्थिति पानेकी अन्तरङ्गमें अभिलाषा रहती हो, क्योंकि गृहस्थ यथार्थज्ञानी है तो उसे अपने इस कीचड़ वाली परिस्थितिमें सतोष नहीं होता। भले ही कुटुम्बमें पुत्र मित्र सभी लोग हैं। स्त्री, भाई, परिवार सम्पन्न होकर भी उसे परिवारमें सन्तोष नहीं होता, क्योंकि उसने आत्माके यथार्थज्ञानको प्राप्त कर लिया है। वह इन सब समागमोंको भिन्न और असार समझ रहा है। जब सद्गृहस्थको पाये हुए परिवार और वैभवमें रमण करनेका भाव नहीं रहा है तब उसका आत्मा साधुस्थितिकी ओर जाता है। साधुकी स्थिति ही वास्तवमें प्रशसनीय है। गृहस्थ चिन्तन कर रहा है कि यह मेरा समागम सुखदायी नहीं है। कोई

जीव किसी गतिसे आया, कोई किसी गतिसे आया, आज एक झोंपड़ीमें इकट्ठे हो गए हैं, ये कुछ मेरे हैं क्या? अपना समय पाकर सब बिछुड़ेंगे और अपने-अपने कर्मानुसार जुदी-जुदी गतियोंको चले जायेंगे—ऐसी चिन्तनामें समाया हुआ है सद्गृहस्थ।

गृहस्थीमें गजस्नानवत् धर्मक्रियायें—भैया! गृहस्थीमें काहेका आनन्द है? कदाचित् कोई धर्मके नामपर कुछ धार्मिक कार्य भी करके, पूजन किया, वंदन किया, कोई धार्मिक कार्य भी कर लिया, कितने ही धार्मिक समारोह किये, पर ये सब कुछ करनेके बाद भी काम तो वे ही करेंगे आरम्भ और परिग्रहके और जैसा चला रहे ये व्यवहार, उस तरहके कार्य करेंगे। जैसे हाथी सरोवरमें स्नान कर लेता है, स्नान करके जब बाहर निकलता है तो सूंड़में धूल भरकर अपने शरीरपर डाल लेता है। इस तरह की स्थिति इस गृहस्थावस्थामें है। कदाचित् पर्वोंके दिनोंमें धार्मिक दिवसोंमें कुछ परिणामोंमें निर्मलता बनायी गयी तो कुछ ही समय बाद फिर वही का वही ढंग आ जाता है, ऐसी परख है इस गृहस्थको, इस कारण वह गृहस्थीमें रमण नहीं करता है। उसके चित्तमें साधुकी स्थिति होती है।

साधुका स्वाधीन विहार—धन्य है उस तपस्वीकी परिणति जिसका स्वच्छन्द तो विहरण है। जब तक मन आये तब तक रहे, न मन आये तो वहांसे चल दिया। इस प्रकार स्वच्छन्द तो विहरण है उसका। जबकि गृहस्थावस्थामें बन्धन है। कैसे विहार करें? जाये भी कहीं १००-१५० हजार मील बाहर विदेशमें तो भी उपयोगका, ममताका नाता, ममताकी प्रीति बराबर लगी हुई है। घरमें आखिर यहां वहां आकर भी अन्तमें उस घरमें आना ही पड़ता है। कैसे विहार हो स्वच्छन्द? गृहस्थका चिन्तन चल रहा है। धन्य है उस साधुकी वृत्ति, जिसका पक्षीकी तरह विहार है। चिड़िया कहीं किलोल कर रही है, मन आया तुरन्त उड़ गयी। कहींकी कहीं चली गयी। यों ही इन साधुजनोंका विहार होता है, आज यहां है कल कहीं चला गया। पर गृहस्थका स्वच्छन्द विहरण नहीं हो सकता। भाई भाईमें या बाप बेटामें लड़ाई हो जाये और उस लड़ाईमें ही ऐसी धौंस जमाये कि हम तो अब भगे जाते हैं, इस घरमें न रहेंगे, तो लोग कहते हैं कि आप जा अच्छा—देखो कहा जाता है? सब समझते हैं कि जब चित्तमें ममताकी फांस लगी हुई है तो भागेगा कहां? सब जानते हैं, पर साधु तपस्वीकी परिणतिमें स्वतन्त्रता समा रही है।

उपासकके साधुताकी रुचि—यद्यपि यह गृहस्थ अभी उस परिणति को नहीं प्राप्त कर पा रहा, किन्तु जिस शुद्ध परिणतिकी रुचि मुनिके होती

है, स्वाद उसका कुछ इसे आता ही है। चित्तमें मुनिराजकी परिणति यदि समायी हुई है तो उसे विशेष आनन्द आता है केवल एक साधुताके चिन्तनमें ही। कोई अमीर है तो वह आधा सेर मिठाई खरीदकर खाता है और कोई गरीब है तो वह उसी दुकानसे वही मिठाई एक छटाक खरीदकर खाता है, तो उस गरीबको स्वाद तो वही आया है जो उस अमीरको आया है। एक सम्यग्दृष्टि गृहस्थ जो कुछ परिस्थितियोंके बन्धनमें है, लेकिन यथार्थज्ञानका भान है, किस मार्गमें चलना चाहिए था, हमें अपना उपयोग कैसा बनाना चाहिए था—ऐसा उसे यथार्थज्ञान है। इतनेमें ही उसे उस शांति का स्वाद आ जाता है जो साधु महाराजको उस परिणतिमें चलने पर विशेष स्वाद आता है। ऐसे साधुताके स्वरूपका हमें लक्ष्य बनाये रखना चाहिए।

दृष्टिके अनुसार स्वाद— बादशाहने बीरबलसे कहा भरी सभामें, बीरबल! मुझे आज ऐसा स्वप्न आया कि हम तुम दोनों घूमने जा रहे थे, तो रास्तेमें २ गड्ढे मिले। एक था शक्करका गड्ढा और एक था गोबर का। तो हम तो गिर गए शक्करके गड्ढेमें और तुम गिर गये गोबर विष्टा के गड्ढे में। तो बीरबलने कहा— हुजूर हमने भी आज ऐसा ही स्वप्न देखा, आप तो गिर गए शक्करके गड्ढेमें और हम गिर गए गोबर विष्टाके गड्ढेमें, पर इससे आगे थोड़ा और देखा कि हम आपको चाट रहे थे और आप हमें चाट रहे थे। अब बतावो बीरबलने क्या चाटा? शक्कर और बादशाहको क्या चटाया? गोबर विष्टा। ऐसे ही गृहस्थ आज फसा हुआ है, लेकिन यदि उसकी दृष्टि साधुताकी ओर है, मोक्षमार्गके लिए है, अपने आपके आकिञ्चन्यस्वरूपकी समृद्धिकी ओर है तो स्वाद तो उसे अनाकुलताका आ रहा है।

साधुका अकार्पण्य अशन— कैसी साधुजनोंकी परिस्थिति है कि स्वच्छ तो जिनका विहरण है और तृष्णा बिना जिनका भोजन है। साधुजनोंको अपने बारेमें भी न पहिले विचार रहता, न बादमें विचार रहता। मुझे क्या खाना है, मैंने क्या खाया है? जो भोजन बनाकर खाते हैं, बनवाकर खाते हैं, उन्हें तो इसका विकल्प होता ही है, अमुक चीज नहीं बनाया, यों नहीं बनाया। थालीमें परोसवा कर खाते हैं, और जहा थालीमें ५–७ चीजे रक्खी हैं, तो उन्हें भोगते हुएमें कौनसी चीज मीठी है, जो बहुत सरस चीज है उसे खायें अथवा पहिले साधारण भोजन कर लें, फिर मीठा खायेंगे, और पहिले मीठा खा लिया, न बचेगा तो फिर और मिलेगा खानेको। कितनी तरहकी कल्पनाएँ उठायी जा सकती हैं, किन्तु जिसके

एक ग्रास ही भोजन हाथमें आया है वह क्या कल्पनाएँ करेगा ? उसका भोजन तृष्णारहित होता है। कृपणता कहते हैं अपनानेको। खर्च न करनेका नाम कृपणता नहीं है, किन्तु अपनानेका नाम कृपणता है। धनको अपनानेसे यह परिणाम निकलता है कि धन खर्च नहीं किया जा सकता। इसलिए धनके खर्च न करनेका नाम कृपणता पड़ गया है। धनके खर्च न करनेका नाम कृपणता नहीं है, परद्रव्यको अपनानेका नाम कृपणता है। जो भोजनको अपनाते नहीं हैं, रुचिमें लेते नहीं हैं, वहा कृपणता काहेकी ?

साधुवोंकी साधुसगतिकी रुचि— साधु महाराजको विरक्त ही विरक्त पुरुष रुचते हैं, मोहीजनोंको मोही ही रुचते हैं, व्यसनियोंको व्यसनी ही रुचते हैं। अज्ञानियोंको अज्ञानी ही रुचते हैं, ऐसे ही धर्मात्माजनोंका चित्त साधुजनोंके सहवासमे टिकता है। गृहस्थजन पूजा करके शान्तिपाठमे एक प्रार्थना बोलते हैं, जिसमे ७ चीजें वह गृहस्थ चाहता है— शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति सगति सर्वदार्यैः सद्वृत्ताना गुणगणकथादोपवादे च मौनम्। सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे, सम्पद्यन्ता मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग। इसमें श्रेष्ठ पुरुषोंकी सगति सदा करनेका भाव दिखाया है।

उपासककी प्रथम तीन माग— नाथ ! जब तक मेरा मोक्ष नहीं होता तब तक भव भवमें मुझे ये सातों चीजे मिले। पहिले तो शास्त्राभ्यास शास्त्रोंका अभ्यास बना रहना। दूसरी चीज जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंकी भक्ति बनी रहना। मेरे हृदयमे जिनेन्द्रदेवका, वीतराग सर्वज्ञदेवका, शुद्ध विकास बसा रहे। यदि शुद्धका उपयोग होगा तो कोई हैरान न कर सकेगा। इस जीव पर देखो कितनी विपदा है ? ये मोही जीव लौकिक विपदावोंके हटानेका तो प्रयत्न करते हैं, पर अपने आपमे समायी हुई विषयपरिणति वासनाकी विपदाको दूर करनेका चिन्तन भी नहीं करते हैं। नाथ ! निर्विकार, निष्कलक, निर्दोष, शुद्ध परमात्मदेव मेरे चित्तमें बसो। भगवान्मे प्रेम परिजनोंके प्रेमसे कई गुणा होना चाहिए, तब वह सद्गृहस्थ है। ये बाहरी प्रसग तो बड़े यत्न करने पर भी मुश्किलसे उत्पन्न होते हैं। इनमें रमनेका तो कर्तव्य है ही नहीं। प्रभु मेरेमें तुम्हारे चरणकी उपासना बनी रहे। तीसरी बात चाहते हैं सदा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सगति रहे। पहिले समयमें व्यापारी लोग अपनी सीमा रखते हो— हमारे इतना बिक जाये तो दुकान बन्द करके मन्दिरमे बैठेंगे, ऐसी कई लोगोंकी भावना रहती थी। तो मदिरमे गोष्ठी दोपहरसे ही लगना शुरू हो जाती थी, धर्मचर्चा स्वाध्याय होता था। तुम्हारे रात दिनमे एक दो घटेका समय सज्जन पुरुषोंकी सगतिमे व्यतीत होवे, ऐसी लगन होनी चाहिए।

उपासककी शेष चार भाग— गृहस्थ पूजा करके अन्तमें चौथी बात चाहता है, गुणियोंके गुणोंका हम गान करते हैं। लोक ईर्ष्यासे, अभिमान से गुणियोंके गुण भी नहीं गा सकते। जिन्हें गुणोंसे प्रेम होता है उन्हें पर्यायमें अहकार नहीं होता है। वे गुणोंके प्रेमसे गुण गाया करते हैं। प्रभु मुझमें ऐसा भाव जगे कि मैं गुणी पुरुषोंके गुण गाता रहूं। उनके गुण गानेमें हिचक न हो। ५वीं बात— हम चाहते हैं किसी के दोषोंको मुखसे न बोलें। ६वीं बात— हम चाहते हैं कि मैं सबसे प्यारे हितकारी वचन बोलूँ और अंतिम भावना है मेरी कि शुद्ध अतस्तत्त्वकी भावना हो। निरन्तर यह प्रतीति रहे कि मैं ज्ञानानन्दरूपी हू, ऐसी आत्मतत्त्वकी भावना रहे। इस तरहकी परिणति साधुजनोंके अधिकाधिक होती है।

साधुवोंका शान्तिप्रद श्रुत— और भी साधुवोंकी वृत्ति निरखिये, उनका ज्ञान, उनका श्रुत एक शान्ति सतोषके फलको देने वाला है, जब कि छोटे लोग कुछ थोड़ा ज्ञान पाकर विवाद और अशान्ति फैलाया करते हैं। किन्तु साधुजनो का जितना ज्ञान बढ़ता जाता हैं उतनी ही शान्ति बढ़ती जाती है। विद्या उनकी विवादके लिए नहीं है। उनका मन मद स्पद वाला है, चचल नहीं है, गम्भीर है। जरा-जरा सी घटनावोंमें क्षोभका उबाल नहीं आता है। वे दूसरेके अपराधको क्षमा कर देते हैं। जीवोंके हितके लिए उनके मनमें स्थान हैं। किसीके अहित के लिए उनके मनमें स्थान नहीं है। साधुजन बहुत बड़े समय तक विचारमें बने रहते हैं।

गृहस्थोंका आदेय अन्त साहस— गृहस्थजनोंको इतना तो साहस रखना चाहिए कि जब घरमें चार छ पुरुष हैं तो सब प्राणियोंके साथ भाग्य लगा है। चिन्ता न करिये। लड़कोंका क्या होगा, लड़कियोंका क्या होगा? अरे सबके साथ भाग्य लगा हुआ है। ज्ञानीजन कभी चित्तमें ग्लानि भी नहीं करते। मेरी क्या स्थिति है, क्या होगा? ऐसी चिता न कीजिए। सबके साथ भाग्य लगा है। उदयानुसार सब कुछ प्राप्त होता है। सब चिन्ताएँ छोडो, अपना जीवन तो धर्मके लिए ही मानों, विषयोंके लिए नहीं, दुनियामें बड़प्पन चाहने के लिए नहीं। किन्तु अपने आपके उस शुद्धस्वरूप को निहारकर अपनेमें प्रसन्न रहू, और इस धर्मका फल जो उत्कृष्ट शान्ति है उसे भोगता रहू, इसके ही लिए जीवन है— ऐसा जानना।

साधुवोंका अनुपम विशुद्ध परिणमन— ऐसी विशुद्ध परिणति अहो! न जाने किस उदार तपस्वीकी होती है? उस ही तपस्वी पर यह उपासक गृहस्थ झुक रहा है, तभी तो अपनी वर्तमान स्थितिपर उसे विषाद है कि यह परिग्रहका बोझ कब तक लादा जायगा। दूसरे जीवोंका चिताका

भार इस उपयोग पर कब तक बना रहेगा ? तो इन सब भारोंसे हटकर विशुद्ध आत्मीय आनन्दको चाहते रहते हैं। यों साधुजन सदा सुखी नजर आते है। इस प्रसगमे उनकी परिणतिका दिग्दर्शन किया गया है। अब आगे मुनियोंकी और भी प्रशंसनीय परिणतिया कैसी होती हैं, इस सम्बन्धमे कहा जायगा।

विरतिरतुला शास्त्रे चिन्ता तथा करुणा परा,
मतिरपि सदैकान्तध्वान्तप्रपञ्चविभेदिनी।
अनशनतपश्चर्या चान्ते यथोक्तविधानतो,
भवति महतां नाल्पस्येद फल तपसो विधे ॥६८॥

साधुवोंकी अनुपम विरक्ति— साधुजनोंकी इसमें महिमा बतायी गयी है। ज्ञानी सतोंके अनुपम विरक्ति रहती है। जो बात जैसी है तैसी ज्ञानमे बनी रहे तो वैराग्य जगता ही है, क्योकि जगत्का कोई भी पदार्थ राग करने लायक नही है। जिसको शान्तिमय रहना हो, वह खूब निर्णय करके देख ले कि बाह्यमे कौनसा पदार्थ ऐसा है जिसमे राग करके हम शान्ति प्राप्त कर सकें। परिवार, वैभव, यश, इज्जत कुछ भी तो ऐसा नहीं है जिसके राग करनेसे आत्माको लाभ हो। यथार्थज्ञानके बलसे सब परपदार्थोंसे उपेक्षा रक्खे रहना और निज ज्ञानस्वरूपकी ओर झुकना, ऐसे वैराग्यकी प्रवर्तनामें अतुल आनन्द आता है। रागकी पराधीनता मे कष्ट विपदा, विडम्बना सभी ऐब तो रक्खे हैं। वह गृहस्थ भी धन्य है जो राग छोड़ते नहीं बनता, तब भी हृदयमें ऐसा विश्वास तो जमाये है कि यह चीज राग करने योग्य नहीं है। इतनेसे प्रकाशके कारण गृहस्थजनोंको शान्ति बनी रहती है। साधुवोंके तो अनुपम ही विरक्ति है।

विरक्तिमे सम्मान अपमानकी उपेक्षा— एक 'वैराग्य प्रकाश' पुस्तकमें कथा लिखी है कि गुरु शिष्य थे। वे किसी छोटी पहाड़ी पर ठहर गये। गुरुने देखा कि राजा साहब हाथी पर सवार होकर और सैकड़ो हजारों नर-नारियोंके साथ दर्शन करने आ रहे हैं। गुरुको थोड़ी यह चिन्ता हुई कि यदि इस राजाका दिल मेरे प्रति भक्तिभावसे भर गया तो मेरे पास बहुत भीड़ आयेगी और मेरा ध्यान तप सब खत्म हो जायगा। इससे ऐसा उपाय कर कि राजाको यह जंचे कि यह साधु नहीं है, गुरु नहीं है। यह तो कोई तुच्छ आदमी है। गुरुने शिष्यसे कहा— देखो बेटा ! वह राजा आ रहा है। राजा निकट आये तो यह चर्चा छेड़ देना कि हमने आज कम खाया तुमने ज्यादा खाया आदि। जब राजा आया तो वे दोनों गुरु शिष्य आपस में झगड़ने लगे। गुरुने कहा— हमने तो आज दो ही रोटी खायी। तमने

ज्यादा रोटी क्यों खाई ? शिष्य बोला कि हमने आज १० रोटी खायी हैं, तुमने भी तो कल १० रोटी खायी थीं। जब इस प्रकारकी बातें आपसमें हो रही थीं तो राजा आया और सुनकर लौट गया। सोचा कि ये तो कोई छोटे लोग हैं जो आपसमें खाने पीनेके लिए झगड रहे हैं। तो देखो उसने अपना अपयश फैलवा कर भी अपनी ज्ञानरुचिकी रक्षा की। इसे आप वैराग्य न कहोगे क्या ? हालाकि इसको भला नहीं कहा जायगा कि कोई साधु ऐसी घटना बनाए अपनी रक्षाके लिए। ऐसा ज्ञानी संत नहीं करते, पर हम यह प्रकाश डालना चाह रहे हैं कि यों न सही, किसी भी प्रकार साधुका अपमान और अपयश हो, उससे वे घबडाते नहीं हैं, किन्तु वे अपनी आन्तरिक निर्मलतामें प्रसन्न रहा करते हैं। इतना अतुल वैराग्य होता है।

साधुओंका शास्त्रमनन व करुणाभाव— साधुजनोंकी महिमा बतायी जा रही है कि उनको शास्त्रका चिन्तन बहुत अधिक होता है। उन्हें और करना क्या है, सिवाय धर्मशास्त्रज्ञानकी चर्चा करना और चिन्तनके अतिरिक्त उनका कोई प्रोग्राम ही नहीं है। उन्हें कुछ अन्य रुचता भी नहीं है, अपने मुनि ऋषियोंके अनुभवों को बडे प्रेमसे वे बाचते हैं। जैसे किसी कामी पुरुषको कामभरा उपन्यास मिल जाय तो उसको ऐसी रुचिसे वह बाचता है कि उसे खाने पीनेकी भी सुध नहीं रहती, ऐसे ही साधुजनोंको उस शुद्ध ज्ञानानुभवसे प्रेम है जिस ज्ञानानुभवकी बात ऋषीजनोंके ग्रन्थमें लिखी हुई है। वे उसका अध्ययन करके अपनेको तुष्ट रखते हैं। खाने पीने को वे कुछ महत्त्व नहीं देते। साधुजनोंके उत्कृष्ट दया होती है। ये संसारी जन जरासी भूलके कारण इतना घोर संसारका दुःख भोग रहे हैं। इन्हें अपने स्वरूपका परिचय नहीं हुआ है। ऐसी भावनासे वे साधुजन उपदेश देनेका प्रयत्न करते हैं, इससे बढ़कर लोकमें और कुछ महान् उपकार नहीं हो सकता है। कोई भूखा है, गरीब है, उसे भोजनका साधन जुटा देना यह भी दया है। किन्तु यह दया उसका सदाका संकट नहीं मेट सकती। थोडे समयके लिए कुछ मौज आ गई, उस मौजमें भी क्लेश भरा है। वह कितने दिन मौज रहेगी ? जब तक जन्म-मरणकी परम्परा संसारी जीवके लगी हुई है तब तक किसको सुखी कहा जाय ?

सम्यग्ज्ञान बिना शान्तिका अनुपाय— धन वैभव बहुत हो गया, यह भी कोई सुख नहीं है, क्योंकि इसका विश्वास भी नहीं है कि कल क्या होगा और इसके पीछे मेरा क्या हाल होगा ? और जब तक है तब तक भी परदृष्टिका आशय होनेसे इसे बेचैनी ही रहती है। कल्पनाजाल बना रहता है। सांसारिक शरीरसम्बन्धी विषयोंके द्वारा दुःख मिटा देनेको भी दया कहते

हैं, पर सबसे उत्कृष्ट दया साधुवोंके होती है। यद्यपि साधुजनोंके पास ऐसे साधन नहीं हैं कि कोई भूखा हो तो उसे खिला दें। कोई गरीब है तो उसे कुछ दे दें। वे स्वयं अकिञ्चन् हैं, शरीरमात्र ही उनके परिग्रह रह गया है। फिर भी वे उत्कृष्ट करुणाकी मूर्ति कहलाते हैं। ये ससारीजन यदि अपने ज्ञानानन्दघन स्वरूपका परिचय पा जाये तो ये तो ससारके संकटोंको अनन्तकालके लिए दूर कर देंगे। केवल आत्मा ही आत्मा रहे, शरीरादिक का सम्बन्ध न रहे, यह आत्माके उत्कृष्ट आनन्दकी स्थिति है। इस स्थितिके लिए चिंतन किया करते हैं साधु।

साधुवोंके सर्वहितकारी करुणा— ज्ञानी संत जन उत्कृष्ट करुणावान् हैं। वे किसी भी जीवका अहित नहीं विचारते। यहा तक कि यद्यपि अभव्य जीव ससारसे पार नहीं हो सकते, लेकिन वे जगत्का हित सोचते समय अभव्योंको छोड़ दें और भव्योंके ही हितकी बात सोचें—ऐसा भी विकल्प उनके नहीं उठता है। जिसका होनहार हो, होगा पार। मगर साधुके चित्तमे तो समस्त जीवोंके प्रति करुणाका भाव रहता है। इन साधुजनोंकी बुद्धि भी एकान्त अधकारके विस्तारको नष्ट करने वाली है। जब तक पदार्थका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तब तक शान्तिका रास्ता नहीं मिलता।

वस्तुस्वरूपके प्रतिपादनकी विशेषता— जैनधर्ममे सबसे बड़ी यह विशेषता है तो वस्तुके स्वरूपके प्रतिपादनकी है। दया करना यहा बताया, सब जगह बताया। ब्रह्मचर्यसे रहना, तृष्णा न करना, असत्य न बोलना—ये सभी बातें जैन शासनमे भी कही हैं और अन्य शासनोंमे भी कही हैं। इसमें जैन शासनकी क्या महत्ता सिद्ध होगी? जैन शासनकी महत्ता वस्तुस्वरूपके यथार्थ प्रतिपादन से है। सारे संकट वस्तुस्वरूपके यथार्थ ज्ञानसे ही मिटा करते हैं। प्रत्येक वस्तुका स्वरूप उस उस हीमे गर्भित है। मेरे प्रदेशसे बाहर मेरा कुछ नहीं है। सभी पदार्थ अपने स्वरूपके दृढ किलेमे स्वरक्षित रहते हैं। किसी परवस्तुमें हमारा अधिकार नहीं है। मेरा कुछ भी नहीं है जगत् में। यथार्थज्ञान होने पर मोहभाव हट जाता है, और मोह हटा कि सारे संकट टल जाते हैं। संकटोंकी जड़ तो मोह भाव है।

मूलाभावे कुत: शाखा— एक जगलमें सिंहके घरमे गुफामें स्यालिनी ने बच्चे जन्मे। अब चिन्ता यह हो गयी कि सिंह आयेगा तो बच्चोंको खा लेगा। सो स्याल स्यालिनीने एक उपाय बनाया। स्याल गुफाके ऊपर एक भींत पर बैठ गया। जब एक सिंह आया तो स्यालिनी ने बच्चे रुला दिये। स्याल पूछता है कि ये बच्चे क्यों रोते हैं? तो स्यालिनी कहती है कि ये बच्चे शेर का मास खाने को मागते हैं। इतनी बात सुनकर वह शेर डर

कर भाग गया। सोचा कि कोई हमारे भी खाने वाला है। यों बीसों शेर डर कर भाग गये। अब सब शेरोंने मीटिंगकी कि वहा यह निर्णय किया कि यह जो भींत पर स्याल बैठा है उसकी सारी करतूत है। उसके मारनेका सबने उपाय बनाया। सोचा कि एकके ऊपर एक चढकर उसे मार डालें। सो सबसे नीचे कौन खड़ा हो? विचार किया कि यह जो लगड़ा शेर है यह सबसे नीचे खड़ा हो। सो लगडा शेर नीचे खडा हुआ और उसके ऊपर एक पर एक खडा हो गया। जब स्यालके पास तक पहुचनेको हुए तो स्यालिनीने बच्चोंको रुला दिया। स्यालने पूछा कि ये बच्चे क्यों रोते हैं? स्यालिनी बोली कि ये बच्चे लगडे शेरका मास खाना चाहते हैं। लो डर कर लगड़ा शेर भागा, तब भदभद करके एकके ऊपर एक सब गिर गये और भाग गए, फिर वहा नहीं आये। तो जैसे लगडे शेरके खिसकने से सब शेर खिसक गए, ऐसे ही मोहके खिसकनेके बाद रागद्वेष कषाय क्रोध विकल्प सारे अवगुण भदभद खतम हो जाते हैं। दुखोंका मूल तो मोह है। यह मोह मिटेगा सम्यग्ज्ञानसे। सम्यग्ज्ञानसे सम्यग्ज्ञानका यथार्थप्रतिपादन जैन शासनमें है। ऐसे उत्कृष्ट समागमको पाकर हमें सम्यग्ज्ञानमें अधिक रुचि बनानी चाहिए। अपने जीवनमें एक बार तो कुछ समय देकर, गुरुजनोंके सत्सगमें रहकर विद्यार्थी की तरह अध्ययन करना चाहिए। इस थोडेसे जीवनको मोह मोहमें ही न वितायें।

स्याद्वादसे स्वरूपपरिचय— इस जीवके सम्बन्धमें कोई शासन कहते हैं कि यह क्षण क्षणमें नया-नया पैदा होता है। कोई शासन कहता है कि यह जीव परिणमता भी नहीं है, पर जैन शासन कहता है कि यह जीव द्रव्य दृष्टिसे तो नित्य है और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। यों ही अनेक प्रसंगोंमें स्याद्वादकी शैलीसे वस्तुका वर्णन जैनशासनमें है। जैसे कोई भिल्लनी जगलमें रत्न भी पा ले तो जिनको गुंचियोका परिचय है (जिससे सोना तोला जाता है) उनको वे रत्न पाकर भी उसे पैरोंमें घिसनेमें काम लेगी। उसे उस रत्नका मूल्य नहीं मालूम। ऐसे ही समझो कि हम भी ऐसे उत्कृष्ट शासनको पाकर चूँकि विषयोंका परिचय है ना तो इस शासनको भी पाकर पूजामें कुटुम्ब, वैभववृद्धि, यश—ये ही बाते मागेंगे। उन भिल्लनियोंकी ही तरह दुरुपयोग करेंगे। लेकिन चेतनेका समय हैं। वैभव इस जीवका हित न करेगा और वह आपके सोचनेसे आता भी नहीं है, उदयानुसार आता है। आपका समय तो इस ओर व्यतीत होना चाहिए।

साधुसेवासे गृहस्थोंकी धन्यता— ये साधुजन बडे-बडे दुर्धर तपश्चरण करते हैं और अतमें विधिपूर्वक समस्त आहार जलका परित्याग

करके समाधि मरणसे वे अपना देह त्यागकर सद्गतिको प्राप्त होते है। ऐसे साधुजन सतपात्र कहे गये गये हैं। वे गृहस्थ धन्य हैं जिनको ऐसे सद्पात्रों की सेवाका अवसर मिला करता है। साधुजन भोजन करते है शरीर रखने के लिए, शरीर रखते हैं धर्मपालन करनेके लिए। इस कारण उन्हें भोजनमें आसक्ति नही रहती है। ऐसे विरक्त, ज्ञानमय अपना उपयोग रखने वाले साधुसन्तोंकी वैयावृत्तिसे गृहस्थ कितना धर्मलाभ और पुण्य लाभ करते हैं? इससे बढ़कर गृहस्थोंको पुण्यलाभका और कोई सुगम उपाय नहीं है। पर ऐसा धर्मलाभ वही गृहस्थ कर पाता है जो गृहस्थ स्वय भी ज्ञानी हो और साधु जिस मार्गपर चल रहे हैं उस मार्ग पर चलनेकी धुन हो।

दानका फल— साधुवोंकी सेवा, आहारदान, शास्त्रदान, औषधिदान अभयदान, ये कई गुणित फल देते हैं। जैसे बड़का वीज कितना छोटा होता है? बड़ के फलमें सैकड़ों बीज होते हैं, उसका तिलसे भी छोटा दाना होता है। इतना छोटा बीज बो देने पर वह फर्लांग तकमें भी फैल जाय, इतना बड़ा बड़का पेड़ बन जाता है। ऐसे ही सत्पात्रमें किया हुआ दान अनगिनते गुणे फलको प्रदान करता है। वह गृहस्थ और वह साधु जिसका परस्परमें मोक्ष-मार्गका व्यवहार चलता है, वे ही धर्मकी गाडीको चलाने वाले वास्तविक वृषभ श्रेष्ठ हैं। जैसे कुसगोंमें सबसे अधिक कुसग है स्त्रीका, ऐसे ही सत्संगों में सबसे अधिक उत्तम सत्सग है साधुवोंका, ये साधुजन ससार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हैं, जब कि जगतके ये सब जीव रागद्वेषोंसे भरे हुए हैं।

साधुजनोंकी अन्तर्बाह्य उदारता— जो मोक्षमार्गमें चलते है, यद्यपि विकासानुसार उनके अनेक पद हैं, श्रावक श्रावकोंमें भी उत्तम, फिर मुनि मुनियोंमे भी उत्तम और धर्मध्यानी शुक्लध्यानी इनके उत्तरोत्तर कषाय कम होती चली जाती है। धर्मके प्रति साधुवोंका तीव्र अनुराग रहता है। अज्ञानीजन जहा गप्पसप्प विषयो में अपना समय व्यतीत करते हैं वहा ज्ञानी सत शास्त्रों के चिन्तनमें अपना समय व्यतीत करते है। साधुवों के सम्बन्धमे आधुनिक भाषामें यह भी व्याख्या कर सकते है कि जो ले कम और दे अधिक उसको साधु कहते है। साधुजन अपने लिए क्या ग्रहण करते हैं? एक साधारण आहार और देते कितना है वे साधुजन कि उनकी मुद्राको निरखकर ही अनेक जन अपने कल्याणका मार्ग पा लेते हैं, और फिर उनके हितोपदेश से अनेक भव्य जीव ससारसमुद्रसे तिरकर पार हो जाते है। यो समझिये आजकी भाषामें जो साधुवोंकी व्याख्या की जा रही है कि जो ले कम और दे अधिक उन्हें साधु कहते हैं। जो अपने लिए लेना लेना ही सखें, उनकी कौन कहानी कहें। अव्वल तो सिवाय अन्न

जल आदिके और कुछ लेना वताया ही नहीं है साधुजनोंको। हमे इस ओर भी सावधान रहना चाहिए। हम श्रावकजन श्रावकके योग्य कार्य करें।

साधुपरमेष्ठीकी उपासनासे गार्हस्थ्यजीवनकी सफलता— भैया! कभी ऐसा सोचकर कि चलो जो भी नग्नभेषमें आया है वह हमसे तो अच्छे हैं। श्रावकजन तो अनेक विचार और अनेक पदोंके होते हैं। वे तो रागके भरे हैं, किन्तु जिनका नाम णमोकार मंत्रमे बोलकर सदा नमस्कार किया करते हैं। उनके पदमें किञ्चित् भी न्यूनताकी बात आये तो वे हमारे लिए परमेष्ठी नहीं हो सकते हैं। यदि कहीं मिलें ऐसे यथार्थ साधु परमेष्ठी तो उनके चरणोंमें गृहस्थजन अपना आत्मसर्वस्व भी न्यौछावर कर देते हैं। उन्हें कभी शका और गम नहीं रहती है। साधुजनों के गुणोंकी महिमा कौन वता सकता है? पूजामें बोला जाता है ना, गुरुकी महिमा वरनी न जाये। यह वात यथार्थ है। परम उपकारी सदा हितमे ही जिनका ध्यान बना रहता है, ऐसे गुरुवोंके गुणोंकी महिमाको कौन कह सकता है? ऐसे साधुजनोंकी जो हर प्रकारसे उपासना सेवा सगति करते हैं, उन गृहस्थोंका भी जीवन सफल हो जाता है।

उपायकोटिदूरक्ष्ये स्वतत्तत इतोऽन्यत ।
सर्वत पतनप्राये काये कोऽय तवाग्रह ॥६६॥
अवश्य नश्वरैरेभिरायु कायादिभिर्यदि ।
शाश्वत पदमायाति मुधाऽऽयातमवेहि ते ॥७०॥

विनश्वर व अरक्ष्य कायमें आग्रह तजनेका अनुरोध— हे आत्मन्! यह शरीर करोड़ों उपाय भी किये जायें तो भी रक्षित नहीं रह सकता है। यह तो गिरनेके ही सन्मुख है, जवसे इस मनुष्यका जन्म होता है तबसे दिन प्रतिदिन यह मरणके सम्मुख ही पहुच रहा है। इस शरीरमे तेरा क्यों यह आग्रह हो रहा है कि मैं इस शरीरकी रक्षा ही करूँ? हे आत्मन्! अपने आत्माकी रक्षाका ध्यान दो। शरीर तो नष्ट होगा ही। जो मनुष्य इस पाये हुए समागममें मोह रखते हैं, इन समागमोका जब विछोह होगा तब कई गुणा दु ख भोगना पड़ेगा। इससे भला यह है कि समागममें रहते हुए भी हम अभीसे उसमें वैराग्य धारण किए रहें। ये समागम भिन्न हैं, मेरे आत्माका इससे कुछ लगाव नहीं है। सभी भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। उनमें मोह क्यों करना? ज्ञान इसीको कहते हैं। जैन नामसे तो सभी हैं, पर वास्तवमें जैन वह होता है जिसको वस्तुके स्वतन्त्र-स्वरूपकी श्रद्धा हो। प्रत्येक पदार्थ न्यारा है, मेरा किसी पर कोई अधिकार नहीं है। मैं केवल अपने आपका ही स्वामी हू, ऐसा जानकर समस्त पर-द्रव्योंसे विरक्त मनमें

रहें—ऐसे भावों वाले पुरुषको यथार्थ जैन कहते हैं। बहुत गम्भीरतासे सोचते जाइए कि जो भी समागम मिले हैं, उन समागमोंमें मस्त होनेका फल तो दुःख ही होगा। इस शरीरमें तू आग्रह मत कर।

कायविनाशमें आश्चर्यका अभाव – एक कविने कहा है कि ये जगत्के प्राणी रोज-रोज मरणको प्राप्त हो रहे हैं। मनुष्य गुजर जाते हैं, इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है, किन्तु वे कुछ दिन तक टिके रहते हैं इसमें आश्चर्यकी बात है। जैसे बरसातके दिनोंमें घरकी छतसे पानी नीचे गिरता है तो उस पानीमें बबूले पैदा हो जाते हैं। उन बबूलोंके मिटनेमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य तो उसमें है कि वे दो चार सेकेण्ड तक रह जाते हैं। यह शरीर पतनकी ओर है। इस शरीरमें रक्षाका आग्रह मत करो। सभी जीव भिन्न-भिन्न हैं। जैसे संसारके समस्त जीव भिन्न हैं, ऐसे ही घरके दो चार जीव भी भिन्न हैं। न तो तुम अपने शरीरमें आग्रह करो और न परके शरीरमें रुचि व आग्रह करो।

संसारमें हितका अभाव— एक बार किसी राजाने दूसरे देश पर चढ़ाई कर दी और उस राजाके वंशको ही खत्म कर डाला। अन्तमें उसे बड़ा पछतावा हुआ। एक थोड़ीसी राज्य सम्पदाकी लिप्सामें हमने कितना अनर्थ कर डाला? अब मुझे यह राज्य न चाहिए। इसके कुलमें यदि कोई बचा हो तो उसको राज्य सौंप दें। पता लगाया, क्या कोई इसके कुलमें बचा है? पता लगा कि राजाका एक चाचा है वह मरघटमें रहा करता है। उसे धन वैभवसे प्रयोजन नहीं, वहां ही अपना प्रभु जाप किया करता है। राजा उस चचाके पास पहुंचा और कहा कि आप जो कुछ मांगोगे देंगे, तुम महलमें चलो, इस मरघटको छोड़ो, जो भी तुम चाहोगे हम देंगे। चचा बोलता है—अच्छा तुम हमें ऐसी जवानी दो जिसके बाद फिर बुढ़ापा न आये। अब बतावो, है कोई ऐसी जवानी, जिसके बाद फिर बुढ़ापा न आये? राजा बोला कि यह चीज तो मैं नहीं दे सकता, और कोई दूसरी चीज मांगो। चचा बोले— अच्छा हमें ऐसा जन्म दो कि जिसके बाद फिर मरण न आये। राजा यह सुनकर भी दंग रह गया। राजा बोला—यह भी चीज हम देनेमें समर्थ नहीं हैं। भला बतलावो है कोई ऐसा जन्म कि जिसके बाद फिर मरण न हो? हां! अरहंत भगवान्की आयु नष्ट हो जाती है वह मरण ही तो है, उसका नाम है पंडितपंडितमरण, किन्तु उसे कहते हैं निर्वाण। उसके बाद जन्म फिर नहीं होता है, सिद्धपद प्राप्त हो जाता है। ऐसा किसका जन्म है जिसके बाद मरण न हो। राजा सुनकर बड़ा हैरान हुआ और कहा कि तुम कोई तीसरी चीज मांगो। तो उसने कहा अच्छा

हमें ऐसा सुख दो जिसके बाद फिर कभी दु ख न आये।

सासारिक सुख-मग्नताके अयोग्य— हे ससारके लोभियों! बढ़े मत जाओ। दौड़ मत लगाओ। यहांके सुखमें बहोगे तो उससे कई गुणा दु ख मिलेगा। गरीबसे लेकर बडे धनिक तक, मूर्खसे लेकर विद्वान् तक किन्हीं भी जीवोंमें देख लो— जो ससारका सुख चाहते हैं उनको नियमसे महान् दुःख होगा। इसमे किसीकी सिफारिश नहीं चल सकती। खूब अनुभव करके देख लो। आगे दुःख न हो, तब फिर इसका उपाय क्या है? इसका उपाय यह है कि तुम सुखमें मग्न मत होओ, सुखकी अभिलाषा मत करो। ज्ञान और वैराग्यकी अन्तरङ्गमे अभिलाषा करो। अपने आपके विविक्त ज्ञानानन्दस्वरूपको देखो। हमारा जगतमें कहीं कुछ नहीं है। अरे! जब यह देह ही हमारा नहीं है तो अन्य किसीकी क्यों कल्पना बनाते हो कि यह मेरा है। कर्तव्य ऐसा करो जिससे मन अन्त प्रसन्न रहे और अपने आनन्दकी उन्नति रहे। यह बात तब सम्भव है जब प्रथम यह तो श्रद्धा लावो कि यह मैं आत्मा अकेला हू। इस लोकमें मेरा कोई साथी नहीं है। उदय है पुण्यका तब तक दूसरे लोग तुम्हारे साथी बननेकी हामी भरते हैं। उसमें भी हमारा कर्तव्य साथी हुआ, परिजन कोई साथी नहीं होते। अपने अकेले धर्मका विश्वास करो।

स्वके एकत्वका चिन्तन— बारह भावनामे एकत्व भावनाका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने आपको अकेला चिन्तन करते जाइए। मैं अकेला ही उत्पन्न होता हू, अकेला ही मरण करता हू, अकेला ही सुख दु ख भोगता हू, और इन सब स्थितियोंमें भी ये सुख दुःख रागद्वेष औपाधिक भाव है, ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। परमार्थसे मैं केवल चित्स्वभावमात्र हू, केवल चैतन्यस्वरूप हू। जो वास्तविक मायनेमें जैनशासनका पालन करेगा, यथार्थतया जो जैन है, उसको कभी दु ख हो ही नहीं सकता। काहे का दु ख? अरे, जब अन्तमें हमारी प्रभु होनेकी स्थिति हो सकती है, तब वहां तो सर्वथा ही अकेले होंगे। शरीर भी न होगा। मैं आत्मा केवल पूर्ण शुद्ध विकासरूप होऊँगा। अरे उस स्थितिको जो प्राप्त हो जाये अर्थात अपने आपके अकेलेपनका अनुभव हो जाये तो यह उसका बहुत सुन्दर भवितव्य है। हमेशा अपने आपको अकेला निरखो। यदि एकत्व भावना न हुई तो अन्तमें बड़ा खेद होगा।

आकिञ्चन्य भावका महत्त्व— यहा भी देखो, जो-जो कुटुम्बीजन आज हमारे पास हैं, घरमें हैं, उन सबका किसी दिन वियोग भी होगा या वे सदा रहेंगे? ये मनुष्य मरते न होते तो आज जगत्में पैर रखने को भी

जगह न रहती। तब अभीसे मान जावो कि जो भी समागम मिले हैं, वे किसी दिन अवश्य छूटेंगे। चाहे खुद मरण करके समागमोंको छोड़कर चले जायें, चाहे हमारे जीते जी दूसरे कोई छोड़कर चले जायें, पर वियोग अवश्य होगा। ऐसी बात ज्ञानमें अभीसे रहे तो वियोगके समय दुःख न होगा। इस लोकमें कौन किसका क्लेश मिटा सकता है? खुद ही अपना ज्ञान बनायें, साहस बनायें, जिनेन्द्रदेवकी आज्ञा मानें। प्रभुका आदेश है कि तुम समग्र वस्तुवोंको भिन्न स्वरूप वाला समझकर उनकी उपेक्षाका भाव बनाओ, इस काममें हठ मत करें। जो हठ करता है उसको पीछे बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। हठ करना अच्छा नहीं है। हठी पुरुष दुःखी ही होता है, और दुःखी होनेके साथ-साथ वह मूर्ख भी है। हठी बुद्धिमान् नहीं होता। जो परपदार्थोंके किसी भी प्रकारके संयोगके लिए हठ करता है वह पुरुष मूढ़ है, पर्यायमुग्ध है, उसे चैन नहीं मिल सकती।

परपरिणतिके हठका दुष्परिणाम— एक हठीली स्त्री थी। उसके मन में ऐसा आया कि सासको मजा चखाना चाहिए। झट पेट दर्दका बहाना किया, खाट पर पड़ गई। बड़े-बड़े वैद्य आये, पर वह ठीक न हुई। पति आकर पूछता है-- कहो देवी! तुम्हारी बीमारी किसी तरह ठीक होगी कि नहीं? तो उस स्त्रीने बताया कि देवता मेरे कानमें कह गया है कि जो तुमसे ज्यादा प्रेम करता हो, उसकी मां सवेरा होते होते ही अपना मुँह काला करके और सर घुटाकर दर्शन दे तो बचेगी, नहीं तो न बचेगी। इसका अर्थ क्या हुआ? स्त्रीका प्यारा हुआ पति व पतिकी मां हुई उसकी सास। उसने अपनी सासके लिए ऐसा कहा। पतिने उसके मनकी बातको समझ लिया। सोचा कि इसे छकाना चाहिए। सो एक पत्र लिख दिया ससुरालको कि तुम्हारी लड़की बहुत बीमार है, बचनेकी आशा नहीं है। देवताने उसे बताया है कि लड़की की मा अपना सर घुटाकर मुँह काला करके सवेरा होते ही दर्शन दे तो बचेगी, नहीं तो लड़की मर जायगी। तो झट उसकी मां ने अपना सिर घुटवाया और मुँह काला करके सवेरा होते ही होते आगयी। अब रूप तो पहिचानमें आता न था, सो वह स्त्री उसे देखकर कहती है—'देखे बीरबानी को बातें, सिर मुड़े अरु मुँह काले।' तो पति कहता है— 'देखी मर्दोंकी फेरी अम्मा तेरी कि मेरी।।' तो हठ ही तो एक दुःखदायी चीज है। वैभवकी हठ, यशकी हठ, ये सारे हठ दुःखदायी हैं। यहां हमारा कुछ नहीं है। किसी भी वस्तुके प्रेमसे शान्ति नहीं मिला करती है। शान्ति तो ज्ञानसे मिलती है।

ज्ञानकी देन-- सर्वेनाना चिरौंजा बाई जो जिन्होंने बड़े वर्णी जी को पढ़ाया था, छोटी उमरमें परिवार एक बार यात्रा को गई। १४ वर्षकी उमरमें

शादी हो गयी थी। उन्हीं दिनों उस यात्रामें बाई जी के पति गुजर गये। वे विधवा हो गयीं, उसका कष्ट उनसे न सहा गया। सोचा कि कुएमें गिरकर मर जायें, पर विवेकसे काम लिया, साहस बनाया, सोचा कि आत्मकल्याण का हमें सर्वाधिक साधन मिला है। बस लग गयीं धर्मसाधनामें। फिर उन्होंने ऐसा अध्ययन किया कि आजका जैनसमाज उनकी चरण वंदना करता है। चीज क्या है? संतोष और शान्ति तो एक ज्ञानकी देन है, पर वस्तुकी देन नहीं।

विनश्वरसे अविनश्वरके लाभकी बुद्धिमानी— ये समस्त चीजें विनश्वर हैं। जो कुछ मिले हैं, ये सर्वसमागम विनश्वर हैं। इन विनश्वर चीजोंका हम इस तरह उपयोग कर लें कि शाश्वत पद मिल जाय। अविनाशी पद मिले तो यह भली ही बात है। अन्यथा तो यह देह मिटेगा। चाहे देहकी कजूसी करें, चाहे देहसे परका उपकार करें, मिटेगा जरूर यह शरीर। चाहे इस शरीरको विषयोंमें फेंक डालें और चाहे तपस्यामें लगावें। विषयोंमें इस देहको झोंकनेका फल है संसारमें जन्म लेना, मरण करना, कीट पतंगा बनना पडे, पेड़ पौंधा बनना पडे, संसारमें जो शरीर नष्ट होना है, उस शरीरसे तप संयमकी साधना कर ली जाय तो उससे स्वर्ग मिलेगा और अपवर्ग मिलेगा, मोक्ष मिलेगा। ऐसी हिम्मत बनाएँ, ज्ञान जगावें, तप, व्रत, संयममें इस देहको लगानेकी सद्बुद्धि करें हो।

धार्मिक साहसमें धर्मपालनकी सुगमता— लोग जरा-जरासे व्रत संयममें घबड़ाते हैं। एक भाई ने प्रश्न किया कि आजके समयमें जैनधर्म का जो रात्रिभोजन त्यागका नियम है यह पालना तो बड़ा कठिन है। अब तो नियम बदल देना चाहिये। हमने बतलाया कि भाई २४ घंटेमें एक बार भी खा लिया जाय तो वही जीवन रखनेके लिए काफी है और फिर मान लो किसी दिन दिनमें दूसरी बार न खा सके तो वह स्वास्थ्यको लाभ ही देगा। सबसे कठिन वेदना तो रोग और प्यास की हुआ करती है। भूखकी कठिन बाधा नहीं होती है। उसके लायक तो दिनमें एक दो बार खाना मिल ही जाता है। एक जल और औषधिके सिवाय बाकी सब पदार्थोंके रात्रिमें खानेका त्याग कर दीजिए तो भी इसमें निभाव भली प्रकार हो सकता है। थोड़ी हिम्मत चाहिए। कायरता है तब तो भोजन करके घरसे निकले कि बाजार में कोई चाट पकौड़ी वाला मिल गया तो दो एक आनेकी खा ही लेते हैं। अरे उसकी क्या जरूरत थी? अरे इस देहको तप व्रत संयममें लगाने की बुद्धि करो। इस कायरताको त्याग दो।

आत्मोद्धारका यत्न— भैया! पुराण पुरुषोंके इतिहास पर भी दृष्टि

दो। उन्होंने क्या किया था, इस पर तो कुछ विचार करो। अब तो मरणके सम्मुख भी होते जा रहे हैं और इस जीवनमें ५ मिनटको भी चिन्ता नहीं छोड़ना चाहते, रागद्वेष मोहसे परे नहीं होना चाहते। अरे जुलाहे भी पूरा कपड़ा नहीं बुनते, वे भी चार अंगुल छौंरा अन्तमें छोड़ देते हैं, पर ये मनुष्य अपने जीवनके ५ मिनट भी नहीं छोड़ना चाहते। अरे मरण करके तो एकदम ही सारी पलट हो जानी है, कुछ देरको भी यदि समता परिणाम कर लीजिए तो भला है। मरण समय जैसी मति होती है तैसी गति होती है। चिन्ता करो अपने उद्धार की। बाह्यपदार्थोंकी चिन्ता करना बेकार है।

आत्मस्वरूपचिन्तनसे जीवनकी सफलता— भैया! धर्मपालन से अपना उद्धार करनेके लिये किसी तरह रह जाय जीवन, रहना चाहिए। जीवन भी किसलिए रहना चाहिए कि हम ऐसे दुर्लभ धर्मको पाकर इस धर्मका पालन कर सकें और अपने इस आत्मजीवनको सफल कर सकें। देहसे ममता करना व्यर्थ है। किसीसे ममता नही होती, अपने भी शरीरसे ममत्व नहीं होता, दूसरेके शरीरसे भी ममत्व नहीं होता, अपने विभावसे ममत्व होता। चिन्तन करिये अपने समस्त इन्द्रियोंको बद करके अपने आपके अन्तरमें एक शुद्ध ज्ञानप्रकाशका अनुभव करें। बारबार यह भावना भायें कि मैं ज्ञानमात्र हू, केवल ज्ञानस्वरूप हू। जाननका जो स्वरूप है उसे दृष्टिमें ले। इससे ही इस ज्ञानतत्त्वकी भावना बनेगी। प्रत्येक परिस्थितिमें अपने को अकेला निरखो। अपना चित्त अपने पास है, इसका सदुपयोग करें। अच्छे विचारोंकी ओर लग जायें तो हम ही अपने आप सुखी हो सकते हैं और रागद्वेष मोह भरे अपने विचार बनाये रहें तो हमने ही अपने आपको कष्टमें डाला है। मुझे कष्ट देने वाला कोई दूसरा जीव नहीं है। मैं ही कल्पनाएँ बनाता हू और दु खी होता हू।

परकी उपेक्षामें लाभ-- भैया! सुख सुविधासे भी रहने वाला पुरुष किसी समय धन हानि या अन्य प्रकार यश हानिपर दृष्टि डाले तो वह दुःखी हो जायगा। कैसा भी बाह्य सकट आया हो किसी जीवपर, वह अपने आनन्दस्वरूपकी सुध ले तो वह सुखी हो जायगा। सुख दु ख अपने आपके ज्ञानपर निर्भर हैं। अपना कर्तव्य है कि जो भी समागम मिले हैं उनका ऐसा उपयोग करें, ऐसी उदारता रक्खें कि मोक्षप्राप्तिके पात्र बनें। यदि ऐसा न कर सके तो यह जानो कि यह दुर्लभ जीवन दुर्लभ समागम बिल्कुल व्यर्थ ही खो दिया। इससे इन विनश्वर समागमोंका आग्रह न करें कि ये मेरे हैं। अपने आकिञ्चन्य स्वरूपकी निरन्तर भावना करनी चाहिए।

गन्तुमुच्छ्वासनिश्वासैरभ्यस्यत्येष संततम् ।
लोकः पृथगितो वाञ्छत्यात्मानमजरामरम् ।।७१।।
गलत्यायुः प्रायः प्रकटितघटीयन्त्रसलिलम् ।
खल कायोऽप्यायुर्गतिमनुपतत्येष सततम् ।।
किमस्यान्यैरन्यैर्द्वयमयमिदं जीवितमिह ।
स्थितो भ्रान्त्या नावि स्वमिव मनुते स्थास्नुमपधीः ।।७२।।

मरणमें जीवनका भ्रम— यह आयु श्वास और उच्छ्वासके मिषसे निरन्तर निकलनेका अभ्यास कर रहा है, लेकिन लोगोंकी मूढ़ता तो देखो यह श्वास और उच्छ्वास करके अपने को अजर अमर हुआ देखना चाहता है। इस जीवको शरीरमें रोकने वाला कारण है आयु कर्म। जब तक आयुकर्मके निषेक उदयमें चल रहे हैं तब तक यह जीव इस शरीरमें बना रहता है और श्वास और उच्छ्वास करके इसका जीवन टिका रहता है। यह आयु प्रति समय खिरने की ओर रहती है। जिस मनुष्यकी आयु ४० वर्ष की निषेकमें निश्चित् है उसके १० वर्ष जीने पर यही तो अर्थ हुआ कि अभी उसे ३० वर्ष जीना है। ज्यों-ज्यों समय गुजरता है त्यों-त्यों यह जीव मरणके निकट पहुंचता है। यहां गुणभद्र स्वामी यह बतला रहे हैं कि यह आयु खिरनेके लिए सदा उद्यत रहती है और श्वास लेना, श्वास फेंकना इन क्रियाओंके माध्यमसे यह आयु इस शरीरसे निकलनेकी कोशिश करती रहती है। तो यह श्वासका लेना इस आयुके खिरनेका अभ्यास है। इससे आयु खिरेगी, जल्दी मरण होगा, किन्तु इस मूढ़की दृष्टि तो देखो यह श्वासके कारण ही अपनेको अजर अमर देखना चाहता है।

गुजरे समयका पुनः आनेका अभाव— लोकमें ही तो यही हो रहा है कि यह आयु निशदिन प्रतिपल गल रही है। जैसे रहटकी घड़िया खिरने के लिए ही आयी हैं। कुंएमें रहटकी घड़िया पचासों हैं, वे पानीसे भरती जाती हैं और क्रम-क्रमसे रीति होती जाती हैं—ऐसे ही यह आयु भी छिन छिन गल रही है। अथवा जैसे अंजुलीमें लिया हुआ पानी बूंद बूंद गिर कर खाली हो जाता है—ऐसे ही यह आयु भी एक एक निषेक करके खिर जाती है। घड़ी टिक-टिककी आवाज करती है, उसकी प्रत्येक आवाज यह सावधानी देनेके लिए है, मानों कि जो समय अब गुजर गया है वह समय अब आगे न आयेगा। जिसका जो समय गुजर गया वह वापिस नहीं आ सकता है। चाहे कोई धनिक कितना ही व्यय करदे, पर जीवनका बीता हुआ समय वापिस नहीं आ सकता है।

शेष आयुके सदुपयोगका स्मरण— बचपनमें तो ज्ञान न सीखा,

जब कि ज्ञान सीखनेका अवसर था। जवानीमें धर्म न किया जबकि शरीरमें पौरुष था। यों ही समय बीत गया। अब जीवनका बीता हुआ समय वापिस नहीं आ सकता। विषयोंके सेवनमें, कल्पनाजालोंमें पडकर जो अपना समय नष्ट किया है, पापवंध किया है वह विपरीत हो जाये अर्थात् नष्टकी तरह हो जाये और मै शुद्ध कलंकरहित साफ ही रह जाऊँ—ऐसी कितनी भी वासनाएँ बनाए, पर जो समय गुजर गया, वह तो गुजर ही गया। जैसे पर्वत परसे गिरने वाली नदीकी धार जो नीचे आ गयी वह फिर वापिस नहीं जा सकती है- ऐसे ही इस आयुका जो क्षण वह गया, वह फिर दुबारा नहीं आ सकता है। ऐसा जानकर प्राप्त हुई शेष आयुका कुछ उपयोग करे।

दुर्लभ नरदेहसे अपूर्व लाभकी बुद्धिमानी— यह मनुष्यजन्म बहुत दुर्लभ है। इसको इन्द्र भी तरसते हैं। इन्द्र अपने वैक्रयिक शरीरको जो कि अनेक समृद्धियोंसे सम्पन्न है। उस भव और वैभवको भी त्यागकर मनुष्य-जन्म पानेकी वाञ्छा करते हैं। ऐसे दुनियावी उत्तम शरीरमे रहकर भी, जहा हजारों एकसे एक विनयशील आज्ञाकारिणी देवियां हैं, उनमे भी वे तृप्त नहीं होते हैं। वे चाहते हैं कि यह मनुष्यजन्म मिले और संयम करके, आत्मध्यान करके निर्वाणको प्राप्त होवें। इस नरजन्मको बडे बडे इन्द्र भी तरसते हैं। इसे पाकर भोगविषयोंमें व्यर्थ न गमावो, किन्तु अपने पाये हुए इस श्रेष्ठ मनका सदुपयोग करो। यह आयु रहटकी घड़ियोंकी पानी की तरह निरन्तर गल रही है और आयुके साथ ही साथ यह शरीर भी गल रहा है। जैसे आयु बीतती जाती है, वैसे ही वैसे यह शरीर भी गलता जाता है। इस नरदेहको तप संयममे लगाकर कल्याण करो। इस शरीर पर दृष्टि न करिये।

अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि होने पर पीड़ाका अभाव-- मैं आत्मा क्या हू ? शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप निर्विकार अमूर्त अन्तस्तत्त्व उसे अपने उपयोगमें लिया जाये तो वहां फिर वेदना नहीं रहती है। जहां शरीर पर दृष्टि है वहां अनेक कष्ट हैं। मैं बूढा हू, मेरा बल कम हो गया है, मैं अब भोग नहीं भोग सकता, भोजन भी नहीं चबाया जाता— ऐसी शरीरमे दृष्टि रखकर अनेक ख्याल करते जाइए। इससे बेचैनी ही बढ़ेगी। अरे कर्तव्य यह है कि कुछ क्षण अपने अन्त:स्वरूपमें ऐसी दृष्टि ले जाये कि इसका भान तक भी न हो कि यह मेरे साथ लगा है। देखो यह शरीर भी आयुके साथ-साथ गिर रहा है। ऐसी स्थितिमें तू स्वप्न क्यों देख रहा है जीवन के ?

भटकन और भ्रम— देख सोच, जैसे नावमें बैठा हुआ पुरुष यों देख रहा है कि मैं कहीं नहीं जा रहा हू, वहींका वहीं हू और उस नाव पर वह बैठा हुआ चला जा रहा है। निकल गया मीलों दूर नावके चलनेके साथ-साथ, ऐसे ही यह मूढ़ जान रहा है कि मैं ज्योंका त्यों, जहा का तहां पूर्ण स्वरक्षित हू। इसे यह पता नहीं है कि यह श्वास नि श्वास जो निकल रही है यह आयु ही तो मानों निकल रही है। यहाके समागमोंमें बड़ा विश्वास जमाये हुए हैं ये मूढजन। अरे जब खुदका ही ठिकाना नहीं है, खुद ही को गुजर जाना है तो बाह्यपदार्थोंका तो तुम ठिकाना ही क्या मानते हो? पर मोहका कैसा प्रबल नाच है कि अत्यन्त भिन्न असार वैभव के प्रति इतनी ममता है कि उसके ही सञ्चयकी धुन बनाये रहते हैं और इस तृष्णाजलके कारण वे अपने आपमें कुछ सतोष नहीं पा सकते हैं।

जीवनकी आशाके असाधन— जीनेके कारण ये दोनों ही तो हैं— आयु और श्वास। श्वास न रहे तो जीवन मरण समझिये। अब देह नहीं रही, आयु नहीं रही तो मरण समझिए। अब यह देहमें नहीं रह सका, ये दोनों ही जीनेके कारण हैं, और देखो ये दोनों ही चचल हैं। अब जीनेकी ही क्या आशा की जाये? जब जीवनकी ही यह दशा है तो अन्य भिन्न पदार्थोंके समागममें अपने आपको ऐसा रचा पचा लेना कि कोई समागम में अनिष्ट परिणमन हो जाये, समागमका वियोग हो जाये तो रात दिन उसीमें ही चिन्ता की जाती है।

स्वपरकी शाश्वत भिन्नता— अरे है क्या, सब भिन्न भिन्न हैं। जैसे पानीमें तैल डाल दिया जाये तो तैल तैलकी ओर रहता है, पानी पानीकी ओर रहता है, दोनों मिलकर एकमेक नहीं हो जाते—ऐसी ही यहा घरमें बसकर भी प्रत्येक जीव अपनी ओर ही रहता है, आप अपनी ओर रहते हैं, मिलकर एकमेक नहीं हो सकते। रागभावमें आकर कुछ ऐसे व्यवहार वचन बोल लेते हैं, जिससे यह मूढ़ जीव यह भ्रम करने लगता है कि हम और ये जीव सब एकमेक हैं। अरे प्रकृत्या सभी जीव जुदे जुदे हैं, कोई किसीकी रच भी लाज नहीं रख सकता है। कितने भी उपाय कर डाले जायें, पर कोई द्रव्य किसी दूसरेका नहीं बन सकता है। जगत्में जितने पदार्थ हैं वे सब अपने अपने द्रव्य क्षेत्र, काल, भावसे हैं। जैसे यह चौकी है तो इसका द्रव्य, इसका क्षेत्र, इसका काल और इसका भाव सब इस ही में है। चौकीके समस्त प्रदेश कभी पुस्तकमें नहीं समा सकते। पुस्तकके द्रव्य क्षेत्र काल भाव सब पुस्तकमें ही हैं। वे कभी चौकीमें नहीं समा सकते। चौकी की जो दशा है वह चौकीमें ही है। तो जैसे ये भिन्न

भिन्न पदार्थ हैं, ऐसे ही एक घरमे ठहरे हुए जितने भी जीव हैं, वे सब बिल्कुल न्यारे न्यारे हैं। तीन काल भी ये एकमेक नहीं हो सकते।

व्यर्थका व्यामोह— और फिर देखो भैया! अनादिकालसे यह जीव भ्रमण करता आया है। न जाने कहां कहां इसने जन्म लिया? जितने भी जीव हैं, ये सब किसी न किसी रूपमें अपने परिवारके लिए बने हैं, परिजनों के कुटुम्बके लिए होते हैं। कीड़ा मकौड़ा जो भी दिखते हैं ये सभी जीव किसी न किसी भवके भाई बन्धु हैं। क्या आज उनकी कुछ खबर है? ऐसे ही आज कुटुम्बके भाई बंधु स्त्री पुत्र भी किसी दिन सब गैर हो जावेंगे। मरणके बाद जिस दूसरे भवमें पहुंचेगा, वहां जो समागम मिलेगा, उसमें ही यह मोह करने लगेगा। इस जीवकी आदत मोह करने की है तो जहां जायगा वहां ही मोह करेगा। इसका मोह इस कारण नहीं हो रहा है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा घर है, किन्तु इसका मोह अपने अज्ञानके कारण हो रहा है। अज्ञान मिट जाय तो मोह मिट जायगा। अज्ञानसे इस मोहकी वृद्धि हो रही है। खूब सोच विचार लो, हम आपका दुःखका कारण केवल मोह है। यदि दुःख है तो यह पता लगावो कि हमने किस वस्तुका मोह कर रक्खा है, क्योंकि किसी मोहके किए बिना दुःख हो ही नहीं सकता। दुःख दूर करना है तो विधिपूर्वक जिसमें उत्तरोत्तर सफलता मिलती चली जाय ऐसा यत्न करना चाहिये, उसका उपाय यह है कि अपने उस मोहभावको ढूंढो, तुम्हें किस चीजमें मोह लगा है, जिसके कारण मैं परेशान हूं, उसका मोह त्याग दो। यही क्लेश मेटनेका उपाय है।

।है वहां कुछ स्कंध हों, शाखायें फूटी हों, उन शाखावोंमें उपशाखायें हों, फिर पत्ते हों, ऐसा कुछ नहीं है। ये तो शुरूसे ही पत्ते हैं और उन पत्तोंका मोटा तना बन गया है। पत्ते हटावो तो वहा कुछ भी सार न नजर आयेगा। ऐसे ही यहा सब कल्पनाजालका विस्तार है। कल्पनाको समेट लो, फिर यहा कुछ नजर ही न आयेगा। ऐसे इन काल्पनिक सासारिक सुखोंमें आसक्त होकर यह जीव इस दुर्लभ नरजीवनको व्यर्थ खो रहा है।

वाह्यसचयसे वड़प्पनका अभाव— कोई व्यामोही प्राणी धन-धनकी धुनमें लगा है। हो गया मानो हजारों लाखोंका धन सचय तो आखिर इसके वाद क्या होगा? यह तो सोचिये। इस मायामयी दुनियामें, इन मायामयी लोगों को, मायामय वड़प्पन दिखानेके लिए मायासे जो इतने मायामय परिणाम किए जा रहे हैं, इनका फल क्या होगा? धन खूब जोड़ लिया तो क्या होगा अन्तमें? कुछ लोगोंने वड़ा-वड़ा कह दिया। प्रथम तो यह आत्मा धनके कारण वड़ा नहीं कहलाता। यहाके लोगोंकी कल्पना है। आत्मामें जो वात है, जो गुण है उस गुणका विकास हो तो आत्मा वड़ा है। इस जीवका ज्ञान विशुद्ध हो, आनन्द विशुद्ध हो तो समझिये कि हममें कुछ वड़प्पन आया है। धन वैभव वाहरी चीजें हैं। दूर नहीं रहीं निकट आ गयी हैं तो इससे क्या आत्माको लाभ होता है और भिन्न पदार्थोंके सम्बन्धसे आत्मा का क्या वड़प्पन है? क्या लाभ होगा परिवार वहुत हो गया तो? जीवन भर दुःखी रहो और विछोहके समयमें संक्लेश करना पडे, इसके अलावा और क्या होगा?

परकी अविश्वास्यता— बन्धुजन बड़ी प्रीति दिखाते हैं। ये क्या कर देंगे अपना? ज्यादासे ज्यादा इतना उपकार भर कर सकते हैं कि यहांके मरनेके वाद वे तुरन्त जला देंगे, इतना ही तो वे उपकार कर सकते हैं। इससे ज्यादा और क्या कर सकते हैं? अपने निमित्तसे दूसरोंको कुछ विषय सिद्धि हो रही है तो वे कुछ स्नेह करेंगे। आपसे स्नेह वे न करेंगे, बल्कि अपने कषायभावको व्यक्त करेंगे। कहां रम रहे हो? जब तुम्हारा ही ठिकाना नहीं, तुम्हारी आयु और काय, ये भी जब चचल हैं, निशदिन गल रहे हैं, मरणके निकट पहुच रहे हैं तो फिर अन्य समागमोंका क्या विश्वास किया जा रहा है।

उम्र उपनाम आयुक्षय— घरके लोग बडे खुश होते हैं बालकको निरखकर, अब मेरा बच्चा दो वर्षका हो गया। उसका अर्थ यह है कि मेरा बच्चा अब दो वर्षका घट गया है। जितना जिन्दा रहना था उसमें अब दो वर्ष कम रह गये हैं। अब मैं ४० वर्षका हो गया हू। अरे यह समझो कि ४०

वर्ष मेरे नष्ट हो गए हैं, अब करीब १०–२० सालको ही हू। जो बूढा है वह छोटा है और जो बच्चा है वह बड़ा है। बूढेको थोड़ा ही जीना है बच्चेको बहुत। यह आयु और काय क्षण-क्षण पतनकी ओर जा रहा है, किन्तु यह मोही जीव आयु और कायसे ममताको नहीं तज सकता। विवेकी पुरुष आयुसे और '४४ अपना ममत्व छोड़ देते हैं।

ज्ञानीका आत्मविश्वास व पुरुषार्थ— जो ज्ञानानन्द सहज स्वरूप है, शाश्वत अपने आपके कारण उस स्वरूपमें ज्ञानीजन रुचि रखते हैं। वे निरन्तर ऐसा विश्वास बनाए रहते हैं कि मैं तो ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र हू। मेरा जगत्में मेरे गुणके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। यों विवेकी पुरुष विनश्वरको विनश्वर जानकर प्रसन्न रहा करते हैं, और अज्ञानीजन विनश्वरको अपनाकर उससे अपना जीवन, बड़प्पन मानकर संक्लिष्ट रहा करते हैं। अपनेमे यह दृष्टि बनाना है कि यह आयु और काय विनश्वर है, इनकी ममता छूटना चाहिए, फिर और वैभव परिजनकी ममता तजना तो पहिलेसे ही योग्य है।

उच्छ्वासः खेदजन्यत्वाद् दुःखमेवात्र जीवितम्।
तद्विरामे भवेन्मृत्युर्नृणा भण कुतः सुखम्॥७३॥

जीवनके नातेसे भी जीवनकी दु:खरूपता— मनुष्योंको सुख है कहा? जब कभी सुख हो और कभी दु ख आ जाय, तब घबड़ाहट वाजिब है, किन्तु जहा सुख है, ही नहीं, वहा फिर घबड़ाहटकी क्यो नौबत आ रही है? जानते जावो कि संसार दु:खमय है, सर्वत्र दु ख ही दु ख है। इस मनुष्यको किसी भी स्थितिमें सुख नहीं है। दो ही तो बातें हैं—जीवन और मरण। जीवन जब तक श्वास है तब तकका नाम है। श्वास न रही तो उसका नाम हो गया मरण। सो श्वासकी भी बात देखो—खेदसे श्वास उत्पन्न होती है। श्वास लेते समय नियमसे कुछ न कुछ खेद होता है। जब जरा तेज श्वास चलने लगती है तब खेदका स्पष्ट अनुभव होता है। जब मंद श्वास निकलती है तब भी खेदका अनुभव होता है। तो श्वासका निकलना खेदसे ही हुआ करता है और श्वासके मायने जीवन है। तो लो यों जीवन सरासर खेदसे भरा हुआ है। अभी जीवनमें होने वाली विपदाओं की व और बातोंकी चर्चा ही जाने दो, श्वासकी ही बात ले लो। श्वाससे ही तो जीवन बनता है और वह श्वास खेदसे उत्पन्न होती है। जब जिस जीवनकी व्याख्यामे ही खेद पड़ा हुआ है तो उस जीवन की अवधिमें तो सुख कहांसे होगा? यों जीवन दु:खमय है और श्वासका अभाव हो जाय, न रहें श्वास इसका नाम मरण है। सो मरण भी दु खमय है। जन्म

में भी दु:ख, मरणमें भी दु:ख, जिन्दा रहनेमें भी दु:ख। सुख किधर है?

बाल्यावस्थाकी दु:खरूपता – ये तो एक शारीरिक, प्राकृतिक दु:ख बताये गये। अब जीवनकी और बातें निरखो—छोटे-छोटे बच्चोंके क्लेश अलग हैं—कोई कष्ट हुआ रो दिया, अब रोने पर भी उस खेदको उसकी मा वगैरह दूर करना चाहें तो नहीं कर सकती हैं। जब छोटे बच्चेको किसी प्रकारकी पीड़ा हो जाय तो वह रोता है। उसकी पीड़ाको कोई भी नहीं बता सकता है कि इसको क्या पीडा है? इतना छोटा बालक अब बतावो कुछ बता ही नहीं सकता। पशुकी तरह है। कुछ बड़ा हुआ तो उसके दु:ख अलग हैं। जरा ऊधम किया तो बड़े लोग उसे ललकार देंगे, अबे बच्चे, क्यों उधम करता है? उसे जो चाहे ललकार दे। बचपनके दु:ख बचपन जैसे हैं, जरासी कोई बात हुई कि मा ने उसे पीट दिया। उन बच्चोंको मन की चीज न मिली तो उसका दु:ख उन्हें रहता है।

अज्ञानहठ— बच्चोंकी हठ भी बडी अजीब होती है। एक बालकको ऐसी हठ हो गयी कि मुझे तो हाथी चाहिए। अब बतलावो कहा से हाथी ले आयें? शहरमें जिसके यहा हाथी था, उसे दो रूपये देकर कह दिया कि हाथी लेकर हमारे घरके सामनेसे निकल जाना। हाथी वाला हाथी लेकर उसके द्वारसे निकल गया। बच्चेके पिताने समझा दिया कि देख बेटा! यह हाथी तेरा था। तो फिर बालक बोला कि हमे तो यह खरीद दो। अब हाथी कहासे खरीदें, उसने और दो रुपये दिये, कहा भाई इसे हमारे बाड़ेमें खड़ा करदो ५ मिनटके लिए। बाडेमें उसने हाथीको खड़ा कर दिया और कहा लो बेटा, इसे खरीद दिया। तो थोडी देरमें वह बालक बोला कि इसे हमारी जेबमें धर दो। अब बतावो जेबमें कैसे धर दें? ऐसी हठ अज्ञानी करता है। जो बात इसके हाथकी नहीं है, अधिकार की नहीं है, उस पर हठ किया करता है।

स्वाधीन विकासकी उपेक्षा और जीवनके क्लेश— अरे आत्मन्! तुम्हारे अधिकारकी बात तो सम्यग्दर्शन—सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं। उस ओर दृष्टि क्यों नहीं देता? जो तुम्हारे अधिकारकी बात नहीं है, धन इकठ्ठा करना, रक्षा करना, यों व्यवस्था करना तेरे अधिकारकी बात नहीं है। उसकी हठ करना अज्ञानता ही तो है। वे उमरके छोटे बच्चे हैं, हम कुबुद्धिके छोटे बच्चे हैं। कहा सुख है, सो ढूँढ़कर बतावो। जरा और बडा हुआ, किशोर अवस्था हुई तो वहा और तरहके क्लेश होते हैं। कुछ कुसंगति हो रही है, खोटी जगहको चित्त जाता है, मा बाप रोकते हैं, अनेक कष्ट वहा अनुभव करता है और बड़ा हुआ, विवाह हो गया, अब

विवाहके निकटके दिनोंमें भी कष्ट व विवाहित समयमें भी कष्ट। जिनका विवाह हुआ है वे जानते हैं, क्या कल्पनाएँ उठती हैं। दो चार साल गुजरे विवाहके तब और तरहके कष्ट। बच्चे हुए तो उनकी सभालका कष्ट। खुद गरीबीसे खायेंगे, पहिनेंगे बच्चेको अच्छा खिलाना पहिनाना चाहेंगे।

इष्टवियोग आर्तध्यानका क्लेश— परिवारजन बहुत हो जायें, उनमेंसे कोई गुजर गया तो उस गुजरे हुएके लिए गृहवासी मरेंगे। संसारमें यह तो होता ही रहता है। बड़ी कुबुद्धि ममता इसे परेशान कर रही है, उसही इष्टवियोग पर ध्यान बना रहता है। इस आर्तध्यानमें मुख्य आर्तध्यान है इष्ट वियोगज। इष्टपदार्थका वियोग हो जाने पर जो उसकी पीड़ाका चिन्तन रहता है वह आर्तध्यान है। इससे कोई लाभ नहीं है। मनुष्योंको सुख किस स्थितिमें है, सो बतावो। सुख कहां है? सब अपने-अपने दिलसे सोच लो। किसीका कहीं चित्त है, किसीका कहीं। कल्पनासे सभी कष्ट मानते हैं। तो अपने-अपने ही दिलसे सोचकर बतावो कि सुख कहा है?

तृष्णाकी प्रगति— जिस जगहमें यह जीव सुख समझता है उस स्थितिमें पहुचने पर उसे सुख नजर नहीं आता। यह जगत् एक मरुभूमि की तरह है। जैसे मरुस्थलमें दूरकी चमकीली रेत प्यासे हिरणको पानी की तरह नजर आती है, पर पास जाने पर क्या पानी मिलता है? ऐसे ही जिन-जिन बातोंमें इस जीवने सुख मान रक्खा है, उनके नजदीक भी पहुच जाय तो भी क्या उन्हें सुख है? जिसे बहुत गरीबी आ रही है, वह यह चाहता है कि मेरे पास १००) की पूंजी हो जाय तो मैं परिवार का खर्चा चला लूँगा। १००) हो जाने पर फिर क्या वह संतोष करता है? अब उसे वहा भी क्लेश दिखने लगा। १००) में आनन्द नहीं है, हजारकी पूंजी हो तब काम बने। हजार हो गये तो वहा भी कुछ आनन्द नहीं नजर आया। इतनेमें तो कुछ भी घरका खर्च नहीं निकलता। लाख हों तो ठीक है। अरे कितने ही हो जायें तो भी खर्च पूरा नहीं पडता, क्योंकि व्यर्थकी शान शौकत पोजीशन ये सब बढ़ाने पड़ते हैं। दुनिया में कुछ बड़ा कहलाने के लिए क्या क्या बातें लोग नहीं करते हैं? उनकी पूर्ति कैसे हो? किस चीजमें सुख है?

यशकी तृष्णाका प्रवाह— जो लोग यशके होनेमें सुख मानते हैं उनके यशकी भी यही बात है। पहिले तो मुहल्लेके लोग बड़ा कहने लगें, यही चाह रहती है। कदाचित् मुहल्लेके लोग कहने लगे कि यह दादा साहब तो बड़े अच्छे हैं तो अब यह इच्छा हो गयी, मैं इस नगरमें बड़ा कहलाऊँ और धीरे से नगरमें बड़प्पन बन गया तो अब जिलेमें बड़प्पनका भाव आया। जिले

के बाद देशमें, देश के बाद विदेशमें। सारे विश्वमें चाहता है। जो यशकी चाह करते हैं उनके दुःख विचित्र हैं। उनका यही चित्त रहता है कि कहीं मेरी पोजीशन घट न जाय। इसही चिंतामें व्याकुल बने रहते हैं। कौनसी चीजमें सुख है, सो बतावो। न धनमें सुख है, न संतानमें सुख है, न यशमें सुख है, न देहमें सुख है।

देहकी वाचपर क्लेशोंकी बाढ़— देहका जो बन्धन है, इस समय यही साक्षात् दुःख है। अभी देहका बोझ है, इसे ढोये ढोये फिरते हैं। मेरा स्वरूप तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द शक्तिमय है। इसमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं, बाधा नहीं, पर देहका जो बन्धन लगा है सो अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। बतावो मनुष्यको इस जीवनमें सुख है कहा? सभी दुःखी हैं। किसीको किसी तरहका दुःख है, किसीको किसी तरहका दुःख है। बड़े अच्छे सम्पन्न घरानेका मैं भी हू, हर एक तरहका आराम है। तो आराम बड़े, इस भावनामें भी वह दुःख मान लेता है और जो दूसरोंसे अपनेको बड़ा मानकर इतराना पड़ता है, उस इतरानेमें क्या कम दुःख है? इस जीवनमें किसी भी स्थितिमें सुख नहीं है। श्वास ले तो उसमें भी खेद है। सारा जीवन खेदसे ही भरा हुआ है और उस श्वासका विराम हो जाये तो मरण कहलाता है, मरणमें दुःख है। सर्वत्र इस जगत्में दुःख ही दुःख है। तब क्या करना है? जो होता हो, सो होने दो। मोह तजो और अपने आत्मा भगवान् पर निगाह रक्खो, सब अशान्ति दूर होगी। यह न कर सके तो फिर शान्तिका उपाय न बनेगा।

व्यर्थके ऊधमका पछतावा— कोई एक सन्यासी महाराज थे। वे एक नदी पार करके किसी गावको जा रहे थे। सो नदी पार करके तीरपर वह गाव था। वहा पानी पीने चले गए। तो जैसे जो भेषधारी होते हैं, सन्यासी होते हैं उन्हें रातविरात छने अनछने पानीका कोई विचार नहीं होता है। यों वे सन्यासी जी पानी पीने चले गए। वहा जो एक स्त्री कुवे पर पानी भर रही थी, उस पर मोहित हो गए। जिससे पानी पिया था अब उसे रख लिया। अब सतान हो गई, खूब घर भर गया। वे घूमते-घामते कहींके कहीं पहुचे। अपने जीवनका गुजारा तो चलाना ही था। सो उसी नदीको पार करके सपरिवार सभी लोग जाने लगे। नदीमें बाढ़ आयी तो सभी बह गए, सिर्फ सन्यासी जी बच गए। उस नदीके किनारेके गावके उसी कुंवे पर पहुचने पर सन्यासी महाराजको याद आया कि यहां ही एक स्त्रीसे परिचय हुआ था और जिसके कारण अनेक खटखट करने पड़े और वे कोई भी अब नहीं रहे, केवल हम ज्योंके त्यों हैं। और इस बीचमें जो

पाप किया थे, कर्म बाधे थे वे मुफ्तमें बांधे हैं। ऐसी ही यहां सबकी दशा समझिये। ये सब संसारी जीव अपनी इच्छाके अनुकूल अनेक आरम्भ और विडम्बना मचाते हैं, दुःखी होते हैं और अन्तमें वहीके वही जैसे आये, वैसे ही चले गए। बल्कि जब आये थे तो मुट्ठी बांधकर आये थे। अब जब मरण हुआ तब हाथ पसारे जाना पड़ा। जब बच्चा पैदा होता है तो मुट्ठी बांध हुए पैदा होता है। कविके शब्दोंमें मानों वह पुण्य बांधकर आता है और जब जाता है तो सब कुछ खोकर हाथ पसार कर जाना है।

ज्ञानियोंके मार्मिक प्रश्नोत्तर— एक बार कोई जैन मुनि श्रावकके घर आहार करके बैठ गये दो चार मिनटको। बैठते ही हैं प्रायः, सो वहां सेठ की बहूने पूछ दिया कि महाराज ! आप इतने सवेरे क्यों आ गए ? महाराज बोले— बेटी समयकी कुछ खबर न थी। अब सेठ सुनकर बड़ा हैरान हुआ कि यह भी गड़बड़ बोल रही है और महाराज भी गड़बड़ बोल रहे हैं। फिर महाराजने पूछा— बेटी तुम्हारी उमर कितनी है ? तो बहू बोली— महाराज ! हमारी उमर है ४ वर्षकी। और पतिकी उमर कितनी है ? चार माहकी। तुम्हारे स्वसुरकी उमर कितनी है ? महाराज ! स्वसुर तो अभी पैदा ही नहीं हुए।। अच्छा तुम ताजा खाती हो कि बासी ? महाराज ताजा कहां धरा है ? सब बासी ही बासी खा रहे हैं। सेठ सारी बातें सुन कर दंग रह गया। मुनि महाराज तो चले गये। अब सेठ बहुको डाटने लगा कि इतने आदमियोंके सामने तू ने ऐसी बेवकूफी भरी बातें कीं। सब लोग यही कहेंगे कि इनके घर बेवकूफ बहुयें बसती हैं। तो बहू बोली— पिताजी ! महाराजके ही पास चलो, वहां सब निर्णय हो जायेगा। तो वहा जाने पर क्या निर्णय निकला, सो सुनिये।

धार्मिक मार्मिक प्रश्नोत्तरोंका विवरण— बहूने जो पूछा था कि तुम इतने सवेरे कैसे आ गए तो उसका मतलब था कि इतनी छोटी अवस्थामें इस मुनिपदमें कैसे आ गए ? ये मुनि थे २०, २२ वर्षकी अवस्थाके। तो मुनि महाराजने कहा कि बेटी समयका ध्यान न था। मतलब मुझे उमर का कुछ ध्यान नहीं था, न जाने कब मृत्यु हो जाये ? और जो बहूने कहा था कि हमारी उमर ४ वर्षकी है तो उसका अर्थ यह निकला कि बहुको ४ वर्षसे धर्ममें श्रद्धा हुई। जबसे धर्ममें श्रद्धा हुई, तबसे ही वह अपना जीवन मानती है और पतिकी उमर चार माह, इसका अर्थ क्या निकला कि पतिको ४ माहसे धर्मकी श्रद्धा हुई। और स्वसुर साहब अभी पैदा ही नहीं हुए, इसका मतलब क्या निकला कि स्वसुर साहब को अभी भी धर्मबुद्धि नहीं जगी है। स्वसुर साहब मन ही मन कुढ़ते जाते थे। मुनि महा-

राजसे सेठने कहा कि मैं इतना बूढ़ा हो गया और मुझे यह बहू बताती है कि श्वसुर जी अभी पैदा ही नहीं हुए। तो बहूने कहा—देखो ये अभी लड़ रहे हैं, अभी भी इनकी समझमें नहीं आता तो इन्हें पैदा हुआ कैसे कहा जाये? और ताजा खाते कि बासी? इसको बहुने बताया था कि ताजा कहा धरा है, सब बासी ही खाते हैं। इसका अर्थ क्या निकला कि पूर्व भव में जो पुण्य किया था। उसकी कमाई खा रहे हैं। नई कमाई कुछ नहीं कर रहे हैं तो यह बासी ही तो खा रहे हैं। तो जब धर्ममें चित्त लगे तभीसे अपना जीवन समझना चाहिए। इन वैभव समागमोंमें हर्ष माननेसे तो केवल क्लेश ही क्लेश है।

जीवनका खेदोंसे निर्माण— इस जीवनमें सुख है कहा? सर्व परिस्थितियोंमें इसको क्लेश ही क्लेश है। जहा खेद न हो उसीका तो नाम सुख है। श्वास लेना हो तो खेद होता है। जब तक श्वास है तब तक ही जीवन समझना चाहिए। तो जीनेमें सुख नहीं रहा। यह तो शरीरकी बात है। फिर सारी जिन्दगीमें रोज-रोजके कितने कष्ट हैं? मरणके समयके क्लेश देखो—जैसे सुनार लोग चादीके तार छेदोंमें से खींचते हैं ताकि तार पतले हो जायें, इस ही प्रकार मरण समयमें ये जीवप्रदेश खिचते हैं तो बड़ा कष्ट इस जीवको होता है। खैर, यह भी कुछ कष्ट नहीं है। महाकष्ट तो मोहका होता है। हाय, इतनी मेहनत करके लाखोंकी सम्पदा जोड़ी और यह सब छूटा जा रहा है, इस तरहका उपभोग होनेसे महान् क्लेश होता है इस मोही जीवको तो अब कहा सुख मिला? जन्ममें सुख नहीं, बचपनमें सख नहीं, जवानीमें सुख नहीं, बुढ़ापेमें सुख नहीं। कहा सुख है?

परोपकारमें भी ज्ञानियोंका स्वोपकारका लक्ष्य— भैया! और सोचो— हम कौनसा ऐसा काम करें जिसको देखकर सब राजी हो जायें? है क्या कोई ऐसा काम? २० राजी होंगे तो १० बुरा कहने वाले भी होंगे। उपकार करना, नेतागिरी करना, शासन चलाना, कुछ भी काम करो पर चन्द्र लोग तो नाराज ही रहेंगे, कुछ लोग राजी भी रहेंगे। उपकार करनेका प्रयोजन यह रहना उचित है कि मेरा चित्त कहीं दूषित विषयवासनामें न भटक जाये। इसलिए परका उपकार करना चाहिए। अर्थात् परके उपकारमें निजका उपकार भरा है। अपने ही भलेके लिए ज्ञानी जीव दूसरोंका उपकार किया करते हैं। इसी कारण दूसरोंका उपकार करके ज्ञानी उन पर ऐहसान नहीं लादता, जबकि अज्ञानी जीव वक्त मौके पर उन्हें ताना मारते हैं। हम तुम्हारे उस समय ऐसे काम आये, पर ज्ञानी जीव ताना क्यों नहीं मारते, क्योंकि उन्हें यह विश्वास है कि

मैंने जो दूसरोंका उपकार किया है, सो खुदकी भलाई के लिए दूसरोंका उपकार किया है। यहां तो जीवनमें समस्त परिस्थितियोंमें दु:ख ही दु:ख हैं। तब बतलावो सुख कहासे होय ? इस शरीरका सम्बन्ध ही दु:खका कारण है, तब एक ही उपाय है इस देहसे नेह छोड़ना और वीतराग ज्ञानस्वरूप पदमें अपनी रुचि करना। यह ही सुखका उपाय है। मोह ममतामें तो नियमसे क्लेश ही क्लेश भरा है। इस कारण समस्त समागमों का मोह तजे और अपना जो सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है, उस आत्मामें अपनी प्रतीति करें, इससे ही शान्ति प्राप्त होगी।

जन्मतालद्रुमाज्जन्तुफलानि प्रच्युतान्यधः।
अप्राप्य मृत्युभूभागमन्तरे स्युः कियच्चिरम् ॥७४॥

प्राणियोंकी वाञ्छा व प्रयत्न— ससारके जितने भी प्राणी हैं उन सब के एक ही वाञ्छा है—दु:ख दूर हो और सुख मिले। सभी प्राणी इसका ही प्रयत्न करनेमें लगे हुए हैं कि किसी प्रकार दु:ख दूर हो। जो भी कार्य किये जाते हैं—व्यापार करना। साधु होना, और जितने भी सेवा परोपकार नेतागिरी तपस्या आदिके कार्य किये जाते हैं, वे सभी शान्तिके अर्थ किए जाते है, किन्तु आज यह सोचना है कि हमने अनादिसे लेकर अब तक शान्तिके लिए भरपूर प्रयत्न किया, किन्तु शान्ति प्राप्त नहीं हुई। इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि शान्तिका यथार्थ उपाय नहीं किया।

प्राणियोंकी अतीत दशा— देखिये यह जीव अनादिसे तो निगोदमें बसता चला आया है। जहां एक श्वासमें १८ बार जन्म और मरण करना पड़ता है। वहासे निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति हुआ, वहा भी दु:ख सहे। वहासे निकला तो कीट पतगा दो इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार इन्द्रिय यों विकलत्रयमें उत्पन्न हुआ। यहा भी अनेक कष्ट हैं। कभी पचइन्द्रिय हुआ तो मनके बिना अज्ञानी रहा। कभी मन वाला पञ्चेन्द्रिय हुआ। जैसे देव मनुष्य नारकी और पशुपक्षी तो यहा भी इस जीवने विषयकषायोंमे ही जीवन गँवा दिया।

जीवनका अल्प समय— और फिर देखिये, जैसे कोई ताडके पेड़से फल गिरे, नारियलके पेड़से फल टूटकर गिरे तो गिर कर वह जमीन पर ही तो आयेगा। गिरनेके बाद जमीन पर आने के बीचका कितनासा समय रहना है। ऐसे ही जानो कि जन्मरूपी वृक्षसे निकल कर यह जीव मरणरूपी भूमिमें ही तो आयेगा। अब बीचमें कितने समय तक यह जीवित रहेगा ? इतना तो अल्प समय है हम आपका। ये १०, २०, ५० वर्ष क्या कुछ गिनती भी रखते हैं ? अरे इस बड़े समुद्रमें एक बूँदकी तो कुछ गिनती है।

जायेगी। पर इस अनादि अनन्तकालमें इस थोडे से समयकी कुछ भी गिनती नहीं है। करोड़ों वर्षको भी किसी मापमें नहीं कहा। इतना तो हम आपका अल्प समय है और फिर इतने दिन जीकर अन्तमें मरण ही होगा। लोग यहां भी सोये हुए हैं मोहकी नींदमें। रात दिन उस ही का विकल्प बनाते हैं।

परके झुकावमें शान्तिकी असभवता— अहो, यह प्रभु समान भगवान् आत्मा व्यर्थमें ही परविषयक प्रीति करके आशा बनाकर परतंत्र और दु:खी हो रहा है। इसके दु:खको कौन मेटेगा? इसे स्वय ही मिटाना पड़ेगा। किये तो बडे प्रयत्न शान्तिके लिए, पर शान्ति नहीं मिली। इसका कारण यह है कि शान्तिका मार्ग और कुछ है और उसे सक्षिप्त भाषामें कहो तो यह है कि शान्तस्वभावी जो निज अतस्तत्व है, निज स्वरूप है उसकी ओर दृष्टि दो। अपनेको ऐसा मानों कि मैं आनन्दमय तो अपने आप ही हू, मैं जब अपने में नहीं ठहर पाता, किसी परजीवके प्रति, परपदार्थके प्रति आशा करने लगते हैं तो चूँकि वे परपदार्थ पर ही हैं, उनका परिणमन मेरे विचारके कारण नहीं होता। वे जब रहेंगे रहेंगे, जब जायेंगे जायेंगे, किन्तु परकी आशा कर रक्खी है, इस कारण दु:खी होना ही पडेगा। परपदार्थों की ओर झुकाव करके कोई भी जीव शान्ति नहीं पा सकता है।

धर्ममार्गकी सुविधा— भैया! देखो सुविधानुसार समय-समय पर भव्य जीवोंके भाग्यसे तीर्थके प्रणेता नायक होते रहे हैं। आज जिनका तीर्थ चल रहा है अर्थात् जिनके बताये हुए मार्गपर चल रहे हैं, वे थे भगवान् महावीर। इससे पहिले २३ तीर्थंकर और हो चुके हैं। जिनकी यह धारणा है कि जैन-धर्म महावीर स्वामीसे चला है उनकी यह धारणा बिल्कुल गलत है। यह धर्म अनादि अनन्त प्रवाहसे चला आ रहा है। महावीर स्वामी तो २४ वें तीर्थंकर थे। इससे पहिले २३ तीर्थंकर और हुए हैं, जिनमें आदि तीर्थंकर ऋषभदेव हुए हैं, जिनका जिक्र ८ वें या १० वें अवतारके रूपमें लोकप्रसिद्ध है। प्रत्येक चतुर्थकालमें तीर्थंकर उत्पन्न होते आये हैं। विदेह आदिक जो क्षेत्र हैं, उनमें सदैव तीर्थंकर होते रहते हैं।

प्रवर्तमान तीर्थ— ठीक है, ये तीर्थके प्रणेता सर्वत्र होते हैं, पर हम महावीर भगवान्की क्यों अधिक भक्ति करते हैं? उन्होंने ऐसा उपदेश दिया है कि जिस पथ पर हम चले, उसमें नियमसे शान्ति मिलती है। शान्तिके लिए ही भगवान् महावीरका उपदेश है। तब हम ऐसे अभीष्ट तत्त्वरत्न को पाकर क्यों न उनके प्रति न्यौछावर हो जायें? प्रभु जिनेन्द्रका उपदेश है कि वस्तुके स्वरूपका यथार्थनिर्णय किए बिना कोई जीव शान्तिके मार्गको

पा नहीं सकता और उसका यथार्थ निर्णय होगा स्याद्वादसे। जैन धर्ममें ऐसी कौनसी विशेषता है जो हमें अपूर्व मिली हो व हमें खोजने पर अन्यत्र कहीं नजर नहीं आये? वह सबसे बड़ी विशेषता है वस्तुस्वरूपके प्रतिपादन की। वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन स्याद्वादकी शैलीसे करने पर ही यथार्थ हो सकता है। क्या चीज है स्याद्वादकी बहुत मौलिक बात कही जा रही है। जिस विषयके समझनेके बाद और उस रास्ते से वस्तुस्वरूपके निर्णयके बाद मोह न रहे, इसीसे शान्ति होगी।

मोहविनाशका उपाय— मोह दूर करने का उपाय यही है कि हम जान जायें कि प्रत्येक पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं। किसी पदार्थपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं है। मैं केवल अपने ही स्वरूपमें हूं, मैं दूसरेका कर्ता भोक्ता नहीं, अधिकारी नहीं, स्वामी नहीं। स्वतन्त्रताका भान हो तो मोह क्यों कर बढ़ेगा? वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन स्याद्वादसे महावीर प्रभु ने बताया है। स्याद्वादका अर्थ है अपेक्षावाद। अपेक्षा लगाकर स्वरूप बताना सो स्याद्वाद है। जैसे किसी पुरुषका परिचय कराया जाय तो परिचय करने वाला कहता है कि यह अमुकका पिता है, अमुकका पुत्र है, अमुकका मामा है। एक आत्मामें कितने रिश्ते थोपे जा रहे हैं, किन्तु अपेक्षा लगाकर समझना यह शका न करना कि वाह इस पुरुषको पिता भी कह दो, पुत्र भी कह दो, यह कैसे हो सकता है? वह तो कोई एक होगा। लेकिन यह न भूलिएगा, अपेक्षा ले करके जो बात कही जाती है वह निर्णयरूप होती है, याने अमुक का यह पिता ही है, ऐसा नहीं कि अमुकका पिता भी है, ऐसी भी कहेंगे तब इसमें तो लड़ाई हो जायेंगी, इसका पिता भी है तो क्या उसीका पुत्र भी हो जायगा? अपेक्षा लेकर बडे निर्णयके साथ बोलना चाहिए कि इस अपेक्षा से ऐसा ही है। इसका रूप "स्यात् अस्ति एव" इस ढगसे बताया गया है।

पानीमें मीन प्यासी— जरा अपने आपके बारेमें तो सोचो कि मैं कैसा हू? अपने आपका उत्तर भी स्याद्वादकी पद्धतिसे आयेगा। प्रथम तो हैरानी की बात है कि जैसे लोग कहते हैं— पानीमें मीन प्यासी। कितने अचरजकी बात है? एक गुरु महाराज थे। उनके पास कोई भक्त गया। भक्त बोला— महाराज! मुझे ज्ञान नहीं है, सो कुछ ज्ञान दे दीजिए। गुरु ने बताया कि अमुक नदीमें अमुक जगह मगर रहता है, उसके पास जावो, वह तुम्हें ज्ञान देगा। यह एक कथानक है। गया वह मगरके पास। बोला— मगरराज! मुझे गुरुने तुम्हारे पास भेजा है, मेरे पास ज्ञान नहीं है, सो कुछ ज्ञान दे दीजिए। तो मगर बोला— भाई! मुझे बड़ी प्यास लगी

है। तुम्हारे पास लोटा डोर है, कुंवेसे पानी भर लावो, पी लें, फिर हम तुम्हें ज्ञान दें। तो पुरुष कहता है कि मुझे तो बडे आचार्यने तुम्हारे पास भेजा है, मगर तुम तो बेवकूफ मालूम पडते हो। तुम पानीमें तो डूबे हुए हो और कहते हो कि मुझे प्यास लगी है। तो मगर बोला— इस ही तरह तुम भी मूढ़ हो। अरे! तुम स्वयं ही पूर्ण ज्ञानमय हो, तुममें लबालब ज्ञान भरा हुआ है, फिर भी कहते हो कि मुझे आत्माका ज्ञान नहीं है। मुझे ज्ञान करा दीजिए। पानीमें मीन पियासीकी तरह हम सबकी बात भी हंसनेके लायक है। हम आप भी ज्ञानमय हैं, ज्ञान और आनन्दकी हम आपमें कोई कमी नहीं है, अधूरापन नहीं है, लेकिन बन रहा है मूढ़।

सम्यग्ज्ञान, आत्मविश्राम और निर्वाण— हम लोग जन्म लेते हैं, मरण करते हैं, भोग भोगते हैं, दुःखी होते हैं, सारे क्लेशोंका बोझ लादे चले जा रहे हैं। यह बोझ एक सम्यग्ज्ञानके बिना दूर नहीं हो सकता। तो अब अपने आपमें साहस लावो— यह मैं जीव हू और सदा रहने वाला हू, इस कारण द्रव्यदृष्टिसे नित्य हू, इस लोकमें प्रति समय कुछ न कुछ अपने रूपसे बदलता रहता हू, शुद्ध पर्यायमें यही आत्मा प्रति समय नवीन पर्याय करता है, इससे पर्यायदृष्टिसे अनित्य हू। जैसा मेरा स्वरूप है तैसा समस्त जीवोंका स्वरूप है, इसलिए मैं एक हू। आत्मा एक है, किन्तु अनुभव सबका अपना-अपना जुदा जुदा है। इस कारण सब भिन्न-भिन्न अनेक हैं। ज्ञान करते जाइए। तात्त्विक बात स्याद्वादके सहारे मिल सकती है और अन्तमें फिर उस विकल्पका भी परित्याग करके परम विश्रामसे रह जायेगा तो इसे निर्वाणका मार्ग मिलेगा।

स्याद्वादसे वस्तुनिर्णय— प्रभु महावीर स्वामीने अपने उपदेशमें एक तो स्याद्वादका सहारा लेनेको कहा है। एकान्तका सहारा मत लो, किसी एक धर्मकी हठ मानकर मत रहो। देखो सब धर्मोंमें समन्वय कर सकने वाली कोई कला है तो स्याद्वादकी है। आज धर्मके नाम पर अनेक झगड़े फिसाद होते हैं, लेकिन स्याद्वाद सब विवादोंको मिटाता है। जैसे अंधे चार पुरुष चले। रास्तेमें एक हाथी पड़ा था, उसे चारों अंधे टटोलने लगे और हाथीका स्वरूप बताने लगे। जिसके हाथमें पेट आया, वह कहता है कि हाथी बडे डीलडौलका होता है, जिसके हाथमें पैर आया वह कहता है कि हाथी खम्भा जैसा होता है, जिसके हाथमें सूंड़ आयी वह कहता है कि हाथी मूसल जैसा होता है और जिसके हाथमें कान आये वह कहता है कि हाथी सूप जैसा होता है। वे परस्परमें झगडने लगे। एक कोई समझदार व्यक्ति आया। कहा— भाई, क्यों झगड़ते हो? तो उन्होंने सारा

हाल बताया। उसने कहा सुनो— तुम मत लड़ो। सब लोग सच कहते हो, पैरोंकी दृष्टिसे हाथी खम्भा जैसा है, पेटकी दृष्टिसे वडे ढोलक जैसा है, सूँड की दृष्टिसे मूसल जैसा है और कानकी दृष्टिसे सूप जैसा है। तुम मत लड़ो, सब लोग ठीक कहते हो। ऐसे ही पदार्थोंके स्वरूपके बारेमें अनेक सिद्धान्त हैं। अपनी अपनी बात सभी रख रहे हैं। जैन धर्म कहता है, स्याद्वाद कहता है कि भाई तुम परस्परमें एक दूसरेसे क्यों झगड़ते हो? अपनी-अपनी दृष्टिसे समझ लो। हम इस दृष्टिसे ऐसा कह रहे हैं, ये दूसरे अपनी दृष्टिसे ऐसा कह रहे हैं।

नयदृष्टिसे दर्शनोंका अविरोध— जैसे वेदान्तमें कहते हैं कि आत्मा ध्रुव अपरिणामी है, उसमें कोई दशा नहीं होती है, उसका कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। उसके विरोधमें बौद्ध दर्शन कहता है कि आत्मा तो क्षण-क्षणमें नया-नया होता है, वह दूसरे समयमें अपना अस्तित्व नहीं रखता। अब ये दो परस्परके वडे तगडे विरोध हैं—वेदान्त और बौद्धके। स्याद्वाद उन दोनोंका यथार्थ समन्वय कराता है, भाई ठीक कह रहे हो। यह वेदान्तीका आत्मा अपने सत्वसे शाश्वत है। अपने स्वभावका कभी परिवर्तन करता ही नहीं है, यह प्रतिभासात्मक है तो अनेक भवभवान्तर होकर भी, कर्म और शरीरके सम्पर्कमें रहकर भी यह प्रतिभासात्मक ही रहा। इसने अपना स्वरूप तजकर अन्यका रूप नहीं रक्खा। ठीक कह रहे हो वेदान्ती भाई तुम बौद्धोंका क्यों विरोध करते हो? ये बौद्ध एक दृष्टिसे उसे क्षणिक कह रहे हैं, किन्तु कोई भी जो पदार्थ होता है वह पदार्थ इस समयमें जिस दशाको लिए हुए है, वह दशा अगले समयमें नहीं रहती। इस कारण पर्यायदृष्टिसे जीव अनित्य है। यों दर्शनका बहुत बड़ा विस्तार है। उसका समाधान, समन्वय, प्रेम, संगठन, धर्म और दर्शनकी नीतिसे सब स्याद्वादमें बताया गया है।

मोक्षमार्गका प्रतिपादन— पहिली विशेपता जैनदर्शनकी स्याद्वाद है और फिर दूसरी विशेपता मोक्षमार्गकी है। भाई तुम्हें मोक्ष दिलाना किसको है? अपने आपके आत्माको। तो पहिले अपने आपके आत्माको सबसे न्यारा अपने स्वरूपमात्र, जो कि स्याद्वादका निर्णय है वैसा श्रद्धान करें, और अपने ही स्वरूपमें रमण करें, यही है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र। यही मोक्षका मार्ग है।

प्रभुका मूल उपदेश— प्रभुका मूल उपदेश है मोह मत करो। गृहस्थी का काम मोह बिना चल सकता है। हां, राग बिना नहीं चल पाता। मोह और रागमें बहुत अन्तर है। यों समझिये जैसे कोई रोगी पुरुष औषधिसे

राग तो करता है, समय पर औषधि न मिले तो झुंझला जाता है; और के लिए पैसा भी खर्च करता है। उसे औषधिसे राग तो है, पर मोह नहीं है। वह रोगी यह नहीं चाहता कि जीवन भर मुझे ऐसे ही दवा पीनेको मिलती रहे और मरनेके बाद भी भव भवमें ऐसी औषधि मिले। वह औषधि पीता है औषधिसे छुटकारा पानेके लिए, रोगसे मुक्त होनेके लिए। ऐसे ही जो सद्गृहस्थ हैं, ज्ञानी पुरुष हैं वे कदाचित् राग करते हैं, पर रागसे राग नहीं करते हैं। इस रागसे हटनेका मनमें संकल्प बना हुआ है। मोह मत करो, सुखी होना चाहते हो तो।

विविक्त अन्तस्तत्त्वकी रुचिमें जीवनका लाभ— भैया! जगत्में नाना जीव हैं, वे सब अपने आत्मासे भिन्न हैं, उनमें क्यों यह व्यामोह करते हो कि यह तो मेरा है और यह पराया है। सभी जीव मुझसे पर हैं—ऐसा निर्णय रखो। फिर जगत्में जितने भी जीव हैं वे सब कभी न कभी अपने कुटुम्बी हुए हैं, भाई बन्धु हुए हैं। किससे द्वेष करते हो, किससे मोह करते हो? अपने आपके यथार्थस्वरूपको निरखो तो तुम्हें शान्तिका मार्ग मिलेगा। देखो यह मनुष्यजीवन बड़ी कठिनाईसे मिला है। यह जीवन कितनी देरका है? जैसे पेड़से फल गिरा तो वहासे तो टूट गया और जमीन पर आ गया, इसमें कितनी देर लगती है? करीब एक सेकेन्डका ही समय लगा होगा, ऐसे ही एक जन्मसे तो यह जीव निकलता है और मरणकी भूमि पर जा रहा है तो बीचका जीवन उस टूटे फलका जैसा है, थोड़ासा है। इस अल्पजीवनको यदि ज्ञान और वैराग्यमें बितायें तो हम बड़ा लाभ ले सकते हैं।

धर्मके बिना मनुष्योंकी पशुवोंसे अविशेषता— अरे भैया! विषय-कषायोंमें ही इस जीवनको गँवा दिया तो बतावो पशुवोंसे फिर हम आपमें कौनसी विशेषता हुई? कविजन कहते हैं— अहार, निद्रा, भय, मैथुन ये जैसे पुरुषोंमें हैं, तैसे ही पशुवोंमें भी हैं। कौनसी विशेषता है पुरुषोंमें? एक धर्मकी विशेषता है। यदि धर्महीनत्व हो पुरुषमें तो मनुष्य और पशु दोनों ही समान हैं। ठीक है, किन्तु एक एक दृष्टिसे देखो तो धर्महीन मनुष्य पशुवोंसे भी गया बीता है। प्रथम तो यों देखो कि पशुवोंका पेट भरा हो तो वे भोजनको जरा भी ग्रहण नहीं करते, पर यह मनुष्य पेट भी भरा हो तो भी चाट पकौड़ी खानेके लिए कुछ न कुछ जगह निकाल लेते हैं। बहुत अच्छी लस्सी या कोई पेय पदार्थ दिख जाये तो पेटमें जगह निकल ही आती है। आहारके मामलेमें भी पशु तो संतोष कर लेंगे, पर यह मनुष्य संतोष नहीं करता। भयकी बात देखो— पशुवों पर कोई

लाठी लेकर आये तब ही भय खाते हैं, मगर यह मनुष्य तो गद्दा तक्की पर बैठा हुआ भी हो, बडे ठंडे मकानमें आरामसे बैठा हुआ भी डरा करता है। कहीं व्यापार फेल न हो जाय, कहीं सरकार छुड़ा न ले, इस प्रकार का भय बना रहता हैं। कभी पशुवोंको सोता हुआ भी आपने न देखा होगा। वे सोते हों तो थोड़ी सी आहट पाकर जग जाते हैं। यहां मनुष्यको तो हिला कर जगाना पड़ता है। मैथुनकी बात पशुवोंमें १२ महीनेमे किसी नियत ऋतुमें होती है, पर इस मनुष्यके तो सदैव वासना चलती रहती है। तो इस दृष्टिसे धर्महीन मनुष्य पशुओंसे समान है।

धर्महीनतामे हीनता— और भी देखिये एक दृष्टिसे धर्महीन मनुष्य पशुवोंसे भी गया बीता है। कोई उपमा देता है मनुष्यके किसी अङ्गकी व क्रियाकी तो पशुसे देता है। इसका गला कोयलकी भाति है, इसकी नाक सुवाकी जैसी है, इसकी चाल हंसकी जैसी है, यों अनेक उपमाये पशु और पक्षियोंसे दी जाती हैं। तो जिसकी उपमा दी जाय वही तो बड़ा हुआ, यों मनुष्यसे पशु बड़ा हुआ। मनुष्यकी विशेषता केवल धर्मसे है।

मोह परिहार और धर्मपालन— भगवान् वीर प्रभुका यह संदेश है कि मोहको त्यागो और धर्म करो। मोह त्यागनेका अर्थ है, परवस्तुको अपना न मानना। धर्म करनेका अर्थ यह है कि सबसे न्यारे केवल ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मस्वभावको देखो, उसमें ही प्रसन्न रहो और समग्र परवस्तुवोंकी चिन्ताओं को त्याग दो। किसी क्षण तो ऐसी स्थिति बनावो। वहा जो एक अद्भुत विश्राम होगा। बस प्रभुताके दर्शन होंगे, शान्तिका मार्ग मिल जायेगा। तो वीर प्रभुका मुख्य उपदेश यही एक है कि स्याद्वादका सहारा लेकर वस्तुका स्वरूप जानों और मोहको त्याग दो। अपने आपकी ओर लगन हो तो यह उपाय हमारी शान्तिका कारण होगा। विषयसाधनोंका सचय करनेकी कल्पना न बनावो। ये सब अशान्तिके ही कारण हैं। ऐसे हितकारी उपदेशसे अपनी आखें खोल दो, अपनेको शान्तिके मार्गमे लगा प्रभुके प्रति किसकी भक्ति न जगेगी ? उन महावीरस्वामीको सहर्ष वन्दन हो।

क्षितिजलधिभि सख्यातीतैर्बहि॰ पवनैस्त्रिभि॰।
परिवृतमत॰ खेनाधस्तात् खलासुरनारकान्॥
उपरि दिविजान् मध्ये कृत्वा नरान् विधिमन्त्रिणा।
पतिरपि नृणा त्रातानैको ह्यलघ्यतमोऽन्तक॰॥७५॥

उपायोंकी मरणनिवारणमें विफलता— यह मनुष्य आयुक्षयके क्षणमें किसी भी प्रकार रक्षित नहीं रह सकता। लोग अपनेको सुखमय जीवित बनाये रहनेके लिए कितने उपाय रचते हैं? धनका सचय, मकान दृढ बनाना

मन प्रिय गोष्ठी सुदृढ़ रखना, अनेक उपाय करते हैं। कोई-कोई तो अपनी मृत्युपर विजय पानेके लिए मृत्युञ्जय आदि जाप कराया करते हैं, फिर भी यह मनुष्य अन्तमें किसी भी विधिसे बच नहीं सकता।

मनुष्यनिवासकी प्राकृतिक रक्षारचना— सैद्धान्तिक दृष्टिसे जहाँ हम आपका निवास स्थान है उसको नजरमें रखकर सुनिये—गुणभद्र आचार्य बता रहे हैं कि देखो इस मनुष्यकी रक्षाके लिए कर्मरूपी मंत्रीने कितने-कितने यत्न किए हैं, फिर भी यह बच नहीं सकता। इसमें लोक-रचना आ गयी है। आजके लोग जितनी दुनिया मानते हैं वह इस समस्त लोकके आगे समुद्रके बूँद बराबर भी नहीं है। यह लोक ३४३ घनराजू प्रमाण विस्तृत है। जैसे ७ लडके एकके पीछे एक करके खड़े कर दिये जायें, सबके सब पैर पसारे हुए अपने हाथ कमर पर रक्खे हो तो उस समय जो सकल बनती है वही शक्ल लोककी है। अब उसमें देखिये बीचके चौथे नम्बरके बालकके स्थानमें ठीक सिरसे लेकर नीचे तक जितना कि चौड़ा गला होता है उतनी ही चौड़ी एक लकीर मान लो। उतनेको त्रसनाली कहते हैं। इस त्रसनालीके बाहर जितने भी और स्थान हैं उनमें केवल एक इन्द्रिय जीव ही रहते हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंच इन्द्रिय जीव ये त्रसनाली स्थानमें रह रहे हैं। इसके बाहर त्रस जीव जन्म नहीं लेते हैं। उस त्रसनालीमें भी ठीक मध्यका स्थान जैसे कि नाभि है, उतनेके आसपास एक थोडासा कम एक राजूप्रमाण मध्यलोक है। बाकी तो इसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है और उससे नीचे अधोलोक है। अधोलोक में तो नारकी जीव रहते हैं, ऊर्ध्वलोकमें देव रहते हैं और सबसे अन्तमें सिद्ध भगवान् रहते हैं। कैसे सुरक्षित मध्यलोकमें मनुष्यकी रचना है, फिर भी यह सुखी नहीं, अमर नहीं, ऐसा निरखिये।

नरलोक के चारों ओर असंख्यातों प्राकृतिक कोट खाइयां— मध्य लोकका आकार इतना ही समझिये कि नाभिकी जगह तो मेरू पर्वत है और उसके चारों ओर गोल-गोल जितनी कि दृष्टान्तमें गले की चौड़ाई है, उतनी चौडाई मात्रमें असख्यात द्वीप और समुद्रकी रचना है। उसमें जम्बूद्वीप सबसे बीचमें है। वह एक लाख योजनका लम्बा चौड़ा है। उस जम्बूद्वीपको चारों तरफ घेरकर लवण समुद्र है, जिसकी चौड़ाई एक तरफ दो लाख योजन है, उसको घेरकर दूसरा धातुकी खण्ड द्वीप है। जो एक-एक तरफ ४-४ लाख योजन का है। इस द्वीपको घेरे हुए एक तरफ आठ लाख योजनका विस्तारवाला कालोद समुद्र है। दूना-दूना बढ़ते जाइए। उसके बाद एक द्वीप पुष्कर वर है जिसकी चौड़ाई १६ लाख योजन है। फिर समुद्र

है, उसकी चौड़ाई एक तरफ ३२ लाख योजन है, उसको घेरकर द्वीप है और उससे दूने-दूने विस्तार वाले यों समुद्र द्वीप समुद्र द्वीप चले गये हैं। ये द्वीप समुद्र करोड़, अरब भी नहीं, शंख महाशंख भी नहीं, गिनती से परे है। गिनतीका जो अन्तिम रूप होगा उससे भी बढ़कर। उतने चौड़े द्वीप समुद्र जितनी जगहमें बन गये हैं, उतनी जगह एक राजू भी नहीं है और वह भी प्रस्तार रूपमें है। फिर एक राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा, एक राजू मोटा इस प्रकारके विस्तारको एक घन राजू कहते हैं। यों ३४३ घन राजू यह लोक है। इस समग्र लोकके बीचमें कितनी जगहमें मनुष्य हैं? केवल ढाई द्वीपमें। तो देखो इस मनुष्यको कहां बसाया गया? यह कहां उत्पन्न हुआ? असंख्यात द्वीपसमुद्र मानों इसकी रक्षाके लिए पड़े हैं। उन द्वीप-समुद्रोंके बीचमें ढाई द्वीपमें यह मनुष्य बसा हुआ है, फिर भी इसे मरणसे कोई बचा नहीं सकता।

सुरक्षित स्थानमें भी अरक्षा— इस कर्ममन्त्री ने कैसा रक्षाका साधन बनाया? कोई राजा अपना महल समुद्रके बीच किसी टापूपर बनाये तो वह अपनी रक्षाके लिए ही तो उपाय करता है। न कोई समुद्रसे तैर कर आ सकेगा, न पहाड़ोंको फाड़कर आ सकेगा। ऐसी सुरक्षाकी जगहमें राजा लोग अपना निवास बनाते हैं। इस कर्ममन्त्री ने मनुष्यका निवास कहां बनाया है? इस लोकके ठीक बीचमें। असंख्यात द्वीप समुद्रोंके मध्यमें मनुष्यका निवासस्थान है जिससे कि इस मनुष्यका जीवन सुरक्षित रहा आये, मरे नहीं। लेकिन फिर भी क्या यह जीवन रह सकता है? नहीं रह सकता है। मरण कर जाता है।

गम्भीर वातवलयोंका सुदृढ़ पहरा— पहिली बात तो इस मनुष्य लोककी ही देखिये— अनगिनते द्वीप समुद्रद्वीप इस तरहसे वेढे हुए हैं और फिर उन द्वीपसमुद्रोंके बाहर ३ प्रकारकी वातवलय है—घनवात वलय, घनोदधि वातवलय और तनुवातवलय। वातवलय मायने हैं—हवा का पुञ्ज। कोई-कोई लोग कहते हैं कि यह जमीन शेषनागपर सधी हुई है। क्यों जी यह शेषनाग यदि अपना फन टेढ़ा करदे तो फिर यह दुनिया क्या बचेगी? अरे शेषनागका अर्थ क्या है इसे ठीक-ठीक निकालो। नागमें तीन शब्द हैं— न अ और ग। तीनोंको मिलाकर नाग बनता है। ग का अर्थ है गच्छति इति गः। जो खूब चले उसके मायने हैं ग और अ लगाने से अगः। याने जो बिलकुल न चले उसका नाम अग है। अग मायने पर्वत। फिर न अग जो चले नहीं ऐसा नहीं; किन्तु चलता ही रहे उसका नाम है नाग, मायने हवा। इस नागका अर्थ हुआ हवा। और शेष नाग मायने लोकके अन्तकी शेष हवा। जिसका हम आप सेवन करते हैं, जिन्दा रहते हैं। यह हमारे

भी शेष अन्तमें बची हुई जो वायु है उसका नाम शेषनाग है। यह लोक शेषवायु पर, ३ वलयों पर आधारित है।

विधिमंत्रीकी विवशता— देखो भैया! मनुष्यको सुरक्षित रखने के लिए इस विधिमंत्री ने कहा इसका वास कराया? तीन वातवलयोंसे घिरा हुआ असंख्यात द्वीप समुद्रके बीचमें यह मनुष्य लोक है। इतनी सुरक्षाकी जगहमें तो मनुष्य पैदा हुआ है, लेकिन जब मरण समय आता है तो इसको कोई बचा नहीं सकता। और इतना भी नहीं, उस वातवलयसे बाहर अनन्त अलोकाकाश हैं, जैसे कि महाराज लोग अपने किले के बाहर खाई खोद देते हैं, ताकि कोई पार न कर सके। यों अनन्त अलोकाकाश हैं। उसके भीतर ३ वलय हैं, उसके भीतर लोक रचना है, असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, उसके मध्य ढाई द्वीप हैं, वहा मनुष्योंका निवास है। फिर भी यह मनुष्य बच नहीं सकता।

अधोलोकमें मनुष्यनिवास होने पर भी अरक्षा— लोग जिससे अपनी अरक्षा समझते हैं, अपना विघात समझते हैं उन दुष्टोंको बहुत दूर नीचे गिरा देते हैं। तो देखो इस लोकमें नरकगतिके जीव अधिक दुष्ट हैं, सो नारकियोंको अधोलोक मिला है। नारकियोंको अधोलोकमें पहुचा देने की वजहसे मनुष्यका बिगाड़ नहीं होगा, मनुष्य मरेगा नहीं। ये नारकी जीव मनुष्य पर हमला न कर दें, मानो इसके लिए इस कर्ममंत्रीने नारकियोंको अधोलोकमे पहुचा दिया, फिर भी यह मनुष्यराजा मृत्युसे बच नहीं सकता।

किसी भी परवस्तुसे अपनी रक्षाका अभाव— लोकरचनाएँ देखते हुए यह बताया जा रहा है कि मनुष्य कहा बसता है? और लोककी कैसी रचना है? फिर भी यह मनुष्य बच नहीं सकता। लोग जिन्हें अपना बड़ा समझते हैं, उनकी छायामें रहना चाहते हैं। तो लोकदृष्टिसे चारों गतियोंमें देवगति सबसे ज्यादा सुखकारी गति है। तो देखो इस विधिमंत्री ने उन देवतावोंको, इन्द्रोंको ऊपर नियुक्त कर दिया है, याने स्वर्गोंमें देव रहते हैं। तो इस मनुष्यलोकके नीचे नारकी हैं, ऊपर देवता हैं और यह मनुष्यलोक चारों तरफसे द्वीप समुद्र, वलय और आकाशसे सुरक्षित है। फिर भी यह मनुष्य मृत्यु समय आने पर रक्षित नहीं रह सकता। सबके बीचमें मनुष्योंको रक्खा है इस विधिने, लेकिन मनुष्य मरणसे नहीं बचता। इससे यह निश्चय करो कि इस मनुष्यको विधाता चक्रवर्ती आदिक कोई भी रक्षा नहीं कर सकते, और यह तो मरणके समयकी बात है। जीवनमें भी जो जैसी कल्पनाएँ मचाता है, वह उसके अनुसार दु खी होता है। उस

को इस दुनियासे बचानेके लिए कोई भी जीव समर्थ नहीं है। वही अपनी कल्पनाएँ मिटाये, शुद्ध ज्ञान बनाये तो सुखी हो सकता है।

स्वरक्षाका यत्न— सबसे पहिली कल्पना तो परवस्तुवोंसे बड़प्पन मानना और परवस्तुवोंके प्रसन्न करने, संचय करनेमें अपनी कल्पनाएँ बनाए रहना—ये ही खोटी कल्पनाएँ हैं। इसीका नाम मोह है। अरे किसी क्षण समग्र परवस्तुवोंकी कल्पनाएं त्याग कर, अपने देहको भी भूलकर केवल ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्मा भगवान्का दर्शन भी तो करिये, जिससे समग्र बोझ, समग्र संकट दूर हो जायेंगे। अपने आपका रक्षक यह आत्मा भगवान् स्वयं ही है। सुरक्षित तो है ही यह वस्तुस्वरूपके कारण। बस, इसे इतना समझ लीजिए कि यही अपना रक्षक है, मैं कभी विनष्ट न होऊँगा। चाहे कितना भी उत्पात हो, अधिकसे अधिक क्या होगा? शस्त्रसे या अन्य उपायोंसे इस देहका घात हो जायेगा, लेकिन आत्मा जो यह ज्ञानानन्दघन है, यह पूर्ण सुरक्षित है, यह एक स्थानको छोड़कर दूसरे देह स्थानको पा लेगा, पर इसका विनाश नहीं होता, और इसका ही क्या, किसीका भी विनाश नहीं है, देहका भी विनाश नहीं है।

परमार्थका अविनाश— देहमें जो अणु हैं वे हैं पदार्थ, उनका विनाश नहीं है। देह तो कोई चीज ही नहीं है। उन अणुवोंका जो एक पिंड बन गया है, आने जाने वाले परमाणुवोंका जो एक स्कंध है यह देह है। देह कोई वास्तविक चीज नहीं है। वास्तविक वस्तु तो पुद्गल परमाणु है, उन पुद्गल परमाणुवोंका वियोग भी हो जाये, इस देहको कोई जला दे, जलाकर खाक हो जाये तो भी वह अणु नष्ट नहीं होता। कुछ स्कन्ध धुवाके रूपमें पतली बन कर बिखर जायेगी, रहेंगे अवश्य कुछ स्कन्ध, राख बन जायेंगी। कोई-कोई अणु मात्रताको पा लेंगे, पर एक भी अणु नष्ट न होगा। जगत्में जो सत् है वह कभी नष्ट नहीं हो सकता। जो असत् है वह कभी पैदा नहीं हो सकता। तब सोच लीजिए कि यह व्यर्थमें ही तो मोहभाव उत्पन्न होता है और हम उसमें दुःखी रहते हैं। यह चंद दिनोंकी जिन्दगी स्वप्नकी तरह है। स्वप्नमें देखी हुई बात स्वप्नकी तरह है। स्वप्नमें देखी हुई बात स्वप्नमें झूठ मालूम नहीं पड़ सकती है? जैसे निद्रा भंग होने पर ही स्वप्नकी की बात झूठ प्रतीत होती है, ऐसे ही मोहका विनाश होने पर ही मोहमें की हुई करतूत झूठ मालूम होती है।

प्रतिक्रमणका प्रयोजन— योगीजन अपनी आत्मसिद्धिके लिए प्रतिक्रमण किया करते हैं। प्रतिक्रमणका अर्थ है लगे हुए दोषोंको मिथ्या बनाना। यह योगी जब आत्मस्वरूपका ध्यान करता है यहाँ ...

आत्मा केवल ज्ञानानन्दपुंज हूं, अमूर्त हूं, स्वभावतः इसमें प्रतिभास ही होना चाहिए। रागद्वेष अथवा अन्य उपाधियोंका सम्बन्ध इस मुझ आत्मा में नहीं है। उस शाश्वत पारिणामिक भावरूप चैतन्यस्वरूपकी सुध लेना है तो इसे यह ज्ञात होता है, ओह ! इस मुझ आत्मामें तो कोई रागादिक दोष ही नहीं हैं, फिर ये हो कैसे गये थे पहिले ? अज्ञानसे, कल्पनाओंसे। तो अज्ञान और कल्पना भी मिथ्या है। ओह ! मेरे दोष मिथ्या हों—ऐसी दृष्टिसे रखकर किए हुए दोषोंसे अपने आत्माको विविक्त कर देना और इस न्यारे शुद्ध चैतन्यस्वभावमें रमण करना यही तो प्रतिक्रमण है।

अज्ञान विपदा व ज्ञान-सपदा— इस संसारी प्राणी पर बड़ी विपदा बसी हुई है, और वह विपदा है इस कुबुद्धिकी, मोहकी। मोह न रहे, अज्ञान न रहे तो इसमें इसका क्या बिगाड़ है ? कहीं कुछ बिगाड़ नहीं है, और मोहमें सारा बिगाड़ है। घरमें रहते हुए भी जो किसीमें मोह कर के रहता है उसका वियोग होने पर उसे पागल जैसा बन जाना पड़ता है, उसका चित्त स्थिर नहीं रह सकता। वह घरमें रह रहा है, यथार्थ बात समझ रहा है, सब जीव स्वतन्त्र हैं, अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं, सबके साथ अपने-अपने कर्म हैं। जिस जीवके साथ जितने निषेक वाले आयुकर्म हैं वे उतने समय तक शरीरमें रहते हैं, पश्चात् वे शरीरको तज कर आगे किसी दूसरे शरीरको ग्रहण कर लेते हैं। ये जीव मेरे कुछ नहीं हैं, यह शरीर, ये परिजन मेरे कुछ नहीं हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान विचारमें रखते हुए प्रयोजनवश चूंकि गृहस्थीमें हैं तो सब कुछ व्यवस्था प्रबन्ध धन, दुकान सबकी बात करते हुए भी चूंकि यथार्थ ज्ञान हो गया है, इस कारण वे किसी भी परिस्थितिमें दुःखी नहीं होते हैं।

अज्ञानसे पद-पदमें कष्ट— भैया ! यदि मोह है तो उसके दुःखके लिए अनेक प्रसंग हो जाते हैं। सब कुछ है, सुविधा सम्पन्न हैं, किसी बातकी तकलीफ नहीं है, फिर भी यह कल्पना उठ जाती है कि मेरेको और अधिक धन चाहिए। यह तो न कुछ है। इतनेमें तो इस लोकमें मेरी इज्जत नहीं हो सकती है। मुझसे तो अनेक लोग बड़े हैं। मेरी शाबासी तो तब है जब मैं सबमें सिरमौर कहलाऊं। लो इतनी मात्र कल्पना भर की कि सारी जिन्दगी अब उसकी क्लेशमें ही बीतेगी। उसे आराम हो ही नहीं सकता। जिसके अज्ञान बसा हुआ है उसके तो पद-पदमें कष्ट है।

बेवकूफकी सर्वत्र फजीहत— एक पुरुष था, उसका नाम था बेवकूफ। उसकी स्त्रीका नाम था फजीहत। दोनोंमें अक्सर लड़ाई हो जाया करती थी और फिर सुलह हो जाती थी। एक दिन ऐसी लड़ाई दोनोंमें हो गई

कि फजीहत घर छोड़कर कहीं चली गयी। अब वह बेवकूफ अपनी फजीहतको इधर-उधर ढूंढता फिरे। बहुतसे लोगोंसे पूछा, पर कहीं पता न चला। एक बार किसी दूसरे गांवके किसी मुसाफिरसे पूछा कि तुमने हमारी फजीहत देखी? तो वह उसका कुछ अर्थ ही न समझ सका। उसने पूछा कि भाई तुम्हारा नाम क्या है? तो बोला हमारा नाम है बेवकूफ तो मुसाफिर बोला कि बेवकूफ होकर तुम फजीहत को क्यों ढूंढते फिरते हो? जहा ही खोटा बोल बोल दिया, वहीं लाठी घूंसे सब मौजूद हैं। बेवकूफ होकर फजीहतको कहां ढूंढना है? ऐसे ही मोही जीवोंको देखो—इसमें दुख है, इसमें सुख है, उसका सोचना सब बेकार है। मोह है तो सब स्थानोंमें दु ख है। जिसे लोग सम्पन्नता समझते हैं वहां भी दुःख है। कोई करोड़ों का भी धनी हो जाय तो भी मोह होनेके कारण उसे सुख नहीं हो सकता है। जो आज की दुनियामें करोड़पति हैं उनके संगमें कुछ समय तक रहकर देखलो, वे कितने दु खी है? उनका चित्त कभी ठिकाने नहीं रहता है।

धर्मपालनमें मनुष्यजीवनका सदुपयोग— अरे भैया! मनुष्यजन्म एक बड़ा दुर्लभ जन्म है। गृहस्थी चलाना है, पेट भरना है, कोई सुविधा रखना है तो इतने मात्रकी ही चिन्ता रक्खो, धन वैभव का सचय करके रख जाने के लिए यह जीवन नहीं है। यह नरजीवन धर्म पालनके लिए है। इसके लिए क्या संचय करना? सब जीव न्यारे हैं, वे अपने-अपने भाग्यको लिए हैं। पुत्र कुपूत हो जाय तो धनसचयसे क्या लाभ है? वह तो कुछ ही दिनोंमें उस धनको बरबाद कर देगा। पुत्र सपूत है तो धनसंचयसे क्या लाभ है? वह स्वय कमा लेगा। यह धन जिसके उदय है उसके पास रहता है। न उदय हो तो नहीं रहता है—ऐसा जानकर बाह्यवस्तुवोंकी चिन्तावो को त्याग दो और अपने जीवनको धर्मपालनके लिए समझो, पर धर्मपालन किस विधिसे होता है? केवल एक लोकरूढ़िमें हम दर्शन कर लें, कोई उत्सव मना लें और भी धार्मिक कार्य करलें, इससे धर्मपालन नहीं होता। जब तक निर्मोह निष्कषाय शुद्ध ज्ञानपुंजकी झलक न आयेगी तब तक धर्मपालन नहीं हो सकता। विश्वासमें तो यह बसाये हुए हैं कि मैं इतने परिवार वाला हू, ऐसी इज्जत पोजीशन वाला हू, इस चिन्तामें यह निरन्तर बस रहा है, तब उस केवल ज्ञानपुञ्जकी सुध कहासे हो?

श्रावकके दो कर्तव्य— जब तक सबसे विविक्त ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपका दर्शन न होगा तब तक धर्मपालन नहीं हो सकता—ऐसा दर्शन करने के लिए आवश्यक है कि अनेक प्रयत्न करके सम्यग्ज्ञानका अर्जन करें। सत्सगमें रहकर, गुरुजनोंसे सीखकर, स्वाध्याय करके अपने

ज्ञानको बढायें। ज्ञानवृद्धिके लिए और अपनी निर्मलताके लिए सुगम उपाय ये दो हैं कि रोज आधपौन घंटा, एक घंटा स्वाध्यायमें लगायें और बारह महीनेमें एक महीना घरको त्यागकर किसी सद्गोष्ठीमें जायें और वहा ज्ञान सीखें। अरे व्यर्थमें जीवन बिता देनेसे क्या लाभ ? अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करें, अपने ज्ञानबलको बढ़ायें और धर्म पालन करें।

अविज्ञातस्थानो व्यपगततनु: पापमलिनः।
खलो राहुर्भास्वद्दशशतकराक्रान्तभुवनम् ॥
स्फुरन्त भास्वन्च किल गिलति हा कष्टमपरम्।
परिप्राप्ते काले विलसति विधौ को हि बलवान् ॥७६॥

मरणसमयमें चेदखल— जब मरणका समय आता है तो उस समय किसी का भी वश नहीं चलता। एक लौकिक उदाहरण देते हैं। राहु सूर्यको ढस लेता है। वास्तवमें तो सूर्यका ग्रहण करने वालेका नाम है केतु और चन्द्रमाका ग्रहण करने वालेका नाम है राहु, पर प्रसिद्धि राहुकी है। राहु ही सूर्यको डस लेता है, राहु ही चन्द्रमाको ग्रस लेता है। असलमें ग्रसना कुछ नहीं है। चंद्रविमानके नीचे राहुका विमान आ गया तो राहु है कृष्ण वर्णका और चन्द्र है श्वेतवर्णका, उसकी रोशनी ढक जाती है। इसी प्रकार सूर्यके नीचे केतुका विमान आ जाय तो सूर्यका प्रकाश ढक जाता है। सूर्य और चन्द्र इनकी गति है कुछ तेज और राहु केतुकी गति है। मंद सो मद गतिसे चलते-चलते राहु पर जब चन्द्रमाका नम्बर आ जाता है और केतु पर सूर्यविमान का नम्बर आ जाता है तब उसे ग्रसना कहते हैं।

भूगोलमें आधुनिक मत— आधुनिक भूगोलमें पृथ्वीकी छाया उस पर पडती मानी गयी है। अब कोई दो चीजें हैं, एक चलती है एक नहीं चलती है तो चलते को न चलता मानकर और न चलते को चलता मान कर भी गणित वही बैठ जायेगा, और चलतेको चलता मानें, न चलतेको न चलता मानों तो भी गणित वही बैठ जायेगी। सो गणितमें अन्तर नहीं आया। इससे आधुनिक प्रसिद्धि यह हो गयी। दूसरी बात, जब गणितकी सही बात बैठ गयी और जमीन स्थिर है, यह बहुत प्राचीन मान्यतासे चला आ रहा है। किसीने आधुनिक बात रक्खी तो लोककी निगाहमें यह नवीन बात अधिक घर कर गई है।

अचानक विनाश— तो जैसे राहु व केतु इनका स्थान किसीको ज्ञात नहीं है। हम रातको चन्द्रमाका तो ख्याल कर लेते हैं कि यह चन्द्रमा है। जैसे चन्द्रमा पर मानो कलके दिन ग्रास होगा तो वह चन्द्रमा कलके दिन आया था। रोज वही सूर्य व चन्द्र नहीं आता है। तो जैसे पूर्णमासी

का चन्द्रग्रहण होता है तो त्रयोदशीका चन्द्र और राहुका विमान कुछ अधिक अन्तरसे न था, पर किसीने तेरसको भी राहु देखा ? उसका स्थान अविदित है। अमावसको सूर्यग्रहण होता है। जैसे अमावसको सूर्यग्रहण होगा, वही सूर्य तेरसको था। उससे २ दिन पहिले तेरस को सूर्यके कुछ ही आगे केतु विमान था, पर किसीने केतु देखा ? इसका स्थान अविज्ञात है क्योंकि वह कृष्णवर्ण वाला है और उसके शरीर नहीं है। लोग ज्योतिषमें मानते हैं कि कोई एक देवता। किसी समय किसी कारण उसके सिर का छेद कर दिया गया। राहु तो सिर और सारा शरीर बन गया केतु देवता। अब दो देवता हो गए। उस प्रसिद्धिसे बात कही जा रही है कि राहुके शरीर नहीं है, फिर भी यह अचानक चन्द्रको, सूर्यको ग्रस लेता है। पापमलिन है राहु। लोक प्रसिद्धिमें राहुको पाप माना है, क्योंकि वह चन्द्र सूर्यको ग्रस लेता है। पापसे मलिन है— ऐसा यह राहु जब सामने आता है तो सूर्य अथवा चन्द्रको ग्रस लेना है। ऐसे ही जब आयुके अन्तका समय आता है तो जीवको मरना पड़ता है, सब कुछ त्यागना पड़ना है।

होनहारके अनुसार बुद्धि परिवर्तन— एक किम्वदन्ती है कि कछुवा और हंसकी बड़ी दोस्ती थी। उस हंसकी जो भगवान्के दरबारमें रहता था और उनकी सवारीमें काम आता था। उस हंस पर भगवान् बैठते होंगे। भगवान् तो वीराग होते हैं। वे तो शुद्ध ज्ञानानन्दपुंज अमूर्त तत्त्व हैं। खैर, लोग जैसा मानते हैं उस दृष्टिसे यह कथानक कहा जा रहा है। हंस कछुवेके पास जब चाहे आये। उसी सरोवरके पास यमराज भी किसी को मारनेके लिए आया। किसी अन्यको वह मारने जा रहा था। जानेका रास्ता यही था। कछुवा देखकर उनकी कुछ हंसी करता था, तो यमराज बोले कि तू क्यों हँस रहा है ? परसों तेरी भी मौत है, तुझे भी हम ले जायेंगे। जब वह हंस आया, उस समय कछुवा बड़ा उदास था। हंसने पूछा कि तुम क्यों उदास हो ? तो उसने बताया कि यमराज यों कह गया है, वह मुझे भी ले जायेगा। तो हंस बोला—तुम घबड़ावो मत। हम देखते हैं कि वह तुम्हें कैसे ले जायेगा ? हंस उस कछुवेको बड़ी दूर जगलमें एक गुफामें उठा ले गया, और उस गुफामें ईंटें भी जोड़ जाड़कर उसका दरवाज़ा बन्द कर दिया। और हंस चला गया। हंसने कहा कि अब देखें उस कछुवेको यमराज कैसे मारेगा ? अब वहां जाने पर हंससे भगवान्ने पूछा कि आज देर कैसे हो गई ? तो हंसने कहा कि यमराज एक कछुवेके प्राण लेनेके लिए कह आया था, सो उसको छुपाकर हम जगलमें एक गुफा में रख आये हैं। देखें उसे कैसे यमराज मारेगे ? तो भगवान् बोले—ओह !

तूने बड़ा उल्टा काम किया। अरे यमराजको तो वही स्थान बताया था कि उस जगलकी गुफामें कछुवा होगा उसके प्राण लाना। वह कछुवा तो मर भी चुका होगा। हस सोचता है कि वहां न रख आता तो सम्भव है कि बच भी जाता। अब जब हसने वहां जाकर देखा तो उसे मरा हुआ पाया। हुआ क्या ? रीछ आया और ईंट उखाड़कर भीतर घुस कर कछुवे को खा गया था। सिर्फ हड्डी बचीं।

प्रासगिक दो शिक्षायें— इस किम्वदन्तीसे हमें दो शिक्षायें लेनी हैं। जब विगाड़ होता हैं, विनाश होता है तो अपना ही मित्र विनाशका कारण बन जाता है। मित्र वास्तवमें खराब नहीं होता कि मैं इसका विनाश कर दूं, पर ऐसा ही योग हो जाता है कि मित्रकी ही करतूतसे उसका विनाश हो जाता है। दूसरी शिक्षा यह लेनी है कि जो जीवित हुआ है वह तो मरेगा ही अपने समय पर। हम मरणको कहा तक रोकें, कहां तक पैर पीटें ? हाय मेरा मरण हुआ। कुछ लोगोंके ऐसा साहस होता है कि मरण आये तो भी घबड़ाते नहीं हैं। स्वतन्त्रताके प्रेमियोंके और धर्मके प्रेमियोंके अनेक उदाहरण मिलेंगे कि वे जान बूझकर सामने अड़ गए, मुझे गोली मारो, मैं तैयार हूं। अरे मर गए तो कोई बात मन में थी, किसी तत्त्वके बारेमें साहस तो था।

अकलक व निकलक धर्मप्रभावना संकल्प— भैया ! धर्म वालोंको देखो— अकलंकदेव और निकलकदेव दोनों भाई थे। जब बतायें— उनकी घटना सही-सही, अपने उपयोगमें आती है तो खेद किए बिना नहीं रहा जा सकता। दो आसू झलक ही जायेंगे। ऐसी उनकी घटनाएँ हैं। किसे धर्मवात्सल्य धर्मपालन कहते हैं और भाई-भाईका भी वास्तविक प्रेम क्या होता है ? वह सब उनकी घटनामें घटित हैं। दोनों भाइयोंको ऐसी रुचि हुई कि ससारका क्या भोग भोगना, क्या वैभवमें लिप्त रहना ? उन्होंने ब्रह्मचर्यकी ठानी और विद्याभ्यासके लिए बड़े-बड़े कष्ट सहे। बौद्धोंकी पाठशाला में भी अध्ययन किया। उनकी इतनी प्रखर बुद्धि थी कि अकलंकदेवको एक बार गुरुमुखसे सुनते ही याद हो जाता था और निकलकदेवको दो बार सुननेसे याद होता था। पाठशालामें पढ़ते-पढ़ते एक दिन स्याद्वादका प्रकरण गुरुजी पढ़ा रहे थे। जैनशासनका मुख्य अग स्याद्वाद है। किसी वस्तुकी भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे खूबियां जानना इसका नाम है स्याद्वाद। उसमें गुरुजी जरा अटक गए, अटकनेका कारण क्या था कि कोई एक शब्द अशुद्ध था। मौका पाकर अकलकने जो गलती थी उसे ठीक कर दिया। दूसरे दिन गुरुने देखा तो आश्चर्यमें पड़ गए। सोचा कि इस

अशुद्धिका ठीक करने वाला तो जैनसिद्धान्तका कोई बड़ा जानकार होगा, वही शुद्ध कर सकता है। मालूम होना है कि इन बालकोंमे कोई जैन है। इस जमानेमें बड़ा आतंक छाया था। कोई कह तो दे कि हम जैन हैं, वह जिन्दा नहीं रह सकता था। उन्हें ढूंढनेका बड़ा यत्न किया। इस यत्नमें वे वृद्ध गुरु सफल हो गए। रात्रिके समय तीन बजे सब विद्यार्थी सो रहे थे, पचासों थाली पटकी गईं, उनकी बड़ी भयानक आवाज आयी। सब बच्चे जाग गए तो अपने-अपने इष्टदेवका वे स्मरण करने लगे। अचानक मे उठकर बैठ जाने पर वे दोनों बालक अपना पंचपरमेष्ठीका जाप जपने लगे। पकड़ लिए गए वे दोना बालक। कैदमें बन्द कर दिये गए।

अकलंक और निकलंककी उदारता— कोई देवी उन्हें धर्मवीर जान कर उनकी सेवा करने आई। जेलके पहरेदार सो गए, फाटक खुल गये, अब वे दोनों बालक निकल कर बाहर चले गए। जब सवेरा हुआ तो सारा राज मालूम हुआ। चारों ओर नंगी तलवार लेकर घुड़सवार भजे गए, उनसे कह दिया गया कि जहा कहीं भी वे दोनों बालक मिलें, उनका सिर काट कर लावो। जिस समय अकलंक और निकलंकका पीछा किए हुए नगी तलवार लिए घुड़सवार जा रहे थे, उस समयका दृश्य बड़ा रोमाञ्चकारी था। अकलंक निकलकसे प्रार्थना करता है कि पहिले मुझे मरने दो, तुम कहीं छिप जावो। तो छोटा भाई निकलंक अपने बड़े भाई अकलंकसे कहता है— नहीं नहीं पहिले मुझे मरने दो, तुम तीव्र बुद्धिके हो, इस तालाबमें कमलोंके बीचमें छिप जावो, पहिले मैं मरूंगा, इसकी मैं आपसे भीख मांग रहा हूं। आखिर उस समय कुछ और अवसर न था, अकलकदेवको छिपा दिया गया, निकलंक आगे भागता गया। उसको भागते देखकर कोई धोबीका लड़का भी उसके संगमे भागने लगा। उन दोनोंके सिर काट दिये उन घुड़सवारोंने। अब देखिये— जहां धर्मप्रभावनाके बारेमें अकलंक देवका महत्त्व है वहां निकलंक देवका महत्त्व नहीं है क्या ? ऐसे-ऐसे धर्मवीर हुए हैं जिन्होंने धर्मके लिए अपने प्राण भी त्याग दिए। और यहा हम आपमें ज्ञान प्रभावना हो, स्वय ज्ञानमें समर्थ बनें, दूसरे ज्ञानमें समर्थ बनें इस ओर दृष्टि ही नहीं जगती।

मोह और शोकसे अलाभ— अहो ! यहां मोह, मोहके ही मारे काम होते हैं। धर्मके कोई कार्य करेंगे तो मोहसे भरा करेंगे। चूंकि हमारा परिवार खुश रहेगा, बच्चे खुश रहेंगे, काम अच्छा चलेगा। पुण्य करते ही रहना चाहिए। उद्देश्यके विरुद्ध हो जानेसे वह धर्मकार्य [illegible] कुछ महत्त्व रखता। मृत्यु तो म[illegible] को आयेगी। यहा हम आप जितने भी [illegible]

रहे हैं—मरण सबका होगा। यहा तक कि जो आज भी पैदा हुआ है वह भी १०० वर्षके अन्दर ही अन्दर मरण कर जायेगा, बचना किसी को नहीं है। ऐसी तो जगत्की स्थिति है। फिर अनेक विकल्प चिंताएँ मचाकर क्यों अपने आपका बरबाद किया जा रहा है? फिकरके मारे क्यों घुने जा रहे हैं? जो होना होगा वह होगा। काहेकी फिकर है? अरे यह पोजीशन तो साथ जायेगी नहीं। फिकर करके क्यों भीतरमें शोक बसाया जा रहा है? उससे जो पाप बँधगा वह साथ जायेगा। फिक्र करने से कोई सिद्धि भी होती है क्या? अपनी कलाएँ खेलते हैं और उससे समझते हैं कि मैंने धन जोड़ा।

सम्पदाकी पुण्यानुसारिता व शान्तिकी ज्ञानानुसारिता— भैया! क्या धनका समागम कलावों पर निर्भर है? कला भी एक निमित्त बन जाती है जब उदय अनुकूल होता है। उदय अनुकूल न हो तो कलाएँ क्या करेंगी? चिंताके लायक बात यहा कुछ भी नहीं है, स्वयमेव ही सुयोग ऐसा होता है कि जो होना होता है, सुगमतासे होता है। नहीं होना होता है तो नहीं होता है। जो भी परिणमन होता हो, हो। इतना साहस हो तब समझिये कि हमने जैनशासनकी यथार्थभक्ति की है। जैनशासनकी भक्ति करनेका अर्थ है अपनेको शान्त बना लेना। यदि शान्ति न पायें तो समझना चाहिए कि हमने जैनधर्मकी भक्ति नहीं की। बडे की भक्ति करते हैं तब कुछ मिलता है। सर्वोत्कृष्ट वस्तुस्वरूपका यथार्थ प्रतिपादन करने वाले जैनशासनकी हमारे चित्तमें भक्ति जगे और हम दु खी रहें, यह हो नहीं सकता। दु खका मिटना धनके सचय पर निर्भर नहीं है, वह ज्ञानपर निर्भर है। जहा सम्यग्ज्ञानका प्रकाश हो वहा दु ख नहीं रह सकता। कैसी भी स्थिति हो, पर दु ख ज्ञानसे मिटेगा। धन हो अथवा न हो अथवा धनका त्याग किया हो, सर्वस्थितियोंमें सुख ज्ञानसे ही प्राप्त होगा। न होते हुए भी धनके विकल्पका त्याग करने पर होने वाले सहज ज्ञानसे सुख होगा। इस लिए शान्ति चाहना हो तो ज्ञानके लिए उद्यम करना चाहिए।

मरणकालमें मरणसे बचानेकी अशक्यता— हाय! मोहियोंको यह बड़ा कष्ट है कि जब आयु कर्मके पूर्ण होते ही काल आकर प्राप्त होता है तब उससे और बलवान् कौन है, जो इन जीवोंकी रक्षा कर सके? कोई इस जीवकी रक्षा नहीं कर सकता। सूर्य और चन्द्र ये दो दृश्यमान ज्योतिषी देवस्थानोंमें से प्रतापी माने गए हैं, और कोई तो सूर्यकी विशेषतासे पूजा करते हैं और कोई चन्द्रमाकी विशेषतासे पूजा करते हैं।

बहुत दिन गुप्त रहनेके बाद जब चन्द्रमाका पहिली बार दर्शन होता है, सुदी दोजके समय कितने ही लोग बड़ा उत्सव मनाते हैं, और कोई सूर्यका रोज रोज अर्घ उतार कर पूजा करते है। ऐसे लोकजन पूजित सूर्य चन्द्र देवताका लोकरूढीसे राहु द्वारा ग्रास होता है तब यहाके लोकजन विषादादि प्रदर्शित तो कर लेते हैं, पर इस ग्रहणको बचाने वाला भी कोई हुआ क्या ? जब इतना भी कोई नहीं कर सकता, तब मरणसे बचा सकने वाली बात तो करो ही मत। कोई भी प्राणी किसी को मरणसे बचा नहीं सकता।

सूर्य चन्द्रकी पूजाका सम्बन्ध— सूर्य चन्द्रकी पूजाकी प्रथा भी जैनशासनसे सम्बन्धित थी, किन्तु रूप बदल गया। ये जो सूर्य चन्द्रके विमान हैं, ये इन्द्र और प्रतीन्द्रके विमान हैं। इनमें इन्द्र है चन्द्र और प्रतीन्द्र है सूर्य सूर्य जरा अधिक प्रचण्ड किरणों वाला है इसलिए प्रसिद्धि इसकी हो गई, पर इन दोनोंमें इन्द्र है चन्द्रमा और प्रतीन्द्र है सूर्य। इन विमानोंमें अकृत्रिम जिनेन्द्र देवकी मूर्ति है। सिद्धान्त बताते हैं। ऋषियों ने बताया है कि भरत चक्रवर्ती का जब समय था तो वे अपने महलपर खड़े होकर प्रातःकाल सूर्यविमानमें रहने वाले जिनेन्द्रकी मूर्तिका दर्शन कर लेते थे। एक तो दृष्टि तीक्ष्ण थी, दूसरे वह महल बहुत ऊँचा था, और वह मूर्तिको देखकर अर्घ उतारते थे। उनकी देखादेखी अनेक लोगोंने अर्घ उतारना शुरू किया। तब आचार्योंने यह कहा कि तुम लोग ठीक कर रहे हो, पर कुछ काल बाद लोग इसका मर्म तो जानेंगे नहीं कि यहा वीतराग सर्वज्ञदेवकी मूर्ति विराजमान् है और लोग यही समझेंगे कि यह जो चमकीला है यही भगवान है और इसे ही भगवान् मानकर पूजेंगे। यह जो पूरा दीख रहा है कान्तिमान् बिम्ब, यह एक पृथ्वीकायिक विमान है। सूर्य और चंद्रकी प्रसिद्धि है इस लोकमें।

भव भवमें कालका आक्रमण— जैसे जब इनके ग्रहण का मौका आता है तो केतु सूर्यको ग्रस लेता है। इसी तरह चन्द्रके ग्रहणके समयपर यह राहु जीवरूपी चन्द्रको ग्रस ले, इसमें क्या आश्चर्य है ? चन्द्र और सूर्य सहस्र किरणों वाले हैं और राहु काला व छोटा होता है, जिसका स्थान किसी को विदित नहीं है, लेकिन वह भी समय पाकर चन्द्र सूर्य पर आक्रमण कर देता है। यों हीं यह आत्मा अनन्त किरणों वाला है, अनन्त ज्ञान दर्शन सुख शक्ति वाला है, किन्तु इसे यह आयुक्षय, यह मरण काल इसे नेस्तनाबूद कर देता है।

विवेक- प्रत्येक जीवको यह देह त्यागना ही पडेगा। मनुष्य जैसा दुर्लभ देह मिला है तो छूटेगा तो जरूर, किन्तु इसके छूटनेसे पहिले कोई

ऐसी विधि बना लो कि संसारके सकटोंसे ही छूटनेका उपाय बन जाय। तो यह है बुद्धिमानी अन्यथा यहा रुलते रुलते तो अनन्त काल व्यतीत हो गया, ऐसा ही अब होगा। अपने आत्माको पहिचानों, जानों और उसही रूप अपने आचरणको बनावो, इन विकारराक्षसोंसे छुटकारा पावो और निर्विकार स्थितिमें अपनी प्रसन्नता बढ़ावो—ऐसी निर्मलता जगेगी तो संसारके सकट छूट सकेंगे और निर्मलता न रही, विकारोंको ही उपयोगमें स्थान दिया, स्वच्छन्द होकर रागद्वेष मोहकी वृद्धि ही बनाते जायें तो उसका फल ससारमें जन्म मरण करके भटकना ही है। इससे धर्मके लिए जितना जल्दी हो सके लगना चाहिए। अपनेको यों विचारो कि कल भी यह शरीर रहेगा अथवा न रहेगा—ऐसा जान कर धर्मपालनके लिए हमारा अधिकसे अधिक उद्यम हो। धर्मपालन भी इस भावमें है कि हम अपनेको चैतन्यस्वभावमात्र जानकर, सबसे भिन्न जानकर एक इस ज्ञानज्योतिमात्र अनुभव करनेमें लगाएँ, इससे ही हम आपकी परलोककी गति सही हो सकती है।

> उत्पाद्य मोहमदविभ्रममेव विश्वं,
> वेधाः स्वयं गतघृणष्ठगवद्यथेष्टम्।
> ससारभीकरमहागहनान्तराले,
> हन्ता निवारयितुमत्र हि कः समर्थः ॥७७॥

विधि द्वारा लोकभ्रमण— यह पूर्व उपार्जित कर्म निर्दयी होकर मोह मदको उपजा कर इस जीवलोकको विह्वल कर रहा है। जब आयुके क्षयका समय आता है तो उसे रोकनेमें कोई समर्थ नहीं है। लोकमें ऐसी प्रसिद्धि है कि इस जीवको काल अथवा यम मार डालता है। ऐसा मार डालने वाला काल और यम अलग कुछ नहीं है। यहा ऐसी व्यवस्था है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे परिणमता रहता है। इस जीवके कर्मका सम्बन्ध है। जब तक जिस आयु कर्म का उदय रहता है, तब तक जीव उस शरीरमें है और जब आयु कर्म नहीं रहता तब जीव शरीरको छोड़ देता है और अगली आयुके अनुसार अगला शरीर पाता है।

भेदविज्ञान और अद्वैत अभेदका परिचय— यहां इस सम्बन्धमें जानने योग्य मूल बात यह है कि जगतमें जितने भी पदार्थ हैं, वे सब पदार्थ ६ जातिके हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिन्होंने दर्शनशास्त्र पढ़ा है उन्हें इसका भली भांति विश्वास हो सकता है कि जैन धर्ममें वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन षड्द्रव्योंके माध्यमसे कितना यथार्थ किया गया है। भेदमें जाति इस प्रकार बनायी जाती है कि उसमें उस लक्षण वाले

कोई पदार्थ छूटे नहीं, और कोई विपरीत लक्षण वाले पदार्थ उस जातिमें आए नहीं। जीव उसे कहते हैं जिसमे ज्ञान और दर्शन हो, जानन देखनकी जिसमें शक्ति हो। बालकों को समझानेके लिए यों कहा गया है कि जो खाता हो, पीता हो, उठता हो, बैठता हो वह सब जीव हैं। समझाते हैं, पर जीवका सही स्वरूप यह नहीं है। यह तो बच्चोंको समझानेके लिए व्यवहार दृष्टिसे कहा जाता है। जीवका यथार्थस्वरूप है जिसमें ज्ञानशक्ति और दर्शन शक्ति हो। जानने देखनेका जिसमें स्वभाव पड़ा हुआ है, उसे जीव कहते हैं। जो खाता, पीता, चलता, उठता, बैठता, मरता, धरता है वह सब कर्मजन्य दशा है, जीवका स्वरूप नहीं है। जीवका तो वह स्वरूप है कि जीव कर्म सहित रहे तब भी वह स्वरूप बसा रहे, कर्मसे रहित हो जाय तब भी वह स्वरूप बसा रहे। ऐसा स्वरूप है ज्ञान और दर्शनके स्वभावका। अब भी हममें और आपमें जानने देखनेका स्वभाव है। रिश्तेदार वैभव परिजन ये तो सब कल्पनाएँ हैं, मनकी स्वच्छन्ताएँ हैं, इनका अपने साथ वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं हैं। परमार्थस्वरूप तो ज्ञान दर्शनका स्वभाव है। जिसमें जानने देखने की शक्ति हो, उसे जीव कहते हैं। अब इस ही शुद्धस्वरूपमें जीवको जो परख ले, उसीके मायने हैं सम्यग्दृष्टि।

अन्तर्दशनकी कार्यकारिता— सम्यक्त्व का अचिन्त्य प्रभाव है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मोक्षमार्गमें लगा हुआ है। उसका मनुष्य जन्मपाता सार्थक है। जिसने सम्यक्त्व न पाया उसका मनुष्य जन्म पाना, न पाना बराबर है। सम्यक्त्वसे प्रीति करना चाहिए। इस सम्यक्त्वकी बाधक है मिथ्यात्वकी क्रिया। कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुकी मान्यता करना, परमें आत्मत्व की वासना करना यही सम्यक्त्वको ना करने की क्रिया है। जिन जीवोंके मोह लगा है, विषयोंसे प्रीति जगी है, वे ही पुरुष कुदेव आदिकसे प्रीति बढ़ाया करते हैं। जो रागी द्वेषी हों किन्तु देवके रूपमे माने जाते हों, वे सब कुदेव हैं। बच्चे बीमार हो गए, अथवा किसी प्रकारका संकट हो गया या संतान नहीं हो रही तो पुरुष अथवा महिलाएँ झट कुदेवकी भी मान्यताएँ करने लगते हैं, किन्तु उससे होता कुछ नहीं है। सिर्फ पापका बंध होता है। जो लोग नास्तिक हैं, न देवको मानें, न कुदेवको मानें उनके क्या धन नहीं बढ़ता ? आज की दिखती हुई दुनियामें तो उल्टा यह नजर आ रहा है कि जो न देव मानें, न कुदेव मानें, वे करोड़पति बने बैठे हैं। यह सब उनके पूर्वकृत कर्मका फल है। इन बाहिरी बातोंमें जरा भी न फसकर आत्मशान्ति का यत्न करें।

शान्तिका आधार शुद्ध जीवस्वरूपका दर्शन— भैया ! अपनेको

चाहिए शान्ति। और शान्ति तब मिल सकती है जब अपनेको अकेला तका जाये। मैं सबसे विविक्त केवल ज्ञानस्वरूपमात्र अकेला ही हूं। जितना अपनेको अकेला सोचते जायेंगे उतना ही अपनेमें धर्मकी किरण प्रकट होती जायेगी और जितना अपनेको परिजनसे, वैभवसे भरा हुआ मानते रहेंगे उतना ही आकुलतामें बढ़ते जायेंगे। शान्ति चाहिए तो शान्त निज अन्तस्तत्त्वके दर्शन करें। हां तो जीवका स्वरूप हुआ केवल जानन देखन का स्वभाव। जो ये दीख रहे हैं मनुष्य, पशु, पक्षी ये सब मायारूप हैं। जीवका सम्बन्ध तो यहां है, पर यह स्वयं साक्षात् जीवस्वरूप नहीं है। इसमें जीवका स्वरूप भी बसा है और कर्म शरीरके स्कंध इनका भी सम्बन्ध है। यह शुद्ध जीव स्वरूप नहीं है।

द्रव्य और पर्यायकी दृष्टिमें आत्मपरिचय— हां तो अब देखिये एक तो जीव जातिका पदार्थ है, जिसमें सब जीव आ गए। जो दिखते हैं वे सभी जीव हैं, अरहंत भगवान् भी एक जीव हैं, हम आप भी, पशु, पक्षी, कीड़े मकौड़े और निगोद जीव भी ये सब एक ही जातिके जीव हैं। फर्क क्या हो गया? हम आप तो दुःखी हैं और प्रभु अनन्त आनन्दमय हैं। उनकी हम रोज पूजा करते हैं और हम पूजने वाले बने हैं, यह भेद किस बातका हो गया है? यह भेद इस बातका है कि हम आप रागी द्वेषी, मोही बने हुए हैं और प्रभुमें राग, द्वेष, मोहादिका अभाव है। जहां राग द्वेष नहीं है वहां शान्ति है और जहां राग द्वेष हैं वहां अशान्ति है। ये राग द्वेषादि क्यों हो गये? इनके होनेका कारण है पुद्गलका सम्बन्ध। मूलमें तो जो न दिखने वाले हैं ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध है, जिन्हें कर्म कहते हैं और उन कर्म सम्बन्धोंके कारणसे फिर ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध होता है जो दृश्यमान हो सकता है। इस भेदके होने पर भी स्वरूप सब जीवोंका समान है।

वर्तमान व्यञ्जनपर्याय और परमार्थता— यह जो कुछ व्यवहारमें जीव है यह तीन चीजोंका पिंड है — शरीर, कर्म और जीव। केवल जीव नहीं है। सिद्ध इसीको कहते हैं कि शरीर और कर्म नहीं रहे, केवल जीव ही जीव रह गया उसका नाम सिद्ध है। सिद्धकी हम उपासना रोज करते हैं। उसका अर्थ यह है कि हम ऐसी भावना भायें कि हे प्रभु! जैसे आप शरीर और कर्मसे रहित हैं, ऐसे ही हम भी होना चाहते हैं। स्वाध्यायमें, सामायिकमें इतना भाव जरूर आना चाहिए कि हे प्रभु! मैं इस शरीरसे भी न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र रहना चाहता हूं। न रहे यह शरीर तो एक भी क्लेश न रहेंगे। रिश्तेदारीकी मान्यता इस शरीरकी दृष्टिसे है।

वैभव सम्पदासे बड़प्पन माननेकी कल्पना इस शरीरके सम्बन्धसे है। भूख, प्यास आदिक शारीरिक कथाएँ इस शरीरके सम्बन्धसे हैं। किसी बातमें सम्मान अपमान मान लेना, इसका भी क्षोभ इस शरीरके सम्बन्धसे है। हे प्रभो! कब मेरा भी वह समय आये कि मैं शरीरसे सदाके लिये छुटकारा पा जाऊँ। इतनी बात यदि आप विचार ले तो आपका दर्शन, जाप, सामयिक आदि करना सब सफल है। जरा आशय तो करो ऐसी भावना का। ऐसा मानते जावो तो कभी निजकी दृष्टि भी जगेगी।

प्रयोजनीभूत स्वपर मूल पदार्थ— जगत्में जो ६ जातियोंके पदार्थ कहे जा रहे हैं, इनमें जीवजातिमें तो हम आप सब है और पुद्गल जाति में वे सब पदार्थ हैं जिनमें रूप, रस, गंध और स्पर्श पाया जाता है। अपने साथ जो कर्म लगे हुए हैं इनमें भी रूप, रस, गंध और स्पर्श है, पर वे इतने सूक्ष्म हैं कि इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होते। पुद्गल उसे कहते हैं जिस में रूप आदिक पाएँ और लोग भी इस पुद्गलतत्त्वको मानते हैं, पर वे भौतिक शब्द कहकर मानते हैं। भौतिकमें वह व्यापक अर्थ नही है जो पुद्गल शब्दका है। पुद्गलका अर्थ है जो मिल करके पूर जाय, बड़ा बन जाय, और जो गल करके, बिछुड़ करके अलग हो जाय।

जीव व पुद्गलोंकी अनन्तानन्तता— जीव अनन्त हैं, अक्षयानन्त है, जिनका कभी विनाश न होगा, अभाव नहीं हो सकता। कितने ही जीव मोक्ष जा रहे हैं, अनन्त जीव मोक्ष पहुंच गए हैं, फिर भी उनसे अनन्तगुणे जीव संसारमें हैं, उससे भी अनन्तगुने, जीव मोक्ष चले जायेंगे फिर भी संसारमें उनसे अनन्तगुणे जीव रह जायेंगे। पुद्गल जीवोंसे भी अनन्तगुणे हैं। अभी देख लो, एक आप जीव हैं, हम जीव हैं, एक जीवके साथ ही कितने पुद्गल लदे हुए हैं। अनन्त परमाणुवोंका पुंज तो यह देह है, इससे भी अनन्तगुणे परमाणुवोंका पुंज भीतरमें तैजस है, उससे भी अनन्तगुणे परमाणुवोंका पुंज कार्माण देह है, कर्मसमूह है, यों एक जीवके साथ अनन्त पुद्गल लगे हैं। फिर संसारमें अनन्त जीव हैं, तब कितने पुद्गल हुए, फिर बाहर पड़े हुए ये पदार्थ भी कितने ढेर हैं, पुद्गल भी अनन्तानन्त हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल— धर्मद्रव्य-गमन करनेको उद्यत जीव पुद्गलोंके गमनमें जो सहायक बने, वह धर्मद्रव्य है। धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल नहीं सकते। अधर्म द्रव्य— जो जीव पुद्गलको, चलते हुए को ठहरानेमें सहायक होता है उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं। आकाशद्रव्य तो असीम है, लोकसे बाहर भी वही आकाश है। कालद्रव्य— जिसकी

चर्चा चल रही है, यह लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य बैठा हुआ है, वह सदा अवस्थित है, उसका परिणमन समय परिणमनके रूपमें होता रहता है। जिसका सामूहिक रूप सेकेन्ड, मिनट, घड़ी घटा आदि महीनों लगाते जायें और आगे बढ़कर वर्षों और सागरोंकी मान्यता बनाई जाती है।

प्राप्त सुअवसरमें सावधानी — यह कालद्रव्य तो वस्तुके परिणमनका सामान्य कारण है, परन्तु आयुकर्म, जिसने देहमें जीवको बाध रक्खा है वह आयुकर्म जब क्षयको प्राप्त होता है तब इसका मरण हो जाता है। यह अवस्था सबको आने की है। हमारा कर्तव्य है कि जब तक बुढ़ापा न शिथिल कर दे, रोग नहीं आये, मरण नहीं आये तब तक हम अपनी दृष्टि को निर्मल बनाकर धर्मका पालन कर लें। धर्मपालनके लिए ही जीवन है। विषयोंके लिये या धन सम्पदाके सचयके लिए हमारा जीवन नहीं है।

विनश्वरताके चित्रणपर श्री ऋषभदेवका वैराग्य— एक समय ऋषभदेव जी की भरी सभामे बडे राजाओंकी गोष्ठीमे कुछ कथानक चर्चाएँ आदि करके कुछ मौज लिया जा रहा था। वहा उनका मन रिझानेके लिए मनुष्य क्या, देव देविया भी अपनी कलायें दिखा रहे थे। देवांगनाएँ कुछ अपना सगीत प्रदर्शन कर रही थीं। एक नीलाञ्जना नामकी देवी भी वहा नृत्य कर रही थी। तो उसकी नृत्यकला का कौन वर्णन करे? छिनमें पास छिनमें दूर। शरीरकी अनेक मोड़ों सहित बड़ी-बड़ी कलाएं दिखाये, पर उस ही बीचमें नीलाञ्जनाकी मृत्यु हो जाती है। इन्द्रने तुरन्त ही दूसरी देवीको आज्ञा कर दी कि इस ही देवी जैसा भेष बनाकर, इस ही जैसी कलासे नृत्य दिखाकर ऋषभदेवका मन प्रसन्न करो। इस कामको करनेमें उसे कुछ भी समय न लगा। जनताने यह नहीं जान पाया कि वह देवी गुजर गयी है। अब यह दूसरी देवी नृत्य दिखा रही है, लेकिन ऋषभदेव अवधिज्ञानी थे, उन्होंने समस्त हाल समझ लिया। वे चिन्तन करने लगे, अहो! कैसी अध्रुवता है। यह अभी नृत्य करते करते ही विलीन हो गयी, इसका मरण हो गया, आकिञ्चन्यकी भावना भाने लगे। अपने समस्त समागमोंसे उन्हें वैराग्य हो गया, उस समय ऋषभदेव विरक्त हो गए।

उद्धारार्थ आत्मोद्यमकी आवश्यकता— भैया! सभी लोग जानते हैं कि एक दिन इस संसारसे हमें भी मरण करके जाना होगा, किन्तु ऐसा साहस नहीं बनाया जाता कि रोज-रोज ५, १० मिनट तो ऐसा उद्यम करें कि समस्त परपदार्थोंको उनके ही भाग्य पर छोड़कर निर्विकल्प होकर देहसे भी भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्माका ध्यान करें। पहिले भी

जो सद्गृहस्थ हुए हैं उन्होंने घरमें रहते हुए भी मोह न करके अपना धर्म कर्तव्य निभाया था।

धनञ्जय सेठका अपना कर्तव्यपालन — धनञ्जय सेठकी बात सुनी होगी। वे बड़े कविराज हुए हैं, आशुकवि हुए हैं। संस्कृत काव्योंके बनानेमें वे अत्यन्त चतुर थे। लोग बैठकर काव्य बनाया करते हैं। गलती होती है तो उनका सुधार करते हैं, पर वे धनजय सेठ तुरन्त सही-सही कविता बनाते जाते थे। एक बार धनंजय सेठ मंदिरमें पूजा कर रहे थे। उस ही बीच धनजयके इकलौते पुत्रको सापने डस लिया। सेठानी को बड़ी विह्वलता हुई। उसके चेहरे पर उदासी छा गयी। हाय! मेरे प्राणोंका आधार यह पुत्र गुजर जायेगा तो कैसे मेरा जीवन व्यतीत होगा? सो उस अधमरे बच्चे को लेकर वह मंदिरमें गयी और सेठसे कहा कि पुत्रको सापने डस लिया है, मरे चाहे बचे, इसे तुम जानों। ऐसे ही दो चार बार कहा। पर धनजय सेठ ने अपना पूजन नहीं छोड़ा। यहां तो लोग पूजा करते हुएगे भी बीच-बीचमें बातें करते जाते हैं। कोई संदेश आजाय घर से तो फौरन पूजन छोड़कर चल देते हैं। वह धनंजय सेठ उस अधमरे पुत्र को देखता हुआ भी अपना पूजन न छोड़ सका। वह तो भगवान्की भक्तिमें ही मस्त रहा। उस ही समयमें उस धनजय सेठने एक स्तवन बनाया, जो स्तवन आज विषापहार नामका है। जिस समय उन्होंने भक्तिमें यह कहा—

विषापहारं मणिमौषधानि मंत्र समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्यायनामानि तवैव तानि॥

हे प्रभु! यह लोक मृत्युसे बचनेके लिए विषापहार मणि की खोजमें भटकता है। कहीं मंत्र तंत्र औषधि, रसायन खोजता है, पर उन्हें यह नहीं मालूम कि यह सब तो हम हैं। हे प्रभु! जो तुम्हारा स्मरण करता है उसके सारे संकट दूर होते हैं। जिस समय भक्तिमें उन्होंने यह कहा उसी समय सेठके पुत्रका विष दूर हो गया। देखिये यह सब प्रभुकी अटल भक्तिका प्रभाव है।

देव शास्त्र गुरुकी दृढ़श्रद्धाकी आवश्यकता— भैया! हमारी देव, शास्त्र, गुरुके प्रति भक्ति अटल हो। हम कभी कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु के श्रद्धालु न बनें, उससे कभी हमारी कोई सिद्धि न होगी। कोई जरासी घबड़ाहट हो जाय तो अनेक देवी देवताओंकी मान्यतामें न पड़ने पायें - ये सब बातें तो प्रभुके दर्शनसे हमें विमुख करने वाली हैं। जिन्हें अपना हित चाहिए है उन्हें चाहिए कि कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुके श्रद्धालु न बनें। यह निश्चित श्रद्धा होना चाहिए कि जो निर्ग्रन्थ हों, निरारम्भी हों, ज्ञान,

ध्यान, तपस्यासे ही जिनका प्रयोजन रहता हो वे ही वास्तवमें साधु हैं, गुरु हैं। जो अनेक आकुलतावोंमें चिन्तावोंमे रहते हैं, जो अपने घरसे प्रत्यक्ष या परोक्ष कुछ सम्बन्ध रखते हों वे साधु नहीं हैं। वे तो गृहस्थों जैसे ही हैं। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की साधना करें, ऐसे जो देव हैं, शास्त्र हैं, गुरु हैं उनके ही प्रति श्रद्धा रहनी चाहिए। इन लौकिक कार्योंमें भी देव, शास्त्र, गुरुके माने विना काम चलता ही नहीं है। जैसे संगीत सीखना हो तो संगीत सीखने वाले के चित्तमें वह संगीतज्ञ बसा हुआ रहता है जो लोकमें प्रसिद्ध हो। हमको तो यों बनना है। हालांकि उससे जिन्दगी भर भेंट होनेकी कोई आशा नहीं है, पर उसका ख्याल है और अपने गावमें कोई उस्ताद मिलता है उसको अपना गुरु मानता है, और सरगमकी जो पुस्तकें हैं, भजनकी जो पुस्तकें हैं, जो भी संगीतके सहायक शास्त्र हैं, उनके प्रति उसे श्रद्धा हो जाती है। तो जब इन लौकिक कार्योंमें भी देव, शास्त्र, गुरुकी जैसी श्रद्धा रखनी पड़ती है तो फिर जो मुक्त हुए हैं ऐसे देवकी श्रद्धा, मुक्तिका जहां उपदेश है, ऐसे शास्त्रोंकी श्रद्धा और जो मुक्ति प्राप्त करनेकी ओर उन्मुख हैं, ऐसे साधुवोंके प्रति श्रद्धा क्यों न करनी पडेगी? इन सच्चे देव, शास्त्र, गुरुवोंके प्रति यथार्थ श्रद्धा होनी चाहिए।

ज्ञानीकी भावना— देव, शास्त्र, गुरुवोंके प्रति श्रद्धा करके ज्ञानी किसी सासारिक कार्यसिद्धिकी चाह नहीं करता है। धनजय सेठने ही अतमें इस स्तवनमें कहा—'इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि। छाया तरुं सश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः॥' हे प्रभो! मैं तुम्हारी स्तुति करके तुमसे कुछ मागता नही हू। तुम तो वीतराग सर्वज्ञ हो, अपने ही आनन्दरसमें लीन रहा करते हो। हम तुमसे क्या मागें? एक बात और भी है कि छाया वाले पेड़के नीचे बैठकर उस पेड़से छाया क्या मागना? हे प्रभो! मै आपकी भक्तिरूपी छायामें बैठा हू तो मैं क्यों अपनी नियत खराब करूँ, क्यों व्यर्थके विकल्प करके सताप उत्पन्न करूँ? मैं तो आपकी इस शान्तभक्तिकी ही छायामें बैठकर भक्तिमें लीन हो रहा हू, शान्तिकी शीतल छाया स्वय ही प्राप्त हो रही है। और फिर भी मैं आपसे कुछ मागूँ तो यह व्यामोह मात्र है। जो प्रभुकी भक्तिरसमें डूब जाता है उसको कभी कोई प्रकारका संकट नहीं रहता। यों अपना जन्म सफल करनेके लिए देव, शास्त्र, गुरुका यथार्थ श्रद्धान करें, और यह भावना रक्खें कि मुझे भी प्रभुकी तरह शरीर और कर्मोंसे रहित होना है। अकेले रहेंगे तो इससे मुझे शान्ति होगी—इस अपने विश्वासको दृढ़

बनाएँ।

मोहियोंका औपाधिक परिणमनोमे राग— इस जगत्मे जो कुछ भी स्वभावविरुद्ध काम हो रहे हैं वे सब निमित्तनैमित्तिक योगसे हो रहे हैं। आना, जाना, लड़ाई लड़ना, राग करना, रेल मोटर चलाना यह जितनी भी चहल पहल दीख रही है यह स्वभावविरुद्ध है, ये स्वभावके काम नहीं हैं। स्वाभाविक काम वह कहलाता है कि दूसरे पदार्थके निमित्त विना स्वय अपने आप हो। यह चहलपहल, यह भाग दौड़, ये नाना क्रियाएँ ये सब अकेले पदार्थके वशकी बाते नहीं हैं। जैसे दूसरे पेंच पुर्जाका सम्बन्ध पाकर दूसरा पेंच पुर्जा सरकता हो तो वह स्वाभाविक नहीं है, नैमित्तिक है। जिसे कहिए एक्सीडेन्टल याने स्वयं उस पदार्थमें अपने आप न होना। दूसरेकी प्रेरणा मिले तब हो। ऐसे ही आत्मामे जितनी भी हरकते होती हैं इच्छा हुई, क्रोध हुआ, घमड हुआ, माया, लोभ हुआ, मोह हुआ, प्रीति जगी, द्वेष हुआ, किसी को इष्ट माना, किसीको अनिष्ट माना, ये सब हरकतें, तरग निमित्त नैमित्तिक योगसे होती हैं। आत्माके स्वभावकी ये क्रियाएँ नहीं हैं। आत्माका स्वभाव तो केवल ज्ञानाद्रष्टा रहनेका है। जब किसीकी दृष्टि इस स्वभावकी ओर नहीं रहती है तो इस मायामय सारे जालको परमार्थ मानकर और इससे अपना सुधार बिगाड़ समझकर इसके प्रति या तो राग करते है अथवा द्वेष करते हैं।

गृहस्थोंके यथावसर निर्विकल्पताका उद्यम— भैया! गृहस्थीको सब कुछ करना पडता है। पर सब कुछ करके भी अपने २४ घटेके समयमे ८-१५ मिनट ही समय ऐसा सुरक्षित नियत रक्खें कि जिस टाइममे साहस करके अपने चित्तको ऐसा बनाएँ कि मुझे किसी वस्तुसे कुछ प्रयोजन नहीं, समस्त पदार्थ भिन्न हैं, उन सबका उपयोग छोड़कर एक विश्रामसे रहेंगे। सहज विश्रामकी धुन बनाएँ, ऐसा १५ मिनट भी समय लगाएँ तो उसका ऐश्वर्य, उसका बड़प्पन सब सार्थक हो जायेगा। दुनियावी कामोंमें खूब बढ़ गये और मायामय जनसमाज ने कुछ यश गा दिया, लौकिक उन्नति भी बहुत करली तो क्या हुआ, शान्ति तो न मिली। निन्दा सुनने में जैसे भीतरमें अशान्ति रहा करती है ऐसे ही प्रशंसामें भी अशान्ति ही है। वहा कल्याण काहेका? जैसे कोई पुरुष काम करते-करते थक जाय तो उस थकान को मिटानेके लिए आध पौन घटा सब भारको त्याग कर ढीला ढाला शरीर करके पड़ जाता है, लेट जाता है, थकान दूर कर लेता है। यह विश्राम थकान दूर कर लेने और विश्राम कर लेनेका कारण बन जाता है। ऐसे ही विकल्प कर करके जब आत्मा थक जाता है तो इस थकानके कारण उसकी

बुद्धि शान्तिका भी काम नहीं कर सकती। तब इन विकल्पोंकी थकान मिटानेके लिए १०-१५ मिनट भी तो ऐसा उद्यम करना चाहिए कि मैं कुछ विकल्प न रक्खूंगा।

विर्नाभ अन्तस्तत्त्वकी प्रतीति— परम विश्रामके लिए अपने बारेमे यह भी स्मरण न करना चाहिए कि मैं धनिक हू, बुद्धिमान् हू, वकील हू, अफसर हू, अमुक परिवार वाला हू, किसी भी प्रकारका हम अपने आपमें परका उपयोग या पर्याय बुद्धि नहीं करें। मैं तो निर्नाम हूं, फिर और-और चीजे तो अपनेमे आयेंगी कहा ? अपने आपको नाम वाला समझें तो इस समझके ऊपर फिर सारी पर्यायबुद्धि आने लगती हैं। कोई अन्दरसे अपने नामका ही सफाया करदे उपयोग द्वारा दो तीन मिनट भी तो जहा नामका ही अपना सफाया हो गया, वहा नाम न रहने पर कोई सकट नहीं आ सकता। जहा नामकी बुद्धि करी कि मैं अमुक हू वहा उस पर सारे जाल खडे हो जाते हैं। तो किसी समय ऐसा अनुभव करे कि मैं नामरहित, देहरहित आकाशवत् अमूर्त निर्लेप चैतन्यस्वभावी हू। कोई चीज किसी न किसी चीजसे बनी हुई है, कुछ तो उसका कलेवर है, किसी चीजसे बनी हुई है। वह तत्त्व हम आप सबके साथ है। यह आत्मा किस चीजसे बना हुआ है ? इसको जब हम समझते हैं, जानते हैं तो वहा सही निर्णय होता है कि केवल जानन-जाननके तत्त्वसे ही यह आत्मा बना हुआ है। इसमें रूप, रस, गध, स्पर्श आदि नहीं हैं, केवल जानन तत्त्वसे ही बना हुआ हू यह मैं। उस जाननका नाम क्या ?

सम्यक्त्वके बिना जीवनकी रिक्तता— जाननका जन्म नहीं, मरण नहीं। जाननमें तो केवल जाननस्वरूप ही है। ऐसे केवल प्रतिभास प्रकाशमात्र अपने आपकी प्रतीति कर सकें तो सारा बोझ इसका दूर हो जाता है। मोहसे जो विभ्रम उत्पन्न होता है, यह बहुत बड़ा बोझ है इस जीव पर। यह अपनेको निर्भार अनुभव नहीं कर सकता, चाहे मन चाहा सब कुछ अनुकूल हो, पर वहा भी भार बना हुआ है, और बिना चाहे प्रतिकूल विरुद्ध बात भी घट रही हो तो वहा भी बोझ बना हुआ है। दोनों प्रकार के बोझोंसे ज्ञानी पुरुष ही दूर हो सकता है। कोई पुरुष द्वेष ईर्ष्यामें ही अपना जीवन बिता दे, कोई पुरुष मौजमें ही अपना जीवन बिता दे तो अन्तमें फैसला दोनोंका एक ही रहा। उसने भी जीवन खोया, इसने भी जीवन खोया। किसीको कुटुम्ब अच्छा नहीं मिला, कलहकारी पुत्र स्त्री आदि हैं, आय भी कुटुम्बपालनके लायक नहीं है, और भी प्रतिकूल बातें हैं, अनेक प्रकारके द्वेष और चिंताएँ बनी रहती हैं, ऐसी चिन्ता और

शोकमें अपने जीवनके क्षण व्यतीत कर देते हैं। कोई पुरुष धनिक है, सम्पन्नता है, परिवार भी सुशील है, स्त्री भी आज्ञाकारिणी है, पुत्र भी होनहार है, सब कुछ ठीक है, सभी समागमोंमें मौज और राग मान कर अपना जीवन व्यतीत कर दिया तो जीवन खोनेकी दृष्टिसे तो दोनों ही एक निर्णय पर उतरे हुए हैं।

शान्त अन्तस्तत्त्वके परिचय बिना अशान्तिकी प्रेरणा— इस ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र आत्माकी सुध न हो तो सब कामोंमें अशान्ति ही बनी रहती है। कोई अशान्ति ऐसी होती है कि शान्तिकी मुद्रा धारण कराती है। व्यवहारमें ऊपरसे गम्भीरता जँचे, धीरता जँचे, बड़प्पन जँचे, पर इन सभी बातोंमें एक अशान्तिकी प्रेरणा पड़ी हुई है। कैसी विचित्र अशान्ति है राग और अज्ञानमें कि अन्दरमें अशान्ति और बाहरमें शान्तिका वातावरण बना रहता है। एक अशान्ति ऐसी होती है कि अशान्ति भी है और वातावरण भी अशान्तिका बना रहता है। जब तक मैं सबसे न्यारा नामरहित हूं। खुद ही खुदका शरण हू—ऐसी अपने आपके स्वरूपके बारेमें दृष्टि नहीं होती है तो उसे सर्वत्र आकुलता ही रहती है। ये पूर्व उपार्जित कर्म ठगकी नाई निर्दयी होकर मोहमद उपजाकर इस जीवको विह्वल कर रहे हैं। आनन्दका भी स्वरूप जुदा-जुदा परख लो। विषय सुख भोगकर अथवा मन माफिक सब लौकिक कीर्ति पाकर जो सुखका अनुभव होता है उसे परख लो और कभी सब जंजालोंसे अपना उपयोग हटाकर, देह तक की भी खबर न रखकर केवल ज्ञानज्योतिमात्र हू—ऐसे ज्ञानस्वरूपकी धुन रखकर जो परमविश्राम होगा, सहज भाव होगा उसके आनन्दकी परख कर लो, इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

आध्यात्मिक लाभ—ज्ञानानुभवके यत्नको चाहे आध्यात्मविज्ञान कहो, आध्यात्म निर्माण कहो। जैसे बाह्यपदार्थोंके संयोग जुड़ाकर हम विज्ञानमें आगे बढ़ते हैं और एक निर्माणको देखकर खुश होते हैं, ऐसे ही कभी अपने आपमें अपने आपकी परख करें। केवल अपने आपका जो स्वरूप है उस स्वरूपकी दृष्टि बनाएं तो वहां भी यह देखो कि क्या निर्माण होता है, कौनसी चीज तैयार होती है, क्या मिलता है? वहा जो शान्ति मिलेगी, उस शान्तिके समक्ष ये सब वैषयिक प्रसंगके आनन्द फीके हैं। मान लो बड़ी ऊंची विज्ञान कलासे बड़ा आविष्कार कर दिया, सब कुछ हो गया, लोकयश भी मिला, नाम भी चला, पर इस जीवका तो न नाम ही है, न लोकयश ही है। यह तो एक चेतन्यतत्त्व है। ऐसी कौनसी चीज न मिले जो इसे शान्ति उत्पन्न कर दे? सब कुछ सभीको करना पड़ता है

इसके मायने यह नहीं है कि जब तक साधु पद नहीं है तब तक कुछ नहीं कर सकते। अरे जिस पदमें जो कुछ किया जाने योग्य है उसकी वहा ही शोभा है। लोग बड़े बड़े करामाती काम करके भी अपने २४ घटोंमें १०,१५ मिनट विशुद्ध धर्मध्यानके लिए कुछ उद्यम करें तो सारी कमियोंको यह दूर कर देगा। लोकके सब कुछ काम किए जाने पर भी जैसे एक कामके बिना सब कुछ काम बेकार हो जाते हैं, वह एक काम कर लिया जाये तो सब कुछ सार्थक हो जायेगा।

यथार्थ ज्ञानमें व्याकुलताका अभाव— भैया ! हममें मोहभाव न जगे इसका बड़ा यत्न करना चाहिए। अन्यथा मोह भावनाका फल अन्तमें बुरा ही होता है। जो कुछ मिला है उसका वियोग होगा कि नहीं, पहिले यही निर्णय कर लो। स्त्री है, पुत्र है, घर है, वैभव है, जो कुछ भी मिला है इसका वियोग नियमसे होगा। इस मिले हुए समयमें यदि मोह रहेगा तो वियोगके समयमें क्या हालत होगी ? उन्नति हो जायेगी क्या ? इससे मिले हुए समयमें भी यदि सम्यग्ज्ञान बना रहा तो उन्मत्तता न आ सकेगी। जब तक वस्तु है निकट तब तक वह है—ऐसा ध्यान बनायें कि ये तो कभी बिछुडे गे। सही जानकारी होने पर जब कभी बिछुडेगी वह वस्तु तो यह जानेंगे कि यह तो मैं पहिलेसे ही जान रहा था कि यह चीज बिछुड़ जायेगी। यदि किसी चीजसे राग है, मोह है तो उसके वियोगके समयमें बड़ा धक्का लगेगा। और फिर बात क्या करना है ? जो चीज जैसी है वैसी समझना है यही धर्मका पालन है। धर्मपालनके लिए हमें कोई कष्ट नहीं उठाना है, भाई जो बात जैसी है, जो चीज जिस स्वरूपकी है उसको वैसा जानते रहें, बस समझो कि हम धर्म पाल रहे हैं।

वस्तुकी स्वतन्त्रता— प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपको लिए हुए है, उसका परिणमन उसमें ही है, मेरा परिणमन मेरेमें ही है। यहा तक कि इस देह पर भी अधिकार नहीं है। यों तो हम अलग जीव हैं, आप अलग जीव हैं, फिर भी रागके निमित्तनैमित्तिकसे हम ऐसा मानते हैं। हमारा आप पर अधिकार है, हमारा इस पर अधिकार है। हम जो बात कहेंगे ऐसा ये मान सकते हैं तो यों अन्दाजन और काल्पनिक तो अधिकारका भ्रम चलता रहता है, पर स्वरूपदृष्टिसे देखो तो मेरा एक अणु पर भी अणुमात्र भी अधिकार नहीं है। अस्तित्व सबका अपने आपमें है। मेरा परिणमन मेरेमें ही है। जब दो चीजें निकट रहनी होंगी, रहेंगी। बिछुड़नी होंगी बिछुड़ेंगी। आयीं तो क्या हुआ ? गयीं तो क्या हुआ ? यह मैं तो अपने अस्तित्वसे रचा हुआ चैतन्यमय परिपूर्ण ज्योंका त्यों हू। किसी

परवस्तुके आ जानेसे मुझमे कोई नहीं बढ गया है, न किसी परवस्तुके चले जानेसे मेरेमें से किसी गुणकी हानि हुई है। यह मै अपने आपमे पूर्ण हू, और सभी वस्तुये अपनेमे परिपूर्ण हैं, ऐसी स्वतन्त्रता जानो।

'गृहस्थके दो भावपुरुषार्थ— भैया! जिसके मोह न रहे उसका जीवन कभी कष्टमे नहीं आ सकता। इन सब बातों और इन सब ज्ञानोंको कुछ स्थिर रखनेके लिए मूलमे इस गृहस्थपदवीमे दो बातें तो अभीसे कर ही लेना चाहिए— एक तो यह कि वैभव सम्पदा, धन, द्रव्य उसकी जितनी अटकी हो, हमारे पास आये, हमें उसमे ही सतोष हो, क्योंकि हममे वह कला है कि हम सब स्थितियोंमे अपना गुजारा कर सकते हैं। हमें अटकी कुछ नहीं है। बाह्यवस्तुवोंकी ओरसे ऐसा संतोषमय जीवन मिलना प्रथम आवश्यक हैं। धनसे आत्माका बड़प्पन नहीं होता। बड़प्पन तो वहा है जहा शान्ति हो और शुद्ध विकास हो। इससे जो भी परिस्थिति बाह्यमें आये, हमें तो यही आवश्यकतासे अधिक है। दूसरी बात अपना जीवन धर्मपालनके लिए है— यह निर्णय रखना, न कि धन सचयके लिए यह जीवन है। धन जोड़कर किनके लिए रखते हो? भ्रमसे मान लिया कि ये मेरे है, अरे जो आज गैर हैं वे ही कहो पहिले भवमे आपके बडे घनिष्ठ परिवारजन मित्रजन हों, और जो आज घरमें हैं कहो पूर्वभवमे शत्रुताका काम करते रहे हो। शत्रु अथवा मित्र दोनों ही पैदा होकर आ सकते हैं। एक कविने तो यह कहा है कि जो कुपूत होकर आया वह भी शत्रुताका काम कर रहा है क्योंकि सुपूतको सुखी करनेके लिए निरन्तर श्रम करना पड़ता है। कुपूत और सपूत दोनों ही दुखी करनेके कारण बनते हैं।

एकत्व भावनाकी सत्य नीति— जो सामान्यतया गृहस्थीमे करना पडे उसे करो, किन्तु व्यर्थकी चिन्ताएँ करनेसे क्या फायदा है? यह जीवन तो धर्मपालनके लिए है। अपना यह निर्णय रखना चाहिए कि जो कुछ भी मिला है उसीमें सतोष करो। हमारा जीवन तो सम्यग्ज्ञान बढ़ानेके लिए, आत्मदृष्टि करनेके लिए आत्मनिरत होनेका उपाय बनानेके लिए है। जो किसी भवमे नहीं पाया, ऐसा अपूर्व कार्य करनेके लिए मेरा जीवन है। ये दो नीतियां अपनाए रहें तो इससे ही शान्तिका मार्ग मिलेगा। ये पूर्व उपार्जित कर्म ठगकी नाईं मोहमद अपनाकर, इसको विह्वल करके इस ससाररूपी भयानक वनमें इसे पीड़ित कर रहा है। इसी बीच आयु क्षय न जाने कब किसके कैसे हो जाता है, यों जन्म और मरणके दुख भोगता रहता है। हमारा यह विश्वास हो कि इस लोकमे हम अकेले ही है। अकेले ही जिम्मेदार हैं, अकेले ही अपने आपके लिए शरण हैं। मेरा जो

कुछ भी सर्वस्व है वह मुझमें अपने आप अकेलेमें है। मेरा दूसरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसी एकत्व भावना करके हम कभी चद मिनट इस आत्माकी सुध लेते रहा करें। यही है उत्तम सत्सग और इस आत्माकी सुधके प्रतापसे ही हम अपने आप इस जीवनमें भी निराकुल हो सकते है।

कदा कथ कुत कस्मिन्नित्यतर्क• खलोऽन्तक ।
प्राप्नोत्येव किमित्याध्वं यतध्व श्रेयसे बुधा ॥७८॥

व्यर्थ और सार्थ यत्न— यह काल याने मरण समय आ जाता है, कैसे आ जाता, कहासे आता है ? इसका कुछ तर्क नहीं चलता है। जब काल आ जाता है तब कितने भी यत्न करें, इसे विफल नहीं किया जा सकता। यह दुष्टकाल बिना विचारे आ जाता है बिना प्रोग्रामके। इस कारण उस ओरसे तो चिन्ता छोडें। चिन्ता करें तो मरण आयेगा, न चिन्ता करें तो मरण आयेगा। चिन्ता करें आत्मध्यान करके अविनाशी पद पानेकी। जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष हैं वे आत्माकल्याणके लिए यत्न किया करते हैं ?

कालकष्टनिवारण— देखिये भैया ! आत्माका जो सहज सिद्ध ज्ञानस्वरूप है, उस प्रतिभासस्वरूपमें अपने उपयोगको मग्न कर दिया जाये तो वहा कालका भी निवारण है। प्रथम तो जिस समय यह उपयोग आत्मस्वरूपमें मग्न रहता है उस समय इसे जीने अथवा मरनेका विकल्प ही नहीं है। वहा तो केवल एक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप ही अनुभव किया जा रहा है, सो ऐसे ही उपायसे कालका निवारण है। फिर इस आत्ममग्नताके प्रताप से निकट भविष्यमें सर्वकर्मोंसे मुक्त हो जायेगा, अर्थात् जन्म भी न होगा। जब जन्म नहीं होगा तो मरणका निवारण अपने आप हो गया। इस कालसे बचनेका, इस मरणके दु खसे हटनेका एक समाधि बिना कोई उपाय नहीं है। आत्मसमाधि तो ससारके समस्त सकटोंके दूर करनेका उपाय है। सुख, दु ख और आनन्द—ये तीन अवस्थायें जीवके होती हैं। सुख नाम तो उसका है जहा इन्द्रिय प्रसन्न रहती हैं अर्थात् जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे और दु ख नाम उसका है जहा इन्द्रियोंको बुरा महसूस हो। पर आनन्द नाम है शुद्ध निर्वाण दशाका। जहा सर्व ओरसे आत्माकी समृद्धि विकसित हो गयी, बस उसीका नाम आनन्द है। जहां लेश भी आकुलता नहीं है उसे आनन्द कहते हैं। ऐसे आनन्दरसमें जो निकटभव्य मग्न हो रहा हो उसे कहा काल सतायेगा ? कदाचित् मग्न होनेकी स्थिति मे मरण भी हो जाये तो उसके लिए मरण नहीं है। जो मरणसमयमें सक्लेश करे, दु खी हो उसके लिए मरण है। जहा आनन्दमें बाधा आये

वही स्थिति तो अनिष्ट है। आत्मसमग्न निकटभव्य पुरुषको आनन्द ही आनन्द अनुभूत हो रहा है। वहां क्या अनिष्ट है ? मरणका दुःख उसे नहीं है।

मृत्युंजय— लोग मरणसे बचनेके लिए मृत्युंजय जाप किया या कराया करते हैं। मृत्यु जय जापमें प्रभुका ही तो स्मरण है, ठीक है। प्रभु का स्मरण हो और आत्मतत्त्वका अनुभव हो तो वहा मृत्यु पर विजय हो ही जाती है। यह बात गलत नहीं है कि मृत्यु जय ध्यानसे मृत्युको जीत लिया जाता है, पर उसका कोई मर्म न जाने और खाली एक ऐसा जाप करा लेनेसे या कर लेनेसे मृत्यु पर विजय हो जाती है, ऐसा ही कोई मानें तो यह बात गलत है। किसका नाम मृत्यु है ? देहसे प्राणोंका वियोग हो जाना। यह तो सबके होता है। चाहे ज्ञानी हो, सम्यग्दृष्टी हो, पर जो मृत्यु को मृत्यु न माने, ऐसा अपना ध्यान बना ले, अथवा ऐसा आत्मविभोर हो जाये कि यह विकल्प ही न रहे कि मेरा मरण हो रहा है, मृत्यु पर विजय तो उसने की है।

मरणकालमें व्यामोहका कष्ट— इस ससारमें प्राय क्लेश मरणका नहीं होता है जीवोंको, किन्तु मोह ममताका क्लेश है। किसीको धन छूट जानेका क्लेश ही रहा है, इतनी कठिनाईसे यह धन कमाया और यह यों छूट रहा है। परिजनोंके छूटनेका क्लेश है। और मानों किसीके इस प्रकार का भी विकल्प न हो तो देहसे हम अलग हो रहे हैं, इस ही बातका क्लेश लोग मानते हैं। अरे देह न्यारा हो रहा है, होने दो। देह तो एक फंसाव है, बन्धन है, और फिर यह देह अब पुराना हो गया है, जीर्ण हो गया है। इस जीर्ण तनसे छुटकारा हो रहा है तो कौनसा नुक्सान है? और इस जीर्ण तनमें बने रहते हैं, कष्ट भोग रहे हैं तो कौनसा सुधार हो गया ? कैसा ही कुछ हो, कैसी ही अवस्थामें रहना पडे, समस्त परिस्थितियोंमें यदि आत्मस्वभावसे रुचि जगी है तो उसे आनन्द है और आत्मरुचि नहीं जगी है तो उसे क्लेश ही क्लेश है। मृत्युसे कोई नहीं बच सकता। कितने ही तन्त्र-मन्त्र औषधिके उपाय कर लिए जायें, पर मृत्युसे कोई बचा नहीं सकता। वैद्य लोग भी यह कह देते हैं कि यदि इसका काल ही आ गया है तो हम कुछ नहीं कर सकते हैं, काल नहीं है तो हम कुछ उपाय करके इसको बचा लेंगे। तो इस कालकी कुछ भी चिन्ता न करो। हां, यदि चिन्ता ही करना है, क्योंकि चिन्ता करनेकी आदत पड़ी है ना, तो एक आत्मकल्याणकी चिन्ता करो।

एक समाधिमरण— बुन्देलखण्डका एक कथानक है कि एक स्त्रीके

बच्चा पैदा हुआ। बच्चा होनेके दो तीन दिनमें ही वह कठिन बीमार हो गई। और उस समय उसके बचनेका भी संदेह हो गया। मरणकाल था उस स्त्रीका। पति उसके पास पहुंचकर रोता है और कहता है कि तुम्हारे मरनेके बाद तो हमें सब सूना ही हो जायगा। ऐसी अनेक बातें कीं, तो वह स्त्री कहती है कि तुम क्यों चिन्ता करते हो? हमारे मरनेके बाद तुम्हारी दूसरी शादी हो जायगी। चिंता करें तो ये दो तीन बच्चे करें, क्योंकि हमारे मरनके बाद न जाने इनकी क्या हालत होगी? तो पुरुष कहता है कि हम आज नियम लेते हैं कि दूसरी शादी नहीं करेंगे। तो स्त्री कहती है देखो—इस समय यहां हम हैं, तुम हो और भगवान हैं, क्या तुम सच-सच अपने नियम पर अडिग रहोगे? तो पुरुषने कहा हां हम सच कहते हैं कि अपने इस नियमसे चलित न होंगे। अब हमें क्या करना है शादी करके, खुदके ही दो तीन बच्चे हैं। तो स्त्री कहती है कि हमें एक बड़ी शल्य थी, मरनेके समय तुमने हमारी शल्य दूर कर दी। अब तो हमें एक और इच्छा है कि जब तक हमारा मरण न हो जाय तब तक हमारे निकट कोई न आये। और कोई इष्ट मित्र रिश्तेदार, परिवार कोई मेरे निकट न आये। पतिने ऐसा ही किया। उस अशुद्ध अवस्थामें ही वह समाधि लगाकर बैठ गई। अब आप देखिये कि चार-पांच दिन तो विशेष अशुद्धि रहती है, करीब १० दिन तक यह अशुद्धि मानी जाती है, पर उसने उसही अशुद्ध अवस्थामें आसन लगाकर, बैठकर आत्मसाधन किया। अब कोई कहे कि ऐसी अशुद्ध अवस्थामें तो ऐसा न करना चाहिए। क्यों न करना चाहिए? अरे मरण आ गया, सारे निर्णय का टाइम है तो उस टाइमको क्यों छोड़ा जाय? उस अशुद्ध अवस्थामें मुखसे पाठ बोले, यह न करे, मगर स्मरण आन्तरिक जाप सब कुछ किया जा सकता है।

सम्यक्त्व और समाधिमरणकी हितरूपता— जन्म और मरण तो दुनियाके जीवोंको लगा ही चला आ रहा है। यह मरण एक बार हुआ है क्या? अरे यह मरण तो अनन्त बार हो चुका है। फिर मरने का क्या दुःख माना जाय? अनन्तबार मरण हो गया तो यह भी मरण सही। पर इस जीव ने सम्यक्त्व और समाधिमरण—ये दो चीजें नहीं पायीं। इससे इस संसारमें अब तक रुलता चला आ रहा है। ये दो खास मुख्य चीज हैं—सम्यक्त्व और समाधिमरण। बाकी जो कुछ होता है उदयानुसार होता है। जैसा होता है होने दो, उसके जानकार रहो और जो परिस्थिति हो उसमें ही अपना गुजारा करो। इन दो बातोंको महत्व दो। मुझे सम्यक्त्व जगे और अन्तमें समाधिमरण हो। भैया! सम्यक्त्व बिना सारी जिन्दगी बेकार

है। समागम मिले हैं, उनमें मग्न हो रहे हैं तो उनका फल तो दुःख ही है। इन सारे समागमोंको छोडकर यहासे जाना ही पडेगा। सम्यग्दर्शन यदि है तो मिले हुए समागमोंके कालमे भी वह दुःखी नहीं रहेगा और जब समागम का वियोग होगा तब भी दुःखी न रहेगा। उसका जीवन सुखमय बीतेगा और समाधिमरण हो जायेगा और कुछ ही भवोंको धारण करके वह मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। समाधिमरणका बहुत अधिक महत्व है। समाधि नाम समताका है।

आवीचिमरण और तद्भवमरण— इस जीवका मरण दो प्रकारका है—एक आवीचि मरण और एक तद्भवमरण। तद्भव मरण नाम है एक शरीरसे छुटकारा पाकर आगे किसी दूसरे शरीरमें पहुच जाने का। इस शरीरसे प्राण निकल जानेका नाम है तद्भवमरण और प्रति समय जो समय गुजरे उस समयकी आयु खत्म हो, ऐसा प्रतिसमय आयुके खत्म हो जानेका नाम है आवीचि मरण। यह जीव जबसे जन्मा है तबसे निरन्तर आवीचिमरण कर रहा है। तद्भवमरणके समय तो विधिपूर्वक समाधि लेना चाहिए। ठीक है पर यह भी कुछ ध्यानमें रखना है कि हमारा मरण तो प्रति समय हो रहा है। इस समयकी आयु जो निकल गयी, वह वापिस न आयेगी और जो आयु गुजर रही है वह गुजर जायेगी। हमारा मरण तो प्रतिसमय हो रहा है। सो हमारा कर्तव्य है कि प्रति समय समता भाव रक्खे। समाधिमरण समतापूर्वक मरनेका ही नाम है तो जब हम प्रति समय मर रहे हैं तो प्रति समय समाधि परिणामका यत्न करें।

आनन्दका आधार— भैया! आनन्द केवल समतामें है। जब राग और द्वेषकी वृत्ति जगती है तो आनन्दमे भग हो जाता है। राग हो तो नियमसे आकुलता होती है। सब बातें खुद पर सबपर बीत रही हैं। किसी भी विषयका राग हो-पुत्रका, स्त्रीका, वैभवका, इज्जतका पोजीशनका, शरीर का किसी भी तत्त्वका राग हो वह आकुलता ही पैदा करता है। इसी तरह जब किसी वस्तुमें राग हो तो किसीमें द्वेष होने लगता है। जिसमे राग है उस चीजमें जो बाधक बने उसमे द्वेष होता है। तो जब द्वेष होगा उस समय भी नियमसे आकुलता है। राग और द्वेष ये आकुलता ही आकुलता को उत्पन्न किया करते हैं। हम अपने इस आनन्दघन समताके समुद्र चैतन्यस्वभाव पर प्रतीति किया करें। अपने आपको ऐसा अनुभव करें कि मैं केवल ज्ञानपुंज हू। मेरा स्वरूप मात्र जानन है। इसमे न किसी परवस्तु का प्रवेश है, न किसी परवस्तुका सम्पर्क है। यह जो शरीरमे बँधा है स्वयं मोहके कारण अपने आप बँधा हुआ है। जैसे किसी पुरुषको किसी पुरुष

या स्त्री से प्रीति लग जाय तो वह पुरुष स्वय अपनी कल्पनासे बँध गया। उसे किसी दूसरेने नहीं बाधा है। उससे भी विकट परिस्थिति है शरीर और आत्माकी। कोई जीव जब शरीरसे प्रीति रखता है तो चूँकि अत्यन्त गाढी प्रीति है ना, इस कारण स्वय ही शरीरसे बध गया है। शरीरसे परतत्र हो गया है। यह मैं आत्मा तो अमूर्त हू। इसको तो शरीर जकड़ना भी नहीं है, पर यह ममता करके स्वय शरीरके साथ लगा फिर रहा है, बिगड़ा हुआ चला जा रहा है।

आयुबन्धका अवसर— आयुकर्मके सम्बन्धमे ऐसी स्थिति है कि आज हम आप जो परिणाम बना रहे हैं उस परिणामके अनुसार अगले भवके वास्ते आयु कर्म अभीसे बंध जायेगा। यह आयुकर्म कर्मभूमिज मनुष्य तिर्यञ्चोंक बंधता है त्रिभागोंमें। मनुष्यकी आयु जैसे मानों ९९ वर्ष की है तो ६६ वर्ष तक आयु नहीं बधेगी। जब ३३ वर्ष शेष रह गए तब आयु बधेगी। तब भी आयु न बधे तो ३३ के तीन भाग कीजिए जब २२ वर्ष और व्यतीत हो जायें,-११ वर्ष रह जायें तब आयु बधेगी, तब भी आयु न बधे तो ११ वर्षके तीन हिस्से कीजिए, उसके दो भाग निकल जायें तब आयु बधेगी। इस तरहसे आयु न बंधे तो तीन भाग करते जाइये। दो आठ बार अपकर्ष कालमे भी आयु न बंधे तो अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें अवश्य बधेगी।

अकालमृत्यु— जितनी आयुकी स्थिति अगले जीवनके लिए बाधी है हिसाब तो यों रहता है कि जैसे मानो आगे फिर मनुष्य हुए और वहा ६० वर्षकी आयु बधी है, तो इसका अर्थ यह है कि ६० वर्षके जितने समय होते हैं उतनी आयुके निषेक बँध जाते हैं। एक मिनटमें अनगिनते समय हैं। ६० वर्षमें जितने समय हैं उतने आयुके निषेक बन गए और अगले भव में जन्म होनेके बाद एक-एक समयमें एक-एक निषेक खिरते जायेंगे। कोई मनुष्य २५ सालका हुआ, इतने में किसी ने शस्त्र मार दिया या कोई रोग आदिक की बाधा हो गयी, या आगमें गिर गया तो उस समय बाकीके जो ३५ वर्षके निषेक हैं, वे सब अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में खिर जायेंगे। इस दृष्टिसे अकाल मौत है। चूंकि उसके निषेकोंकी सख्या इतनी थी कि हिसाबसे समय-समय पर एक एक निषेक निकलता तो वह ६० वर्ष जीता, लेकिन २५ वर्षकी आयुमें ही ऐसा योग जुड़ा कि वे सब निषेक खिर गये, इसीके मायने अकाल मौत है। लेकिन जिस समय जो होना था उस समय वह हुआ, इस दृष्टिसे अकाल मौत नहीं है।

पारमार्थिक साहस— ये आयुकर्मके निषेक कब खिरे, किस कारण से खिरे, कैसे खिरे ? यह सब अतर्क्य है। बिना ही विचारे यह दुष्ट काल

यम इस जीवको हर लेता है। तब बुद्धिमानी इसमें है कि हम आत्मकल्याण के लिए अपना उपाय बना ले। यह शरीर विनाशीक है, नष्ट होगा। इस शरीरको ऐसे तप, व्रत सयम आदिम लगाएं कि अपने को अविनाशी पद मिले। विनाशीक चीजका उपयोग ऐसा किया जाय कि अविनाशी पद मिले, तो यह बडे विवेकका काम है। यह मरण आना है, जब आता है, जिसे आयेगा उसकी हम कुछ चिन्ता न करे, इतना साहस बना लें। यह साहस भेदविज्ञान और आत्मज्ञानसे ही बन सकता है। अपने आत्माको जो ज्ञानमात्र तक रहा हो उसमें ही यह साहस बन सकता है कि वह मरणका भय न करे।

मृत्युभय व सुखवाञ्छाकी हेयता— यह सारा लोक मरणका भय कर रहा है, पर क्या भय करने से मरण बच जाता है? यह सारा जगत् आत्मसुखकी इच्छा कर रहा है, पर क्या इच्छा करनेसे यह सुख मिल जाता है? अरे जो भवितव्यता है वह उपादान और योग्यनिमित्त आदि विधियोंसे जो होती है, होती है। यहा तो जो होना है होगा। हम अपनी भावी स्थितियोंकी चिन्ता न करें और आत्मस्वरूपका परिचय पायें, इसकी हृष्टि बनाएं और मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमात्र हू— ऐसी निरन्तर भावना करें, इस ज्ञानसुधा रसका पान करके सतुष्ट होवें। हम सदा अत प्रसन्न रहें तो मोक्षमार्ग मिलेगा और हम अंत.निर्मल न रह सके, अहंकार, ममकार, कर्तृत्वबुद्धि, भोक्तृत्वबुद्धि इनमे ही फंसे रहे तो ससारमें रुलते रहेंगे। अपने ऊपर मृत्यु मडरा रही है—ऐसा जानकर धर्मपालनमें लगनेका शीघ्रातिशीघ्र उपाय करे।

आसामवायिक मृत्योरेकमालोक्य कञ्चन।
देश काल विधिं हेतु निश्चिन्ता· सन्तु जन्तव॰ ॥७॥

लोकमे सर्वत्र मरण— कहते हैं कि मृत्युका कोई देश असामवायिक नहीं है अर्थात् ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहा यह जीव मरा न हो। दुनिया बहुत बड़ी है, ३४३ घनराजू प्रमाण है। यह जो आजकी मानी हुई दुनिया है यह तो समस्त लोकके समक्ष इतनी भी नहीं है जितनी कि समुद्र में एक बूँद होती है। जिस द्वीपमें हम रहते हैं वह जम्बूद्वीप एक लाख योजनके विस्तारका है, उससे दूना दो लाख योजनके विस्तारका एक समुद्र है। समुद्र दोनों तरफ हैं और वह जम्बूद्वीपको वेड़कर हैं। जो समुद्रका विकम्प है हर दिशामे २ लाख योजनका है, उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र; उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र, इस तरह अनगिनते द्वीप हैं, अनगिनते समुद्र हैं और वे एकसे दूने-दूने होते चले गए हैं, वे समस्त अनगिन।

द्वीप समुद्र जितने विस्तारमें है उतना एक राजू पूरा नहीं है। यह एक राजू भी प्रस्तार मात्र है, एक समीकरण रूप है। ए७ राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा व एक राजू मोटा गहरा सब ओरसे हो उसे एक घन राजू मानों। ऐसे-ऐसे ३४३ घन राजू प्रमाण यह लोक है।

आजकी प्रसिद्ध दुनिया— आजकी दुनिया किधर है ? इस जम्बूद्वीप में जो सबके बीचमें है, उसमें ६ कुलाचल पर्वत पडे हैं, जिनकी वजहसे ७ खण्ड हो गए। दक्षिण दिशा वालेका नाम है भरतक्षेत्र, उसके बीचमें एक विजयार्द्ध पर्वत है। हिमवान नामक प्रथम कुलाचल पर्वतसे गगा और सिंधु नदी निकलती हैं, यहा वाली गगा नहीं। वे गगा और सिंधु जहा गिरती है वहा एक अकृत्रिम कुण्ड बना है, उसमें अरहतकी एक मूर्ति है। उस मूर्तिपर सबसे पहिले गगा व सिन्धु की धार गिरती है। वहासे आगे चलकर वह धार भरतक्षेत्रमें आकर लवणसमुद्रमें गिरती है। उस गंगाकी याद नहीं रही और जो जो निकट व चमत्कारिणी महानदी मिली, उसही का नाम रख लिया और उसकी ही आज दुनियामे प्रसिद्धि है। कितने ही क्षेत्र जो शास्त्रोंमें लिखे हैं, सम्भव है कि यहा न हों, कहीं और जगह हों, पर चूँकि नाम लिखा है तो उसी नामके क्षेत्र हमें बना लेना चाहिए। ठीक है कुछ भी मान लें। ऐसे ही समझ लो गंगानदी, सिंधुनदी आदिके स्थान शास्त्रोंमें बताये हैं। अब वे हमें आखों नहीं दिखते, पर जो सुने गये हैं उनको कहीं न कहीं मान लेना चाहिए। सो किसी बडे महंत पुरुषके द्वारा नाम स्थापित कर दिया। भरतक्षेत्रमें बीचमे विजयार्द्ध गिरि है व हिमवान पर्वतसे गगा व सिन्धु नदी निकली है, सो उस भरतक्षेत्रके ६ खण्ड हो गये हैं। चक्रवर्ती उन छहों खण्डों पर विजय प्राप्त करता है। उसमें एक आर्य खण्ड है।

भूगोल— आर्यखण्डकी भूमि अवसर्पिणीकालमें ऊँची उठा करती है। और वह करीब-करीब दो हजार कोश ऊँची उठी हुई है जो सही जमीन है उसके ऊपर मलगाके रूपमें दो हजार कोश उठ गयी है। अब वह उठी हुई जमीन गोल है, ऊपर है। आजके वैज्ञानिकों को इस भूगोलके सम्बन्धमें यह मालूम पड़ा कि पूरबसे चक्कर लगावे तो पश्चिममें जाता है। मान लो यह हाथ खड़ा है, इसे पूरबसे पश्चिमको यों घुमायें तो उसी स्थान पर घूम कर आ जायेगा। यों ही हवाई जहाजको एक सीधमें बढ़ाते जावें तो वह फिर घूमकर उसी स्थानमें आ जायेगा, यों ही ऊपरसे नीचे होकर आजायेगा इसलिए यही तो कहा जायेगा कि यह जमीन गोल है। इसका आकार ऊँचे उठकर भी उत्तर की ओर मुड़ा हुआ है। सूर्य जम्बूद्वीपका चक्कर लगाता है। उस उठी हुई जमीनका जब एक चक्कर लगाता है तो एक ओर

तो अंधेरा रहा और एक ओर उजेला रहा। जिससे लोग यह कहते हैं कि आर्यखण्डमें ही जब एक ही खण्डमें यह सूर्य है तो जब भारतमें दिन है तब अमेरिकामें रात है। जब भारतमें रात है तब अमेरिकामें दिन है, यह न होना चाहिए। यहां तो बताया है कि जब विदेहमें रात है तो भरतक्षेत्र में दिन है, जब भरतक्षेत्रमें दिन है तो विदेहमें रात है। यह तो ठीक है, पर एक ही क्षेत्रमें, एक ही खण्डमें अमेरिका और हिन्दुस्तानमें यह कैसे हो गया कि हिन्दुस्तानमें जब दिन है तो अमेरिकामें रात है और हिन्दुस्तानमें जब रात है तो अमेरिकामें दिन है? इसका कारण यह है कि यह जमीन ऊँची उठी हुई है। सूर्य जब चक्कर लगाता है तो समक्षके भागमें उजेला रहता है और ऊपरके भागमें अँधेरा रहता है। ऐसी-ऐसी और भी समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं।

कल्पकालके सर्वसमयोंमें मरण— अनगिनते योजना प्रमाण यह दुनिया है। इस दुनियामें ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहां इस जीवने अनन्त बार मरण न किया हो। इसी प्रकार यहां ऐसा कोई काल नहीं बचा जिस कालमें, जिस समयमें इस जीवने अनन्त बार मरण न किया हो। कालका हिसाब यों लगाना। सबसे बड़ा व्यापक परिवर्तन लम्बा भाग जिस में रहे वह है अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा, ५वां और ६ठवां ये ६ काल है अवसर्पिणीके और ६वां, ५वां, चौथा तीसरा, दूसरा और पहिला ये ६ काल है, उत्सर्पिणीके। ऐसे-ऐसे अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल अनन्त व्यतीत हो गए। तो कितने ही अवसर्पिणीकाल और कितने ही उत्सर्पिणीकाल अनन्त व्यतीत हो गए। तो कितने ही अवसर्पिणीकाल और कितने ही उत्सर्पिणीकाल जन्मते और मरण करते व्यतीत हो गए। यह सब चर्चा इसलिए की जा रही है कि इस मरणका कुछ भी भय न मानों। भय तो उसका करना चाहिए जो घटना कभी घटी न हो और अकस्मात् ही घटित हो जाय। मरण तो अनन्त बार हो चुके हैं, इसका क्या भय करना? साहसी पुरुषको मरणका भी कुछ भय नहीं रहता है। जो-जो भी वीर पुरुष हुए हैं, वे मरणके समय में सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे रंच भी भय नहीं मानते।

सर्वविधियोंमें मरण— विधियां भी ऐसी अनेक होती हैं, जिनमें इस जीवका मरण होता है। मरनेके जितने भी उपाय हैं—अग्निमें जलकर मरण करना, रोगी बनकर मरण करना, जलमें डूबकर मरण करना, शस्त्र से घायल होकर मरण करना आदि। उन सब उपायोंसे हम और आप अनेक बार मर चुके हैं। फिर कोई मरणमें सदेह कराने वाली कोई घटना

सामने आये तो उससे भी क्या भय करना ? ऐसे कोई मंत्र-तंत्र आदिके उपायोंको भी करे तो भी मरणसे कोई बचा नहीं सकता है। मान लो किसी भवमें किसी औषधिके कारण बच गये तो किसी भवमें इस ही औषधिने मार दिया। ऐसी कोई औषधि नहीं है जिसके होते हुए भी मरण न होता हो। प्रत्येक जंत्र-मंत्र तंत्र सभी उपायोंसे इस जीवका मरण हुआ। ऐसे सभी उपायोंसे सब ही क्षेत्रोंमें यह जीव कालके वश हुआ है—ऐसा जान कर इस मरणका रंच भी भय न करें। आत्मकल्याणके लिए उद्यमी हों, एक आत्मज्ञान ही ऐसा समर्थ उपाय है जो कालसे बचा सकता है। यह जीव अनन्त बार मरणको प्राप्त हुआ है। इसलिए यह आकस्मिक घटना नहीं है। जैसे ठठेरेके घरमें कोई कबूतर बैठा रहा करता हो तो अब वह ज्यादा डरता नहीं है क्योंकि यह ठक-ठककी आवाज तो रोज-रोज होती है। रोज-रोज ठक-ठककी आवाज सुनते-सुनते अभ्यास बन गया, अब डर नहीं रहा। ऐसे ही अनन्त-काल मरण करते-करते हो गया, इसलिए अब इस ज्ञानीको मरणका कुछ भी डर नहीं है।

साम्प्रत कालमें मरणसे अभीत वीरोंका साहस— कितना ही तो आजके समयमें भी मरणके सम्बन्धमें साहस देखा जा रहा है। जब आजादीका आन्दोलन चला तो उसमें क्रांतिकारी लोग बिगड़ गए तो किसीकी अंगुली आगसे जलाई जा रही है, मांस भी जल गया है, इतने पर भी घटनाका मर्म पूछा जाने पर उन्होंने नहीं बताया। उन्हें तो एक आजादीकी धुन थी, तो ऐसे साहसी लोग मरणके सम्बन्धमें अब भी देखे जाते हैं। ऐसे ही ऋषि, संत लोगोंको आत्मसमाधिकी धुन थी, उन्हें शेर ने खाया, स्यालिनीने खाया, शत्रुवों द्वारा अनेक घटनाएँ घटीं, किन्तु वे विचलित नहीं हुए, वे समाधिमग्न ही रहे।

व्यर्थका मोह— भैया ! सबसे विकट पाप है मोहका। मोह होते हुए में मोह बड़ा अच्छा लगता है। हम बड़े सुखी हैं, इस ढंगके हैं, पर मोहका अन्तमें फल क्या होगा ? सो तो देखो। बड़े-बड़े पुरुष, इतिहासमें, पुराणों में सुननेको मिलते हैं। किन-किनसे बड़ा प्रेम किया, मोह किया, राज्य फैलाया, आखिर उनकी दशा क्या हुई ? कोई ज्ञानी विरक्त बनकर साधु होकर चले गए, कोई मोहमें संक्लेशमें मरकर चले गए, किसीका कुछ हुआ, लेकिन यह जोड़ा हुआ सारा समागमका फल तो अन्तमें विघटन ही है। मिला क्या ? जैसे बच्चे लोग बरसातके दिनोंमें रेतीली जमीन पर पैर रखकर उस पर धूल डालकर घर बनाते हैं जिसे घरबूला कहते हैं। अरे वह बच्चोंका घरबूला क्या है ? थोड़ी देरमें खेलकर वे बच्चे उसे

मिटा देते हैं और अपने-अपने घर चल देते हैं। इतना श्रम करनेसे उन बच्चोंको कुछ लाभ नहीं मिला। ऐसे ही मकान बनवाया, दूकान चलाया, अपना यश बढ़ाया, अन्तमें फल क्या होगा? एक दिन साराका सारा समागम वियुक्त हो जायेगा, साफ मैदान हो जायेगा। इस समागमके मोह में इस जीवको क्लेश ही मिलता है।

निर्मोहियोंको मरणमें कष्टका अभाव— मरणके समयमें इस जीव को प्राणोंके वियोगका जो क्लेश होता है वह तो उसकी समझमें थोड़ा होता होगा। किन्तु जो धन जुड़ा है, परिजन मिला है, उनमें चित्त रमाया है, बड़ा परिचय बढ़ाया है, बड़ी कीर्ति फैलायी है, उसे छूटता हुआ देखकर उसे बड़ा कष्ट होता है। जिसे मोह नहीं होता उसको मरणके समयमें भी कष्ट नहीं है और जिसे इस देहसे भी मोह नहीं है, देहसे भी भिन्न ज्ञानमात्र अपने आत्माको अनुभवते हैं, उनको तो रच भी मरण समयमें क्लेश नहीं होता।

मरणकालका दायित्व— मरण समयमें जैसी बुद्धि होगी तैसा ही फैसला अगले जीवनका होगा। यह जीव अगले भवमें सुखी रहेगा अथवा दुःखी, इस बातका यह मरण समय परिचायक है। जैसे थर्मामीटरसे नाप कर बता दिया जाता है कि अब इसके इतना बुखार है, ऐसे ही यह मरण का अवसर भी इस बातको सूचित करता है कि यह जीव अपना अगला भव सुखसे व्यतीत करेगा अथवा दुःखसे। अगर जीव धर्ममय निर्मलतामय अपना समय गुजारेगा तो उसका अर्थ है कि इसका परलोक भी आनन्दमय व्यतीत होगा। अत यदि चिन्ता ही करना है, चिन्ता ही करनेकी चाह है, चित्त है तो समाधिमरणकी करो। इससे चित्तमें निर्मलता रहेगी। एतदर्थ अपने जीवनमें ज्ञान ध्यान मनन चिन्तन अध्यात्मदर्शन—ये सब उपाय करने होते हैं। कहीं ऐसा नहीं है कि इस जीवनमें तो उसकी साधना न करें और मरण समयमें आकस्मिक शुभ भाव बन जायें, शुद्ध परिणाम बन जायें ऐसा नहीं हो सकता। विरले से हो भी सकता है।

अन्त पुरुषार्थका उत्सर्गमार्ग— जैसे किसी अन्धेको मार्गमें चलते हुए पत्थरमें ठोकर लग जाये और उसे निकाले तो धन मिल जाय, तो कहीं इस से सबका रोजगार तो न बन जायेगा कि चलो आंखोंमें पट्टी बांधकर अन्ध बनकर पैरमें ठोकर मारें और उसे खोदें तो धन मिलेगा, ऐसा तो नहीं हो सकता। कोई विरले ही पुरुष ऐसे होते हैं, जो अपने आत्मस्वरूपकी सुधि रखकर सद्गतिको प्राप्त होते हैं। जैसे शेरनीने सुकौशल महामुनिको भखा था। वह सुकौशलकी पूर्व भवकी मा थी। उसे इतना बड़ा रोष आया कि यह मेरा बैरी है, इसकी वजहसे आर्तध्यान होकर उसे शेरनी बनना पड़ा।

उस शेरनी ने उपद्रव किया। सुकौशल तो मोक्ष चला गया। उनके पिता कीर्तिधर भी वहां विराजे थे। उन्होंने शेरनीको समझाया कि तूने कितना पाप किया? यह तेरा ही पूर्वभवका पुत्र है, उस पर ही तू ने आघात पहुंचाया। उसे जब ध्यान आया तो उसके परिणाम अत्यन्त निर्मल हो गये। ओह! अब मेरा खाने पीनेका त्याग है। उसने समाधिमरण धारण किया। समाधिमरण करके देवगति प्राप्त की। तो इससे इस बातको समझना चाहिए कि हमारे ज्ञानभाव बढ़ें और हम अपने उपयोगको निर्मल बनाकर अपने जीवनको सफल करें।

मरणभयका क्षोभ— मृत्यु किसी को न छोड़ेगी; यह बात बिल्कुल साफ नजरमें रखना चाहिए। कलका भी भरोसा नहीं है। जो भी अचानक मरे हैं क्या उन्होंने कोई प्रोग्राम बनाया था कि हम अमुक दिन मरेंगे? प्रथम तो यह बात है कि जो बहुत-बहुत चिन्ताएँ बनाए रहते हैं उनका मरण तो इससे भी भयानक होगा। न जाने कब हार्ट फैल हो जाय। देहाती लोग हट्टे कट्टे होते हैं। वे कभी बीमार होते हैं तो दवा करते हैं। न ठीक हुए तो कुछ दिन वेदना सह कर फिर कहीं वे मरणको प्राप्त होते हैं। धनिक लोगोंका तो धनकी चिन्तामें हार्ट फैल हो जाता है। उस समय तो बड़ा सक्लेश करके मरण होता है। तो इस रही सही जिन्दगीमें अन्यायसे काम न करें, कभी अपने आपको क्लेशोंमें डालनेका काम न करें। सबके प्रसत्तिद् व्यवहार रहे जिससे हम अपने आत्मदेवके दर्शनके पात्र रहा करें, ऐसल। यहोन चाहिए।

विकल्पजालोंका क्लेश— भैया! किसके लिए इतना धनका सचय किया जा रहा है? पुत्र सपूत है तो धनसंचयसे क्या लाभ? पुत्र कुपूत है तो धन संचयसे क्या लाभ? अगर अपने थोड़ेसे श्रमसे बहुत कमायी हो रही है तो यह समझो कि जिन-जिनके कामोंमें यह धन आयेगा, उन उनके पुण्यके प्रतापसे यह कमायी हो रही है। मैं नहीं कमा रहा हूं। अपने आप को अहकार, ममकार कर्तृत्वबुद्धि व भोक्तृत्व बुद्धि—इन चारों अवगुणोंसे दूर रखना चाहिए। जीवको परेशान करने वाले ये चार प्रकारके भाव हैं। पर चीजमें यह मैं हूं, ऐसा मान लेना अहकार है। यह तो कोरा अज्ञान है। निज और परका उसने भेद भी नहीं ज्ञात किया, निज और परको उसने एकमेक कर डाला। कोई चीज है परवस्तु और उसको माने अपनी चीज यह ममकार है, यह भी मोहभाव है। कर्तृत्वबुद्धि क्या है? सभी वस्तु स्वतत्र-स्वतत्र अपने आपके स्वरूपमें हैं। किसीका किसीके साथ सबंध नहीं है, फिर भी हम यह माने कि मैंने अमुक कामको किया, अमुक परवस्तु

को यों बनाया, मुझे ऐसा काम करनेको पड़ा हुआ है, ये विकल्प तो क्लेश के ही कारण हो जाते हैं। परपदार्थ जिस रूपमें परिणमते हैं वे अपनेमें ही परिणमते हैं। मैं अपने ही परिणमनको भोगता हूं, परके परिणमनको मैं नहीं भोगता हू; किन्तु अज्ञानमें यह जीव अपनेको परका भोक्ता मानता है। इन चारों अवगुणोंसे ससारी प्राणी सदा परेशान रहते हैं। अरे इतना भी ध्यानमें रहे कि मृत्यु न जाने किस क्षण आने वाली है। जितना जीवन बचा है उस जीवनमें हम ज्ञानवृद्धि और धर्मपालन शीघ्रातिशीघ्र करलें तो यह भी हमारा विवेक है।

अगिहितमहाघोरद्वार न किं नरकापदा—
मुपकृतवतो भूयः किं तेन चेदमपाकरोत्।
कुशलविलयज्वालाजाले कलत्रकलेवरे
कथमिव भवानत्र प्रीत् पृथग्जनदुर्लभे ॥८०॥

कलुषित कामान्धकार— पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें सबसे अधिक निन्दित कलुषित स्पर्शन इन्द्रियका विषय प्रसिद्ध है। यों तो ब्रह्मस्वरूपसे अलग करनेमें सभी विषयोंके साधन बाधा किया करते हैं, किन्तु सबसे अधिक बाह्यदृष्टिका सहयोगी और अज्ञान अंधकारके विस्तारका स्पर्शन इन्द्रियका विषय है। पुरुष है वह स्त्रीके शरीरको देखकर अपनी कल्पनाओं से सुन्दरता की कल्पना करता है और उससे सुखका भ्रम करता है। स्त्री हो, वह पुरुषके तनको देखकर अपनी कल्पनासे सुन्दरताकी भ्रांति करती है और उससे सुखका भ्रम बनाये है, लेकिन स्वरूपसे देखो—ये सब करणमात्र ये सब कामकी लीलाएँ इस चैतन्य ब्रह्मपर कितना बड़ा प्रहार कर रही हैं। यह आत्मा भगवान् ज्ञान और आनन्दका निधान है। इसे कहीं वेदना नहीं है, कोई क्लेश नहीं है। यह तो अपने आपमें स्वरूपतः आनन्दका धाम है, लेकिन अपने आपके स्वरूपका परिचय न पाकर बाह्यमें इतना दौड़ गया है कि इस पुरुष को स्त्री, स्त्रीको पुरुष ये ही सब कुछ अपने सुखका साधन जंच रहे हैं।

कामवासनाके अनर्थ— कामविषयक प्रीतिसे अनर्थ कितना होता है। प्रथम तो यह देखिये पुरुष और स्त्रीकी परस्पर प्रीति हो जानेसे चिन्ता, भय, शोक, कायरता—ये सब अवगुण इसमे समा जाते हैं। आत्मामें बहुत विशाल सामर्थ्य है। जो कुछ भी जगत्में चमत्कार है, वह चाहे पौद्गलिक चमत्कार हों और चाहे दुनियावी प्रभुके चमत्कार हों, वे सब इस आत्माके चमत्कार हैं। विज्ञानमें जो आज इतनी उन्नति हो रही है, किस तरहके राकेट और किस तरहके रेडियो स्टेशन, फैलाव आवाज, बेतारका तार

ट्रासमीटर कितनी तरहकी जो आविष्कारकी उन्नतियां हैं, ये आत्माके चमत्कार हैं। विज्ञानमें जो आज इतनी उन्नति हो रही है किस तरहके राकेट और किस तरहके रेडियो स्टेशन फैलाव आवाज, बेतारका तार, ट्रासमीटर कितनी तरहकी जो अविष्कारकी उन्नतिया हैं ये आत्माके चमत्कार ही तो हैं। आत्मामें विशाल सामर्थ्य है। ऐसे सामर्थ्य वाले इस आत्मा भगवान्‌को एक रद्दी कामविषयक वासनामें लगाकर कैसा बरबाद किया जा रहा है? यह विशेष बतानेकी बात न होगी, सभी लोग अपने अनुभवसे परिचित होंगे। फल क्या निकलता है? ये भोग क्या भोगे हैं, इन भोगोंने अपनेको भुगा दिया है। भोगोंका क्या बिगड़ा? जो भोग भोगे हैं, उन भोगोंका क्या बिगाड़ हुआ? बिगाड़ तो इस आत्मा भगवान् का हुआ।

सतजनों को प्रतिबोधन— ये जो ससारके जीव हैं, ये जन्मते हैं, मरते हैं, इस आत्माको क्या मिला? यह बात तब समझमें आती है जब भोगों से थककर शिथिलता और कायरता बन जाती है, शक्तिहीन हो जाते हैं, चिन्तावोंके घर बन जाते हैं तब ख्यालमें आता है। ओह! यह कामविषयक भोग मैथुन प्रसग, ब्रह्मचर्यका घात और ये सब कामलीलाएँ इनसे तो मेरा अनर्थ ही हुआ, लाभ कुछ नहीं हुआ। यह ग्रन्थ साधुजनोंके प्रतिबोधके लिए साधुने बनाया है, इस कारण स्त्रीके शरीरको लक्ष्यमें लेकर यहा इस छदमें वर्णन किया गया है। यह शरीर घोर नरकका द्वार है। यह न जानना कि स्त्री शरीर घोर नरकका द्वार है। पुरुषमें जो कामविषयक व्यामोह हुआ है, परिणाम बना है उसका ही परिणाम घोर नरकका द्वार है और इसी तरह स्त्रीके लिए पुरुष नरकका द्वार है। क्या रक्खा है इस शरीरमें? यह तभी तक सुहावना लग रहा है जब तक इस शरीरका मल, नाक, थूक, लार बाहर नहीं निकले हुए हैं और ये भीतर डटे हुए हैं। इसका मल, नाक, थूक, बाहर निकल आये अथवा फोड़ा फुंसी हो जाय, खून निकल आये तो वही तो चीज है जो भीतर थी, जिसके कारण खूबसूरती बढ़ रही थी, वही चीज बाहर निकली है। घृणा क्यों की जा रही है? शरीरमें मल, मूत्र, कफ आदिक न हों तो यह सुन्दरता कहा बिराजे?

सुन्दरताका मूल रूप— एक घटना है। एक राजपुत्र अपने नगरमें घूम रहा था। उसे एक सेठकी बहू नजरमे आयी। इस बहूकी सुन्दरताको देखकर वह राजपुत्र मोहित हो गया। अपने महलमें आकर उदास चित्त होकर वह पड़ गया। बहुत-बहुत पूछा जाने पर आखिर एक दूतीको बता दिया। तो दूती बोली कि यह बात तो बिलकुल आसान है, तुम क्यों उदास

हो? दूती पहुंची सेठकी बहूके पास। बोली कि अब तुम्हारा भाग्य जग गया है, तुम पर राजपुत्र मोहित है। बहुत बातें होनेके बाद सेठकी बहूने कहा। अच्छा १५ दिनके बाद अमुक दिन अमुक तिथिको राजपुत्र हमारे घर आये। उतने दिनोंमें सेठकी बहूने उधर क्या किया कि जुलाबकी गोलियां खा लीं, जिससे कै-दस्त बहुत होने लगे। सारे कै-दस्तको एक मटकेमें भरती गयी। जब मटका भर गया तो उसे रेशमी कपड़ेसे अच्छी तरह ढाक दिया, और उसे खूब सजाकर रख दिया। वह बहू तो अब अत्यन्त दुबली पतली कमजोर हड्डी निकली फीके चेहरेकी हो गई। राजपुत्र जब १५ दिनके बादमें आया तो वह चकितसा रह गया। बहू कहती है कि राजपुत्र! मैं ही वह सेठकी बहू हू। मेरी जिस सुन्दरता पर आप मोहित थे, चलो उस सुन्दरताको दिखायें। राजपुत्र जब उस मटकेका कपड़ा उठाकर देखता है तो उससे बड़ी दुर्गन्ध निकलती है। उसे देखकर राजपुत्र भागा।

असारशरीर कारागार— भैया! क्या है यहां? कुछ भी तो सार की चीज यहां नहीं है, जिस चिकने चोपड़े शरीरको देखकर, जिस रूपको निरख कर अपने आत्माकी सुध खोई जा रही है, सो रहे हैं ये जगतके समस्त व्यामोही जीव, यह शरीर मल, मूत्र, खून, पीप इनसे ही तो रचा हुआ है। अरे, यह शरीर तो इस आत्मभगवान्का कारागार बन रहा है। जैसे कारागार ईंटोंसे पत्थरोंसे बनाया जाता है, यह शरीर कारागार हड्डियोंसे बना है। इसके भीतर आत्मा कैदी पड़ा है, यह इस शरीरसे भाग न जाय। कारागारको गारासे चुनते हैं और यह शरीर खून, मास, मज्जा, हड्डी, पीप आदिसे बना हुआ है। कारागारके चारों ओर पहरेदार खड़े रहते हैं ताकि कैदी कहींसे भाग न जाये। हमारे आपके कारागारके चारों तरफ स्त्री, पुत्रादिक ये पहरेदार खडे हैं। कहीं यह आत्मा स्वतन्त्र स्वच्छन्द होकर भाग न जाये।

विपदाश्रम— इस शरीरको तो विपदा मानो, शृंगारकी चीज न समझो, शोभाकी चीज न जानो, किन्तु विडम्बना जानो। यह सारा शरीर चाहे मनमोहक भी हो तो भी इस जीवकी विडम्बना है। कभी तो यह खुद का देह भी खुदके लिए बोझल हो जाता है, दुःखदायी हो जाता है। पेट बढ़ गया, पेट भीतर कड़ा हो गया, तो यह शरीर बड़ा कष्टदायी मालूम होता है और प्रायः सभीको अपना कोई न कोई हिस्सा कष्टदायी लगता है, मगर मोहमें मानते नहीं हैं। इस शरीरको निरखकर कामविषयक वासना की तरंग उठाना यह महामूढ़ताकी बात है। ये सब कल्याणमार्गको भस्म

करनेके लिए ज्वालाकी तरह हैं। गृहस्थोंको स्वदार संतोष व्रत बताया है। अपनी स्त्रीमें भी बहुत संतोषसे रहना चाहिए। वहां भी स्वच्छन्दता न वर्ते। स्वच्छन्दता वर्तेंगे तो वहां भी अशान्ति है और फिर जो परस्त्री पर कुदृष्टि करेगा, वह तो घोर असंतोषकी ओर जा रहा है।

विषयध्यानसे हटकर अन्तर्ध्यानमें पहुंचनेका अनुरोध— इस देहका हम कितना ही उपकार करते हैं, कितनी ही प्रकारकी औषधियोंका सेवन करते हैं, पर यह शरीर कुवासनाओंका घर बनकर इस आत्माका अनर्थ कर रहा है। देखो इन इन्द्रियोंमें कर्णविषयक जो ग्रहण होता है, वह कुछ दूरीका सम्बन्ध जैसा हो जाता है। आखोंके द्वारा जो विषय ग्रहण होता है वह कुछ और निकटसा आकर होता है। घ्राण और निकटता लेकर होता है। रसनामें और निकट होकर होता है, और स्पर्शन, इन्द्रिय कामादिक विषयोंमें यह जीव और निकटतासे उस भोगका ग्रहण करता है। अरे ऐसी झूठी निकटताओंको छोड़कर सत्य शाश्वत आत्मीय निकटताको लेकर आनन्द पायें तो इसे ध्यानमें आये कि यह सब जाल मेरे लिए बन्धन ही करने वाला है।

शान्तिके विपरीत प्रयत्न— मनुष्य इन दो बातों पर ही तो तुला हुआ है। एक धन बढ़ जाये और एक भोगविषय कषायके साधन बने रहें, पर दोनों ही उपाय अशान्तिके वर्द्धक हैं। धनी होकर भी आखिर मरना ही होगा और जब तक जीवन है तब तक भी कोई उनका सहाय नहीं है। धनसे तो शान्ति कभी मिल ही नहीं सकती है। क्यों धनसंचयके इतने विकल्प किए जा रहे हैं। जो कुछ अपने पास धन है उसमें भी आराम नहीं माना जा रहा है। वे गृहस्थ भी धन्य हैं जो गरीबीका स्वागत करते हुए धर्मका स्वागत करें। मनुष्यकी इज्जत, धर्म, परोपकार, ज्ञानसे है, धनसे नहीं है। धनी पुरुष यदि मूर्ख है, किसी दूसरेके काममें नहीं आता तो उस धनी पुरुषके प्रति सबका दिल नाराज रहता है। भले ही कुछ कारणोंसे आमने सामने दो मीठी बातें सुना दें, किन्तु हृदय तो उसके विरुद्ध ही रहता है। जैसे आजकलकी वोटिङ्गकी पद्धति है। कोई किसीको कितना ही कहे कि हम तुमको ही वोट देंगे, लेकिन उसका कुछ विश्वास नहीं है। वह तो वोटिङ्गके घरमें स्वतन्त्र है, कहीं भी अपना वोट डाल दे, ऐसे ही कोई धनिक कृपणकी प्रशंसा भले ही कोई सम्मुखमें कुछ कर दे, पर उसका हृदय तो यथार्थ बात ही कह रहा है।

आकिञ्चन्यका प्रसाद—बड़े-बड़े ऋषिजन और आधुनिक नेताजन गरीबीका स्वागत करके ही धर्ममार्गमें बढ़ पाये हैं। एक धर्मकार्य कर लो

और ऐसा अनुपम आनन्द लूट लो मनुष्य जन्म पाकर जो कि स्वाधीन है। यह आनन्द अपने आपमें केवल एक दृष्टि करने द्वारा ही साध्य है, वह आनन्द है आत्मानुभवका। धर्म और किसी बातमे न समझिये। केवल एक आत्मानुभवमे धर्म है और जो कुछ भी बातें हम आपको करनी पड़ती हैं वे इसलिए करनी पड़ती हैं कि चूंकि हम लोगोंकी आदत पाप, व्यसन, कषाय इनकी ओर लगी हुई है, उससे छुटकारा पानेके लिए ये अनेक व्यवहार धर्मके कार्य करने पड़ते हैं, करना चाहिए, पर धर्म आत्मानुभवमें है। अपने आपको ज्ञानमात्र विश्वासमें लेकर ऐसे ही अनुभवो कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूं, अपने स्वभावसे भरा पूरा हूं, इससे बाहर मेरा कुछ नहीं है, इससे बाहरमें कोई पदार्थ मेरेमें कुछ करना नहीं, मैं ज्ञानमात्र हूं—इस प्रकार बार बार अपने अनुभवमें लें, इस अन्तःक्रिया प्रसादसे जो अपूर्व विश्राम मिलेगा, बस वही धर्म है। ये नियमसे शान्ति उत्पन्न करता है।

आनन्दके विघ्नसे प्रीतिकी व्यर्थता— धर्ममें बाधा देने वाले ये पंचइन्द्रियके विषय और मनका विषय है। इन सब विषयोंमें कठिन और अत्यन्त बाह्यदृष्टि करने वाला मूढ़ता विह्वलता उत्पन्न करने वाला विषय है यह कामविषय, मैथुनप्रसंग। हे साधु! तू समस्त विषयवासनाओंसे अत्यन्त दूर होकर केवल अपने आपके उस ज्ञानानन्दनिधिको निरख। ऐ उपासक! तू स्त्रीके शरीरसे अनुराग करके उसका उपयोग करता है किन्तु वह सदा तेरे लिए विघ्नको ही करने वाली है। विघ्नका करने वाला स्त्री जीव नहीं है, किन्तु जिस दूसरे जीवका आश्रय लेकर हम अपने आपके परिणामोंमें कलुषता लाते हैं वह परिणाम है। व्यवहारदृष्टिसे यों कहा जाता है कि वह उसका विघ्न ही करती है। ऐसी स्त्रीके तनसे क्या प्रीति करना?

प्रभुके सम्बन्धमें काम और रतिकी वार्ता— एक बार कामदेव और रति ये दोनों भयंकर जंगलमें घूमते हुए जा रहे थे। कामदेव कोई देवता नहीं है। कामी पुरुषके मनके जो विचार हैं उन विचारोंका नाम कामदेव रख दिया, और स्त्रीके विचार हुए उसका नाम रति रख दिया। कामविषयक विचारोंका नाम कामदेव और रती है। अलंकारमें कहा जा रहा है। कामदेव और कामदेवकी स्त्री रती ये दोनों वनमें जा रहे थे कि एक जगह कोई तीर्थंकर मुनि अपने आसनसे अडिग आत्मध्यानमें लवलीन प्रसन्न मुद्रा सहित विराजे हुए दिख गए। तो रती पूछती है और उसका उत्तर कामदेव देता है— क्या उनका प्रश्नोत्तर है? कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी, ऊं हूं प्रतापी प्रिये, ऊं हूं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यविलेप-

क्रिया। मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किङ्कराः के वयं, इत्येवं रतिकामजल्पविषयः पार्श्वो जिनः पातु वः।

मोहविजेतापर कामका अप्रभाव— मानों पार्श्व जिनेन्द्र अपने आत्मध्यानमें विराजे थे। रति पूछती है कोयं नाथ? यह कौन है? कामदेव उत्तर देता है—जिनः। ये जिनदेव हैं। रति कहती है—भवेत्तव वशी? यह भी तुम्हारे अधिकारमें हैं या नहीं? अर्थात् कामवासनाके जालमें ये भी फंसे हुए हैं या नहीं? तो कामदेव उत्तर देता है ऊँ हूं। ये तो नहीं फँसे हैं कामवासनाके जालमें। क्यों? प्रतापी प्रिये--हे प्रिये, ये बड़े प्रतापी पुरुष हैं। मैंने और सब जगह तो जीवों को वशमें कर डाला, पर इनपर हमारा कुछ वश नहीं चलता है। तो रति कहती है ऊँ हू तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रिया। यदि नहीं जीत पाया तो हे कामदेव! तू अब अपनी बहादुरी की डींग को छोड़ दे। जो मेरे साथ बहादुरीकी डींग मारा करता है कि मैंने सारे जगत्को वशमें किया है, अब तू उस डींगको त्याग दे। तो कामदेव बोलता है—मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किकरा के वयं, इस योगी ने मोहको जीत लिया है। जब हमही इनके दास हो गए हैं तो कैसे इनको वशमें करलें। ऐसी बातचीत जिसके बारेमें काम और रती करते जा रहे हैं—वह पार्श्व जिनेन्द्र हम आप सबकी रक्षा करें।

भोगोंमें अनर्थताकी दृष्टि— इस शरीरको अज्ञानीजन दुर्लभ मानते हैं, पर यह कुछ नई चीज नहीं है। यह शरीर विपदाओंका घर है। यथार्थ बातको ध्यानमें लो। कर्म प्रेरणासे जितना भोगना पड़े विषयभोगोंको, भोगें, पर इतना ज्ञान तो बनाए ही रहिये कि इससे सारा अनर्थ ही है, वियोग बुद्धिसे ही भोगें। यों यह सब मोहजाल कामजाल अकल्याणका ही कारण है—ऐसा जानकर इस ओरसे उपेक्षा करके धर्ममय अपनी दृष्टि बनाएँ।

> व्यापत्पर्वमयं विरामविरसं मूलेऽप्यभोगोचितं।
> विष्वक्क्षुत्क्षतपातकुष्ठकुथिताद्युग्रामयैश्छिद्रितम्॥
> मानुष्यं घुणभक्षितेक्षुसदृशं नाम्नैकरम्यं पुन—
> र्निःसारं परलोकबीजमचिरात् कृत्वेह सारीकुरु॥८१॥

दृष्टान्तपूर्वक नरदेहके सदुपयोगका अनुरोध— जैसे कोई घुना साठा हो तो उसको भोगनेसे यानि खानेसे साठेको भी बरबाद कर दिया जाता है और अपनी जिह्वा भी खराब कर ली जाती है, रोगवेदना उसका फल होता है। साठेका अन्तिम भाग है तो विरस है और मूल भाग कठोर है, भोगके उचित नहीं है। बीचका भाग बचा सो उसमें घुन लग गया है। ऐसे साठेका भोगना अनर्थकारी है। ऐसे ही जो मनुष्यजन्म है उसे तुम घुने

सांठेकी तरह जान कर भोगोंमें मत लगावो, किन्तु एक अपनेको धर्मसाधना में जुटावो। यदि कोई पुरुष ऐसे साठे को खाकर बिगाड़ता है तो वह सांठा भी व्यर्थ गया और उसके खानेसे अपना मुख भी खराब कर लिया। उसे कुछ लाभ नहीं मिला। यदि उस सांठेको खेतमें बो दिया जाय तो उससे जो नवीन साठे उत्पन्न होंगे उनका रस भोगनेमें आयेगा। ऐसे ही इस असार शरीरको जिसका कि विराम विरस है, विराम क्या है? वृद्धावस्था का मूल क्या है? बाल अवस्था। बाल अवस्थामे तो भोग होते नहीं, वह अवस्था तो भोगोंकी अनुचित हैं। विराम अवस्थामें नीरसता आ गयी, शरीरके अंग शिथिल हो गये। मृत्यु निकट आ गयी। अब रह गयी जवानी। इस जवानीमें अनेक आपत्तिया पायी जाती हैं। क्षुधा, तृषा पीड़ा चिन्ता रोग शोक आदिक नाना उपद्रवोने हृदयको छेद दिया। वहां भी सुख नहीं मिला। यह मनुष्यपर्याय भोगके प्रसगमें सर्वप्रकारसे असार है। इसे विषय सुख भोगनेमें गंवा देना यह असार है।

देहका परमार्थके लिये अनुयोजन— कोई पुरुष इस मनुष्यपर्यायको धर्मसाधना करके परलोक का बीज बना दे तो उसका फल उत्तम होगा। जैसे गन्नेको बोकर अनेक गुणे और गन्ने प्राप्त होंगे, ऐसे ही इस शरीरको कोई धर्मसाधनामें लगा दे तो उसके फलमें वह स्वर्ग और मोक्षका आनन्द पायेगा। सुख वह है जिसके बाद फिर दुःख न आये। संसारीजन जिस सुखमें रमण करते हैं वह सुख नियमसे दुःख ही लाने वाला है। खूब निर्णय करके देख लो, कहां सुख है? जिन्दगी व्यर्थ बितायी जा रही है। किसी बातमें सुख मानकर और किसी दंद फंदमें घुसकर बहुत आगे दुःख मिलेगा यह बात तो दूर जाने दो, किन्तु सासारिक सुख भोगा और दूसरे ही मिनटमें दुःख मिल गया। पर लोकमें दुःख होगा, यह बात तो ठीक ही है भोगोंके फलमें, पर परलोक की बात तो दूरकी है, यहीं देखलो। भोगोंके फलमें दूसरे मिनटमें इसे दुःख भोगना पड़ना है। कोई भी सांसारिक सुख ऐसा नहीं है जिसके बाद दुःख न हो। इस सुखमें रमण मत करो। इस सुख में रमने से इस ससारका भटकना ही बना रहेगा।

वैषयिक सुखमें शान्तिका अभाव— सांसारिक सुख ६ प्रकारके हैं— स्पर्शका सुख, रसका सुख, नेत्रका सुख, शब्दका सुख, गधका सुख। इस मनसे यश कीर्तिके फैलावमें कल्पना करते जावो, उन उनके सभी सुखोंमें अधीरता पावोगे। धीर गम्भीर शान्त बनकर यहा कोई भी सुख नहीं भोगा जाता। अधीर, तुच्छ, उछला सा अशान्त बनकर ये सुख भोगे जाते हैं। उन सुखोंके भोगने से पहिले भी क्लेश होना है, भोगनेके समय भी क्लेश

होता है और भोगनेके फलमें भी अन्तमें क्लेश होता है, सर्वत्र क्लेश ही क्लेशसे भरा हुआ व्यवसाय है। ऐसे व्यवसायको बुद्धिमान् जन नहीं किया करते हैं। विषय वेदना वाले सुखोंकी हालत देखो। कई वर्ष पहिले से जबसे विचार बने तबसे ही चिन्ता और कष्ट होता है। बड़ी पराधीनता, बडे-बडे यत्न करें, कुछ काल सुख भी मिले, उस कालमें भी आकुलित होकर दुःखी होता हुआ अन्तरङ्गमें क्षोभ करता हुआ, कल्पनावोंमे मौज मानता हुआ यह अज्ञानी जीव सुख भोगता है। जहा कुछ दिन स्त्रीके सगमें रहते हो गए वहा स्त्रीसे नहीं पटती। बीच-बीचमें बडे कष्ट होते हैं, बच्चे बहुत हो गए, कोई बच्चा कुमार्गपर चलता है तो उसका दुःख होता है। यह तो निश्चित ही समझिये कि जो कुछ भी समागम मिले हैं उन्हें पकडे रहेंगे तो नियम से दुःखी होंगे, रुलेंगे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। जो परका समागम मिला है वह रुलाने वाला मिला है, चाहे जल्दी रोलें चाहे कुछ वर्ष बाद। फल उसका रोना है।

राग व्यामोहका फल— एक राजाने अपने दरबारमें एक साधु जी को बुलवाने कुछ व्यक्तियोंको भेजा। वह बड़ा ऊचा साधु था। बडे सत्कारसे उन साधु महाराजको लिवाकर लानेके लिए सोचा। कुछ लोग साधुके पास जाकर कहते हैं, चलो महाराज आपको राजाके दरबारमें चलना है, बहुतसे लोग वहा पर आपका इन्तजार कर रहे हैं, बड़ा धार्मिक अवसर है, सभी लोग आपके दर्शन करना चाहते हैं। साधुने कहा, अच्छा भाई चलो। साधु ने क्या किया कि मुखपर काला-काला काजल पोत लिया, और राजाके दरबारमें पहुचा। सब लोग सोचें कि इतने बडे साधु महाराज जिनके दर्शन को लोग परेशान हैं और ये मुख काला करके आये हैं। राजा पूछता है, महाराज! हमसे कौनसा अपराध हो गया जिससे आप अपना मुह काला करके आये हैं? तो साधु महाराज बोले कि हमें तुम्हारे राग और प्रेममें आज फसना पड़ा, काला मुंह तो हमारा होता ही। अरे हम लोग जगलके रहने वाले, एकान्तस्थानमें आनन्द लूटने वाले और आप सबके बीचमें आये तो परलोकमें मुह तो काला करना ही पड़ता। इसलिए हमने पहिलेसे ही अपना मुह काला कर लिया। यही सर्वसमागमोंकी बात है। जो समागम मिले हैं उन सबमें रोना पड़ेगा, रोनेसे कोई छूटेगा नहीं।

यथार्थतासे मुख मोड़नेके क्लेश— भैया! जो कुछ भी मिला है वह किसी दिन तो छूटेगा ही। चाहे अभी छूटे, चाहे कुछ दिन बादमें। चाहे बुढ़िया पहिले मरे, चाहे बूढ़ा पहिले मरे। सबको यह तो खबर है ही कि बूढ़े होने पर तो मरना ही पड़ता है। मर गये तो क्या हुआ? बूढ़ा मर

गया तो बुढ़िया यह कहेगी कि वह हमारे कैसे प्यारे थे और बुढ़िया पहिले मर गयी तो बूढ़ा यह कहता है कि वह बुढ़िया हमारी कितनी सेवा करती थी, हाय अब यह कैसे मिलेगी। अरे जो भी समागम मिले हैं वे सब नष्ट तो होंगे ही। इस धन सम्पदा का नाम चचला है। विशेषण नहीं, चचला उसका नाम है। जो चंचल हो, चपला हो, वियोग तो उसका होगा ही। साराका सारा भी इकट्ठा करके रक्खा रहा तो अन्तमें मरेगा तो वियोग होगा। जो समागम मिला है इसका फल अन्तमें रोना है, इतनी बात दृढ़ता पूर्वक निर्णय करलो। अब उपाय इसका भला यह है कि हम आप पहिले से ही मान लें ऐसी बात कि सर्व समागम भिन्न हैं, परवस्तु हैं, हमारे रखने से रहते नहीं। जब तक रहते हैं तब तक भी हमारे कष्टके ही कारण हैं, उसका विचार करे, चिंता करे, शोक करें तो उससे क्या लाभ ?

यथार्थ माननेका प्रसाद— देखो भैया ! अपने आत्माका स्वरूप। इसका ज्ञान और आनंद ही इसके स्वरूपमें भरा हुआ है, क्यों अपने इस ज्ञानानंद स्वरूपको नहीं निहारता ? अरे चंद दिनोंमें ही ये सर्व परिवारके लोग गैर हो जायेंगे। कुछ ध्यान तो लावो। जो १०-५ वर्षके बादमें गैर हो जायेंगे उन्हें अभीसे गैर नहीं मान सकते ! अरे श्रद्धा तो सही बनावो, इसमें क्या बिगाड़ है ? कभी सुयोगवश ऐसा भी हो जाय कि पास ही के घरमें अपने घरका कोई मरण करके पैदा हो जाय तो क्या उसे गैर न मानेंगे ? अरे जो चीज कुछ दिनके बादमें गैर हो ही जायगी उसे अभीसे गैर मान लो। मुंहसे मत बोलो कि तुम सब गैर हो, हमारा तुमसे कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा उनसे न बोलो, नहीं तो लड़ाई हो जायेगी। श्रद्धामें यह बात जरूर बनाये रहो कि ये सब गैर हैं। बस दृढ़तापूर्वक इतना मान लेने से ही सुखी हो जावोगे।

व्यर्थका बोझ— अहो भ्रम तथा मोहका संकट और बोझ ऐसा लगा हुआ है व्यर्थका कि जिससे निरन्तर संक्लेश होता जाता है। उपाय पूछते हैं दूसरोंसे, उपाय करते हैं नाना प्रकारके, पर किसी उपायमें सफल ही नहीं हो पाते। अरे उपाय तो अधीर होकर न बन पायेगा। एक शाश्वत निर्मल निज ज्ञायकस्वभावरूप अपनेको मान लो, अपने को अकिञ्चन् समझ लो। खुदकी ही तो बात है, जो बात जैसी है, जिस स्वरूपमें है उसे वैसी मानने में क्या कष्ट हो रहा है ? अरे व्यर्थकी मोह ममता अपने चित्त में बसाये हुए हैं और दुःखी होते रहते हैं। जो मनमें आता है सो ही करते हैं। ठीक है, बसाये जावो मोह ममता। खूब दुःखी होते जावो, खूब रुलते जाओ, कुछ बात नहीं है।